मन-दर्पण

"उम्र भर गालिब यही भूल करता रहा,
धूल चेहरे पे थी और मैं आईना साफ करता रहा"

- मिर्जा गालिब

इसी क़लम से

- स्मृतियों के आर-पार (विभाजन के दुःख और सामाजिक कुरीतियों पर आधारित पारिवारिक पुस्तक)
- इंद्रधनुषी जीवन कला (निबंध-संग्रह)
- उत्सव है ज़िंदगी (निंबध-संग्रह)
- मन कस्तूरी (निंबध- संग्रह)
- सन्नी - बन्नी (बाल काव्य संग्रह)
- रंगला जंगल (पंजाबी में पशु–पक्षियों पर आधारित कविताएँ)
- चंडीगढ़ साहित्य अकादमी की और से 2019 में इस बाल काव्य संग्रह के लिए अनुदान राशि प्रदान की गई।
- अमर स्मृतियाँ- पाकिस्तान से विस्थापित मेरे परिवार की सात पीढ़ियों के संघर्ष और श्रद्धांजलि की सच्ची दास्ताँ।
- हिंदी और पंजाबी में लगभग पच्चीस साँझे काव्य, कहानी सग्रंह प्रकाशित। विभिन्न अखबारों, मैगज़ीनों में लेख, कविताएँ, कहानियाँ, सुझाव, रेसिपीज़, छप चुकी हैं। रेडियो, दूरदर्शन पर प्रोग्राम देने का सौभाग्य और कई संस्थानों से सम्मानित।

मन-दर्पण

(कहानी-संग्रह)

विमला गुगलानी 'गुग'

सप्तऋषि पब्लिकेशन
चंडीगढ़

Man-Darpan

(Stories)

by

Vimla Guglani 'Gug'

ISBN: 978-81-959838-6-5

Edition – 2022

© Author

Published by

Saptrishi Publication

Plot No. 25/6, Industrial Area, Phase-2,
Near Tribune Chowk, Chandigarh.
E-mail: sapatrishi94@gmail.com
94638-36591, 77174-65715

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopying, recording or any information storage and retrieval system, without permission in writing from the Author.

Visit us at: www.saptrishipublication.com

समर्पण

यह मेरा कहानी संग्रह परमपिता परमात्मा के बाद मेरे स्वर्गीय पूजनीय माता-पिता श्रीमती शांति देवी सेतिया और श्रीमान लाजपतराए सेतिया और मेरे हमसफ़र स्वर्गीय श्रीमान विनोद कुमार गुगलानी जी को समर्पित है, जिनके साथ ने मेरे जीवन की राहों को आसान बनाया।

शख़्सियत हो तो किताबों जैसी

गुरबख्श रावत

कहते हैं कि धीरे–धीरे किताबें लुप्त होती जा रही हैं, लेकिन मेरा तो यह मानना है कि कितना भी डिजिटल युग आ जाए, किताबों का स्थान कोई नहीं ले सकता। चुप रह कर भी सब ब्यां कर जाने का काम किताबें ही कर सकती हैं। जानी मानी कवियत्री और लेखिका विमला गुगलानी जी की यह आठवीं पुस्तक है। कविता, कहानी, लघु कथा, निंबध हो या फिर रेसिपीज़, हर विधा में महारत हासिल है इन्हें। साहित्य के प्रति समर्पित लेखिका के लिए मेरे दिल में अत्यंत आदर–सम्मान है। इक्कीस सामाजिक और पारिवारिक कहानियों का यह संग्रह अपने आप में अनूठा है। हर कहानी जैसे सच्चाई ब्यां करती सी प्रतीत होती है। ऐसा लगता है कि जैसे यह घटनाएँ हमारे आसपास की ही हैं। एक लेखक की लेखनी ही समाज को आईना दिखा सकती है। सचमुच ही हमारा मन एक दर्पण के समान है। तभी तो कहते हैं कि दूसरे को आईना दिखाने से पहले ख़ुद को उसमें झाँक लेना चाहिए। बहुत सी शुभकामनाएँ इस लेखनी के लिए, ये ऐसे ही चलती रहे और ज्ञाण बाँटती रहे-

कहीं पढ़ी ये लाईनें मुझे याद आ रही हैं-

"इश्क़ कर लीजिए, बेंइतहा किताबों से,
इक यही हैं, जो अपनी बातों से पलटा नहीं करतीं"

–गुरबख्श रावत
कौंसलर वार्ड -27 (MC चंडीगढ़)
पूर्व डिप्टी मेयर

उच्च कोटी की साहित्यकारा

दलजीत सिंह

प्रतिष्ठित लेखिका और कवियत्री विमला गुगलानी जी पिछले दस सालों से लगातार मेरी मासिक पत्रिका 'सोच दी शक्ति' में अपनी लेखनी से पाठकों के ह्रदय में अपना एक अलग ही मुक़ाम बनाए हुए है। प्रसिद्ध पंजाबी की इस पत्रिका में हिंदी के दो पेजों का पाठकों को हर महीने इंतजार रहता है। कहानी, कविता, बाल कविता या कहानी, लेख हो या लघु कथा, सब पर इन्की लेखनी बखूबी चलती है, और सभी में मंनोरजन के इलावा समाज, परिवार, देश, मानवता के लिए संदेश छुपा होता है। हिंदी हो या पंजाबी, दोनों भाषाओं के लिए एकसमान प्यार और सम्मान है लेखिका के मन में। पंजाब सरकार से सेवानिवृत अध्यापिका की लेखन के साथ-साथ समाज सेवा में भी बहुत रूचि है। मुझे पूर्ण विश्वास है मानवीय संवेदनाओं से भरपूर लेखिका की इस इक्कीस कहानियों से सजे कहानी संग्रह का पाठक दिल से स्वागत करेगें। बहुत सी शुभकामनाएँ!

दलजीत सिंह
मुख्य संपादक ' सोच दी शक्ति'
पटियाला।

आभार

इक्कीस कहानियों से सजा ये अपना प्रथम कहानी संग्रह पाठकों की झोली में डालते हुए मैं अत्यंत प्रसन्नता अनुभव कर रही हूँ। इससे पहले मैनें तीन निबंध संग्रह, दो बाल कविता संग्रह और दो पारिवारिक पुस्तकें लिखी हैं। अखबारों और मैगज़ीनों में कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं और सराही भी गई हैं, उसी से प्रेरणा पा कर मैं यह हौंसला कर रही हूँ। कहानियाँ तो हमारे आस–पास, परिवारों में ही होती हैं, उन्हें कलमबद्ध ही करने की आवश्यकता है। हर कहानी अपने आप में समाज को आईना दिखाने वाली है और हर एक में कोई न कोई शिक्षा भी छुपी है।

"किताबों सी खुशबू कहीं और नहीं मिलती और ये किताबें ही हैं जो टूटकर बिखर भलें ही जाए, मगर अपने लफ़्ज़ नहीं बदलेंगी।"

मेरी इस साहित्यक यात्रा में परिवार का सहयोग तो हमेशा से ही रहा है, मगर समकालीन कवियों और लेखकों का भी दिल से धन्यवाद। विशेष तौर पर वरिष्ठ कवि, साहित्यकार, लेखक, व्यंग्यकार, पूर्व संपादक 'जागृति' के संपादक श्री प्रेम विज जी, जो कि हमेशा हौंसला बढ़ाते हैं और मार्गदर्शन भी करते हैं। पंजाबी की मैगज़ीन 'सोच दी शक्ति' के संपादक और मालिक सरदार दलजीत सिंह अरोड़ा जी से मेरी मुलाक़ात न हुई होती तो शायद मैं इस मुक़ाम तक न पहुँच पाती। पिछले आठ साल से भी ज़्यादा समय हो गया है उनकी मासिक पत्रिका में मेरी हिंदी की रचना को स्थान मिलते हुए। धन्यवाद शब्द बहुत छोटा है, मगर यही कह सकती हूँ। उन्होंने अपनी सम्मानीय सलाहकार कमेटी में शामिल करके भी मेरा मान बढ़ाया है और डॉक्टर विनोद शर्मा जी का भी दिल से आभार जो अपने अखबारों में मेरी रचनाओं को हमेशा स्थान देते हैं। इसके अतिरिक्त कई हिंदी, पंजाबी की मैगज़ीनों, अख़बारों में मेरी कविताएँ, आर्टीकल कहानियाँ, सुझाव, रेसिपीज़, अक्सर छपते हैं, उनसे भी बहुत प्रोत्साहन मिलता है, उन सभी का भी धन्यवाद।

मैं बहुत सी संस्थाओं से जुड़ी हुई हूँ, और उनसे बहुत सम्मान के इलावा सीखने का भी अनमोल ख़ज़ाना मिला है। आभारी हूँ , भारतीय विकास परिषद, सीनियर सीटिजन संस्थाओं की, देव समाज, योग समितियों, हयूमन राईटस और सबसे अधिक कोच लीडर शिप सैंटर चंडीगढ़ और देहली चैप्टर की जिसकी मैं नेशनल प्रैसीडैंट भी रह चुकी हूँ, यहाँ कमलेश भट्ट, विनय लूथरा, वंदना अग्रवाल, मोदिता आहूजा, वीना शर्मा, कंचन भल्ला और राजेशवरी, इन सभी के सहयोग और साथ ने मेरी लेखनी को अत्यंत सहयोग और बल दिया।

अंत में सबसे अधिक और दिल से धन्यवाद मेरे स्वर्गीय पति श्रीमान् विनोद कुमार गुगलानी जी का, जिनकी प्रेरणा और सहयोग ने हर कदम पर मेरा साथ दिया और मेरा हौंसला बढ़ाया। मैं दिल से धन्यवादी हूँ स्थापित प्रकाशक बलदेव सिंह जी की जिनके सप्तऋषि पब्लिकेशन ने मेरी पुस्तक को सुंदर आकार दिया।

-विमला गुगलानी 'गुग'
चंडीगढ़
मो. : 98889-73200

अनुक्रमिका

	शख़्सियत हो तो किताबों जैसी	6
	-गुरबख्श रावत	
	उच्च कोटी की साहित्यकारा	7
	-दलजीत सिंह	
	आभार	8
	-विमला गुगलानी 'गुग'	
1.	वही हार	11
2.	नए साल की सौग़ात	16
3.	फिर आई होली	21
4.	एक कप चाय	25
5.	और उसूल बदल गए	31
6.	अपने- पराये	41
7.	कुछ तो मजबूरियाँ रही होंगी	46
8.	हक की परिभाषा	55
9.	अनमोल तोहफ़ा	60
10.	सही सोच	66
11.	मिट्ठू की लोहड़ी	70
12.	हैप्पी ! वैलेंटाइन डे	75
13.	क्या यही प्यार है...	80
14.	ऐसे कारज कीजिए...	85
15.	एक मौका और	89
16.	बेटी, बहन, बुआ...	105
17.	वसीयत	110
18.	और दीप जल उठे !	118
19.	जस्सी और प्रीति	124
20.	होली के रंग	131
21.	क्या करे पूर्वी ?	136

1

वही हार

सच ही कहते हैं कि जब तक ख़ुद पर न बीते असलियत समझ नहीं आती। कैसे हम दूसरों की छोटी से छोटी बात में आसानी से बड़े–बड़े नुक्स निकाल लेते है, लेकिन जब वही काम ख़ुद करना पड़ता है, तो पता चलता है कि कैसी–कैसी रूकावटें सामने आती हैं। रूचि के बेटे व्यास की शादी को सम्पन्न हुए आज चार दिन हो गए हैं। नया जोड़ा हनीमून के लिए बैंकाक की उड़ान भर चुका था, सिर्फ़ बड़ी बुआ और सास को छोड़कर सब मेहमान भी विदा हो गए। यहाँ तक कि उसकी अपनी बेटी सुहानी भी अगले हफ़्ते आने का वादा करके चली गई। जल्दी–जल्दी में अपने नेग भी नहीं लेकर गई, सिर्फ़ मिठाई और फल ही लेकर गई। रूचि की कोशिश थी कि वो दो चार दिन रूक जाए लेकिन उसकी अपनी और अपने घर परिवार की मजबूरियाँ। पति गौरव ने भी काम पर जाना शुरू कर दिया। शुक्र है, कि सास और बुआ सास कुछ दिन रूकने के लिए मान गईं। गौरव की नौकरी शहर में थी। रूचि और गौरव ने बहुत कोशिश की कि माँ उनके पास शहर में रहे, लेकिन उन्हें अपने गाँव वाले घर में ही रहना पसंद था। दोनों औरतें बुज़ुर्ग हैं, ज़्यादा काम तो नहीं कर सकती, लेकिन रूचि को उन दोनों का बहुत सहारा रहा।

सब कुछ अच्छे से निपट गया, लेकिन सारा घर अभी भी बिख़रा सा लगता है। बहुत सा समान मिल नहीं रहा। बेटे व्यास का कमरा तो जैसे बंद ही पड़ा है। नेग में आए सामान, तोहफ़ों को खोलना तो दूर, देखने तक की फ़ुर्सत भी नहीं मिली। अभी तो सारे फ़ंक्शन होटलों में हुए हैं। सिर्फ़ एक छोटा सा ढोलकी वाला लेडीज़ संगीत ही उसने घर पर रखा था, जिसमें सारे मुहल्ले की औरतें और उसकी कुछ पुरानी सहेलियाँ ही शामिल थी। कैसे मज़े ले ले कर सबने लोकगीत गाए। जैसे पुराने दिन ही लौट आए, आजकल का संगीत और नाचगाना तो उसकी समझ से कोसो दूर है। सिर्फ़ कानफोड़ू संगीत, लेकिन चलो जमाने के साथ तो चलना ही पड़ता है।

आज का ज़रूरी काम निपटा कर रूचि ने सोचा कि चलो आज व्यास का कमरा ठीक किया जाए। चार दिनों बाद तो बेटा और बहू लौट आएँगे और फिर उनकी छुट्टियाँ भी तो ख़त्म होने वाली थी। दोनों के ऑफिस पास–पास थे। एक तरह

से व्यास और सारा की लव कम अरेंज मैरिज थी। आज कल तो जो बच्चों की पसंद, वो माँ–बाप की पसंद। विश्वसनीय मेड मीरा को उसने व्यास के कमरे की साफ़–सफाई और सेटिंग करने के लिए बुला लिया। शादी ब्याह में कई बार चोरी–चकारी के किस्से सुनने को मिलते हैं, इसलिए रूचि ने दोनों बच्चों की शादियों में ख़ास एहतियात बरती। उसको ये याद करके हँसी आ गई कि एक रिश्तेदार की शादी में तो कितने सारे मिठाई के डिब्बे ही ग़ायब हो गए थे। उसने तो शादी का क़ीमती और ज़रूरी सामान रखकर एक कमरा बंद ही कर दिया था। ज़रूरत पड़ने पर वो स्वयं, बेटी सुहानी या फिर उसकी छोटी बहन ही कमरा खोल कर सामान निकालती थीं। इस तरह ज़रूरत पड़ने पर सामान भी आराम से मिल जाता। मीरा की मदद से काफ़ी हद तक व्यास का कमरा ठीक हो गया था। सारे तोहफ़े यथा स्थान रखे जा चुके थे। सिर्फ़ शगुन के लिफ़ाफ़े और नेग के ज़ेवर देखने बाक़ी थे। रूचि ने सोचा कि शगुन के लिफ़ाफ़े तो रात को गौरव के साथ बैठकर खोलेगी, क्योंकि उसे साथ–साथ डायरी में नोट करना भी ज़रूरी था। कल को बढ़ा कर शगुन लौटाना भी तो होता है। लिखा हो तो आसानी रहती है, वरना तो वो अब भुलक्कड़ हो गई है।

थक तो वो बहुत गई थी, लेकिन गहने देखने की स्त्री सुलभ लालसा कहीं न कहीं मन में ज़रूर थी। घर में सब दहेज के ख़िलाफ़ थे, लेकिन कितना भी मना करो, लड़की वाले कहाँ मानते हैं और फिर सारा अपने माँ–बाप की इकलौती संतान है। ज़ाहिर है बहुत लाड़-प्यार से पली होगी। कितना भी कह लो, जितना मर्ज़ी पढ़ी–लिखी हो, हमारे समाज में बेटियों को ख़ाली हाथ नहीं भेजते। सारे चाव भी तो पूरे करने की इच्छा होती है और फिर दोनों परिवारों की आर्थिक स्थिति भी बहुत अच्छी थी। रूचि ने गहनों के दो डिब्बे देखे, काफ़ी सुंदर डिज़ाइन थे। नए पुराने डिज़ाइनों का मिश्रण लगा। एक सैट रूचि और एक सैट सुहानी का भी था और रिश्तेदारों के नेग भी थे, जो कि विदा होते समय सबको दे दिए गए थे।

कुछ डिब्बे देखने अभी बाक़ी थे। मन में तो आया कि बाक़ी कल देखेगी, अभी अलमारी में रखने की सोची। अलमारी में रखते वक्त एक विशेष अलग डिज़ाइन के सुंदर से डिब्बे पर उसके नाम की पर्ची लगी देख वो उसे खोले बिना न रह सकी, लेकिन अंदर वाला हार देख कर तो जैसे उसके होश उड़ गए। हाथों–पैरों की ताक़त ख़त्म सी होती लग रही थी। वो तो जैसे जड़ सी हो गई। वही उसकी शादी वाला पसंदीदा हार उसके सामने था, लेकिन ये वो हार कैसे हो सकता है, वो तो आज से तीस साल पहले उसकी नन्द के दहेज में दिया जा चुका था। पुरानी बातें

चलचित्र की तरह उसके सामने घूमने लगी। सोच सोच कर उसका सिर फटने को आया। बड़ी मुश्किल से मीरा को एक कप चाय का लाने को बोलकर वो धड़ाम से सोफ़े पर गिर पड़ी। आँखें स्वयं ही बंद हो गईं। पुरानी बातें याद करके दोनों आँखे आँसुओं से भर उठी। पता ही न चला कि कब मीरा चाय रख कर चली गई। धीरे–धीरे उसके अरमानों की तरह चाय भी ठंडी हो गई।

तब हालात आज जैसे नहीं थे। ज़्यादा अमीर तो उसके मायके वाले भी नहीं थे, लेकिन ससुराल के हालात थोड़े खराब थे। उसके ससुर बहुत पहले इस दुनिया को अलविदा कह गए थे, उनकी फ़ैमिली पेंशन सास को मिलती थी। कुछ गाँव में ज़मीन थी। ठीक सा गुजारा हो जाता था। गौरव की दो बहनें थी। बड़ी दी बाणी की शादी तो उसकी शादी से पहले ही हो गई थी, हालांकि वो भी गौरव से छोटी थी। बड़ी दी अपने ससुराल में बहुत खुश और मस्त थी और कम ही आती थी, जबकि छोटी नीलू बहुत चंचल और वाचाल थी। उसकी शादी रूचि की शादी के दो साल बाद तय हुई थी। लड़का अच्छा था, लेकिन नीलू की सास बहुत लालची प्रवृति की औरत थी। वैसे तो रूचि की सास का स्वभाव बहुत अच्छा था, पढ़ी–लिखी भी थी, लेकिन वो बेटियों को बहुत सारा दहेज देने के हक़ में थी। उनका विचार था कि बेटियों को जितना ज़्यादा दहेज दिया जाए उतना ही वो ससुराल में खुश रहती हैं। उनका ज़्यादा मान इज़्ज़त होता है। वैसे उन्होंने रूचि को कभी कुछ नहीं कहा। रूचि से वो ख़ूब प्यार भी करती थी। हमारे देश में वैसे भी माँ–बाप कहाँ मानते हैं। रूचि अपने दो भाईयों की इकलौती बहन थी। बिना माँगें ही हर तीज–त्यौहार पर सब हाज़िर होता था।

रूचि की शादी के दो साल बाद नीलू की शादी अच्छे से निपट गई। इसके लिए गौरव को ऑफिस से बहुत सा लोन लेना पड़ा । सोचा, कोई बात नहीं, धीरे–धीरे किश्तों में चुक जाएगा। लेकिन मुश्किल तब आन पड़ी जब नीलू की सास ने परंपरा के नाम पर उनके हाथ में साल भर में आने वाले त्यौहारों पर देने वाले नेग की लिस्ट एडवांस में ही पकड़ा दी। लिस्ट पढ़ कर गौरव और रूचि के तो होश ही उड़ गए। सास ने तो बस इतना ही कहा कि जब बेटी का घर बसाना है तो ये सब तो करना ही पड़ेगा। धीरे–धीरे नीलू का लालच भी बढ़ता गया। गौरव की माँ के आगे बोलने की हिम्मत नहीं थी और छोटी लाडली बहन को मना करना उसे अच्छा नहीं लगता था। गौरव तो पहले ही लोन ले चुका था, अब रूचि को भी लेना पड़ा । पहले ये सोच कर नहीं लिया था कि गौरव की तनख़्वाह कम होगी, तो रूचि के पैसों से

घर चल जाएगा, लेकिन साल भर नेग देने का मतलब हर महीने कोई न कोई त्यौहार, जन्मदिन या व्रत इत्यादि। कपड़े, मिठाई तो आ जाते लेकिन मुश्किल तब पड़ती जब साथ में कोई ज़ेवर भी देना पड़ता। तब तक व्यास का जन्म भी हो चुका था और माँ जी की तबियत भी ठीक नहीं रहती थी। पिताजी की पेंशन भी कुछ ख़ास नहीं थी। गौरव की शादी, मकान की मुरम्मत में भी काफ़ी ख़र्च हो चुका था। साल से पहले नीलू भी जब बेटे की माँ बन गई तो मजबूरन रूचि को अपना ये प्यारा कुंदन का हार भी बहुत सारे सामान के साथ देना पड़ा। किसी ने उससे माँगा तो नहीं था, लेकिन इस समय सोना खरीदने की हिम्मत नहीं थी। रिवाज अनुसार नीलू का पहला बच्चा मायके में ही होना था, तो विदाई के समय उसके इस प्यारे से हार की भी विदाई हो गई थी।

जब से शादी हुई है, रूचि के मन में कभी भी सास नन्दों के साथ 'तेर मेर' की भावना नहीं आई, सब कुछ साँझा ही समझा उसने। नीलू तो उसके कपड़े, गहने, सैंडिल सब मज़े से जब जी चाहता पहनती थी, दोनों का नाप भी लगभग एक ही था, लेकिन ये हार देते समय रूचि का मन पहली बार खराब था। दरअसल ये हार उसे बहुत पसंद था। उसकी मम्मी ने भी बहुत ही चाव से उसके लिए ये हार पसंद किया था। साथ में मेल खाते हुए झुमके और अँगूठी भी थी। अभी तो उसने जी भर कर हार पहना भी नहीं था। मजबूरी थी, खर्चे इतने बढ़ गए थे कि सोना खरीदना वश से बाहर था। माँ जी के पास भी पहनने भर के गहने ही बचे थे। वैसे भी माँ से ऐसी बात कभी की नहीं थी। हार और झूमके ही नेग में नीलू को दिए गए। अँगूठी काफ़ी पहनने के कारण थोड़ी पुरानी सी लगने लगी थी, इसलिए नहीं दी गई। एकदम से उठकर उसने अपने कमरे में जाकर अपनी अलमारी खोली और वो अँगूठी निकाली। हार से जाकर मिलाई, कि कहीं उसका भ्रम तो नहीं । लेकिन अंदर की और लगी हुई छोटी सी दुकानदार की मुहर भी स्पष्ट थी।

समय पंख लगा कर उड़ता रहा। बाद में धीरे धीरे हालात ठीक हो गए। कोई कमी नहीं रही। बहुत से गहने भी बन गए, मगर रूचि की यादों में उस हार की कसक कहीं न कहीं बाकी रह गई। नीलू भी अपनी घर–गृहस्थी में मग्न हो गई। तीज त्यौहारों पर ही आना होता था। लेकिन उसे इतना पता था कि नीलू ने भी वो हार अपनी नन्द की शादी में दे दिया था। उसके बाद तो वो हार पुराण को भूल ही चुकी थी। लेकिन आज फिर पुरानी यादें उसके सामने आ गई।

अब तक रूचि थोड़ा सँभल चुकी थी। उसके होंठों पर फीकी सी मुस्कान तैर गई। सोचा, कभी मौका लगा तो बहू से तरीके से इस हार के बारे में बात करेगी। हो सकता है आगे से आगे ये नेग के रूप में ही कई मंज़िले तय करता हुआ वापिस उसके पास आ गया या फिर न जाने कितनी बार बिक चुका हो और ये भी हो सकता है कि कितनों को खुश करता और कितनों का दिल तोड़ता हुआ वापिस ये हार उसके पास नेग बन कर गया और नेग के रूप में ही वापिस आ गया। हार की चमक आज भी वैसी की वैसी थी, लेकिन रूचि के अरमान इन तीस बरसों में बहुत बदल चुके थे।

■

2

नए साल की सौग़ात

ट्वेन्टी ट्वेन्टी वाला साल तो शायद कभी नहीं भूलेगा। जब से नया साल शुरू हुआ है, सबके मन में नई उमंगें हैं। पिछले साल ने जो दुःख दिए, जो जो नुकसान हुए उन सबकी भरपाई होना इतना आसान नहीं है और कुछ ज़ख़्म ऐसे भी मिले जो कभी नहीं भरेंगे, फिर भी कहते हैं न कि उम्मीद पे दुनिया है। बस तो इसी उम्मीद से इस बार नए साल का स्वागत कुछ ज़्यादा ही उत्साह से हो रहा है, परंतु करोना कि तलवार तो सिर पर अभी तक लटकी हुई है, इसलिए कुछ भी प्रोग्राम बनाने से पहले 'एहतियात' ज़रूरी है। 'अभिलाषा' सोसायटी में हर त्यौहार बड़े ही जोश से मनाया जाता था, लेकिन पिछले साल होली के बाद तो सब घरों में ही दुबक गए। हर जगह वीरानी छा गई। लॉक डाऊन भले ही खुल गया, मगर ज़िंदगी पहले की तरह पटरी पर आने का अभी कुछ पता नहीं। वैक्सीनेशन पर भी बहुत से प्रश्न चिन्ह् लगे हुए हैं।

लेकिन जब ज़िंदा हैं तो ज़िंदा दिखना भी चाहिए। सोसायटी में तय हुआ कि नए साल को मनाएँगे लेकिन कुछ अलग तरीके से। अपने अपने ब्लॉक में ही डिस्टैंस मेनटेन करके खुशी मनाई जाए। एक ब्लॉक में आठ घर थे। ब्लॉक नं॰ सात वालों ने मिलकर फैसला किया कि सभी मिलकर दस–बारह किलोमीटर दूर एक झील किनारे जाएंगे, बहुत ही अच्छी हरी भरी जगह है, साथ में एक छोटा सा पार्क भी है। तय हुआ कि सभी अपने अपने घर से कुछ न कुछ बना कर लाएंगे। शर्मा जी के बेटे ने जब यह सुना तो उसने बुरा सा मुँह बनाया और साथ चलने से इन्कार कर दिया। उधर गोयल साहब की बेटी को भी ये सब नहीं जँचा। साहनी साहब के बेटे ने तो मुँह पर ही कह दिया कि उसे नहीं जाना बुड्ढों के साथ। यूं समझो कि छोटे बच्चे ही खुश थे। बड़े कॉलेज पढ़ते बच्चे तो इस नए साल की पिकनिक में चलने को क़तई राजी नहीं थे। वो नहीं चाहते थे कि बाहर जाकर भी वही घर की दाल, रोटी, खीर खाई जाए। फ़ास्ट फ़ूड के जमाने में युवा लोग तो पास्ता, नूडल्स, मोमोज और न जाने क्या अजीब से नामों वाली डिशिज खाना पसंद करते हैं। घर का हैल्दी खाना छोड़कर बाहर खाना ही भाता है आजकल के बच्चों को।

इस खुशी के मौक़े पर सबसे दुःखी थे शर्मा जी। इकलौता बेटा विभास, दिन–ब–दिन हाथ से निकलता ही जा रहा था। कुछ ज़्यादा ही लाड़–प्यार मिला, उसका ही असर हुआ। पता नहीं क्यों उसका मिजाज़ ऐसा हो गया, जबकि शर्मा जी ने कभी भी उसकी नाजायज़ माँग को पूरा नहीं किया। उसे हर समय यही लगता कि घर वाले बहुत टोकते हैं। ऐसे न करो, वहाँ न जाओ, रात देर तक बाहर नहीं रहना। पढ़ाई में मन लगाओ, पॉकिट मनी का हिसाब माँगना, दोस्तों पर निगाह रखना। और भी बहुत सी बातें जो विभास को पसंद नहीं थी, जबकि सम्पन्न परिवार और हर सुख–सुविधा थी उसके पास, लेकिन बच्चे समझे, तब ना।

आख़िर मिसिज़ शर्मा ने किसी तरह बेटे को साथ चलने के लिए मना ही लिया। सभी के बच्चे साथ जा रहे थे। सपरिवार जाने की ही बात हुई थी। तय हुआ था कि इस ब्लॉक में रहने वाले आठों परिवार मिल कर कुछ समय बिताएँगे तो जान पहचान भी बढ़ेगी। वरना तो इस भागमभाग में किसी के पास समय नहीं और ऊपर से करोना। मिलना–जुलना लगभग बंद ही था। कभी कोई सामने आ गया या लिफ़्ट में मिल गया तो हैलो-हाय हो गई वरना किसी को किसी से मतलब नहीं। आपस में मिले–बैठे भी काफ़ी समय हो गया था। नए साल के साथ–साथ जनवरी में लोहड़ी, मकरसक्रांति और छब्बीस जनवरी भी तो होती है। घरों में कैसे–कैसे ड्रामे हुए किसी को पता नहीं, लेकिन सभी परिवार नियत दिन और समय पर निश्चित स्थान पर पहुँच गए। खाने–पीने का सामान देख कर सब दंग रह गए। चाय, कॉफी से लेकर बर्गर, पिज़्ज़ा, नूडल्स। कई प्रकार की सब्जियाँ, चावल, रायता, स्नैक्स, डेज़र्ट, फल और बच्चों के मनपसं चॉक्लेटस। सभी औरतों ने एक अलग से मीटिंग करके ही तो ये मेन्यू तैयार किया था, जिसमें सब की पसंद का ध्यान रखा गया।

सभी ने पहले मिलजुल कर नाश्ता किया, फिर गपशप शुरू हो गई। धूप भी खूब निकली हुई थी। सर्दी के मौसम में सूर्य देवता मेहरबान हो जाए तो क्या कहने। सभी हमउमरों के अपने अपने गरूप बन गए। शर्मा जी का बेटा विभास और साहनी जी का बेटा साकेत लगभग एक ही उम्र के थे। गोयल साहब की बेटी प्रीति अपने साथ अपनी सहेली रिया को ले आई थी ताकि कंपनी बनी रहे। बाकी बच्चे इनसे छोटे थे लेकिन सेठी जी की भतीजी इरा लखनऊ से आई हुई थी, सो वो भी साथ आ गई। तय हुआ कि अभी बातें वातें करते है, लंच के बाद कुछ नाचने गाने, मनोरंजन का प्रोग्राम होगा। बच्चों की अपनी टोली बन गई, औरतें अपनी बातों में मग्न। तीन चार पुरूष ताश लेकर बैठ गए तो बाकी आसपास घूमने निकल गए। सिर्फ़ विभास,

साकेत, प्रीति, रिया, इरा ही चुपचाप बैठी थी। प्रीति और रिया तो पुरानी सहेलियाँ थी, उन्होंने इरा को भी 'हाय' बोल कर अपने पास बुला लिया। देखा जाए तो इरा तो मेहमान थी, अब रह गए विभास और साकेत। एक सोसायटी तो क्या एक ब्लॉक में रह कर भी वो कभी नहीं मिले। दरअसल साकेत का परिवार कुछ महीने पहले ही आया था, तभी करोना का प्रकोप शुरू हो गया। नए लोगों से मिलना तो दूर की बात, जानकारों में ही दूरियां आ गईं।

वैसे भी इन दोनों का मूड़ तो घर से ही ठीक नहीं था, ख़ास तौर पर विभास का। बोर होते हुए विभास को और कुछ नहीं सूझा तो वह अपना मोबाईल लेकर बैठ गया, लेकिन यह क्या, बैटरी लगभग ख़त्म ही होने वाली थी और चार्जर भी नहीं था। अब माँगे भी किससे, अभी तक किसी से बात तक तो की नहीं थी। साकेत देख रहा था, उसने पास आकर अपना पावरबैक ऑफर किया, इत्तिफ़ाक़ से वो उसी कंपनी का था। विभास का चेहरा खिल उठा । पहले भी तो लोग रहते ही थे मगर आज कल तो ऐसा लगता है जैसे मोबाईल के बिना सांसें ही थम जाएंगी। खाने को भले कम हो, मगर मोबाईल तो बढ़िया कम्पनी का ही होना चाहिए। मोबाईल के बहाने से ही दोनों में बातचीत शुरू हो गई। वैसे तो आज के माडर्न समय में लड़के, लड़कियों में दोस्ती होते देर नहीं लगती, लेकिन अभी तक इन सब की बात नहीं हुई थी। नाश्ता किए लगभग दो घंटे हो चुके थे तो एक बार चाय कॉफी का दौर तो चलना ही था। तीनों लड़कियों ने सबको थरमस में लाई हुई चाय, कॉफी सर्व करने का ज़िम्मा उठाया। सबको देने के बाद उन्होंने विभास और साकेत को जब कप थमाए तो थैंक्स कहते हुए दोनों ने ले लिए। तीनों लड़कियां भी वही पास पड़े हुए बैंच पर अपना अपना कप लेकर बैठ गईं।

थोड़ी सी जान–पहचान के बाद बातचीत का जो दौर शुरू हुआ तो ठहाकों तक पहुँच गया। कॉलेज की, फ़िल्मों की, फ़ैशन की हर तरह की बात हुई। एक घंटे में इन सबके चेहरे ऐसे खिल गए जैसे सुहानी सुबह में ओस की बूँदें। बच्चों के चेहरे पर खुशी देखकर माँ–बाप भी खुश थे। विभास को हंसते बोलते देखकर शर्मा जी ने तो जैसे मन ही मन चैन की साँस ली। लंच का माहौल तो इतना खुशनुमा था कि पूछो मत। सभी आपस में घुलमिल चुके थे। कुछ लोगों का मन अब थोड़ा सुस्ताने का था, क्योंकि कॉफी थकान हो चुकी थी। लेकिन उन पाँचों की टोली फिर जम गई। टहलने के साथ–साथ बातें भी हो रही थी। परिवार की बातें शुरू हो गई। नई पुरानी पीढ़ी के अंतराल की बात हुई। सबसे पहले विभास का मुँह खुला, यार पुराने

लोग टोकते बहुत हैं, हर बात में दख़लअंदाज़ी। माँ-बाप समझते नहीं कि अब हम बड़े हो गए हैं। अभी उसकी बात पूरी नहीं हुई थी कि साकेत ने भी अपने मन की भड़ास निकाली। 'मेरा तो इन बुज़ुर्गों की टोली में आने का बिल्कुल मन नहीं था, पर चलो अच्छा हुआ, आप सबसे दोस्ती हो गई। लड़का होकर भी मुझ पर हज़ारों बंदिशें हैं, रात को जल्दी घर आना, बाईक तेज़ न चलाना। मेरी माँ तो हर समय संस्कारों की दुहाई देती रहती है। यार, मैं तो रिश्तेदारों के पैर छूता–छूता ही थक जाता हूँ', साकेत इस तरह दुःखी होकर बोल रहा था जैसे अभी तक उसकी कमर दुःख रही हो।

लड़कियां भी कहाँ पीछे रहती। सबसे पहले प्रीति शुरू हुई। उसकी पढ़ाई से ज़्यादा दिलचस्पी फ़ैशन में थी। 'मेरी माँ तो हर समय मेरी पढ़ाई के पीछे पड़ी रहेगी। मेरे कपड़ो में मीनमेख निकालेगी। थोड़ा सा भी अंधेरा हो जाए तो फ़ोन पर फ़ोन, दरवाज़े पर ही खड़ी रहेगी' और भी बहुत कुछ कहा प्रीति ने। अब बारी थी रिया और इरा की। रिया के मम्मी, पापा डॉक्टर थे। प्रीति ने कोहनी मार कर उसके भी विचार जानने चाहे। पहले तो वो चुप रही, लेकिन फिर उदास सी बोली, मेरे माँ बाप को तो फ़ुर्सत ही नहीं कि बच्चों से दो बात कर लें। मैं और मेरा भाई तो नौकरों के हाथों पले हैं। दिन रात की डयूटी में उनकी शक्ल ही कम दिखती है, लेकिन साल में एक दो बार हम सभी घूमने ज़रूर जाते हैं, यहाँ तक कि विदेश में भी। घूमने का ज़िक्र करने भर से ही उसके चेहरे पर चमक आ गई। दो मिन्ट तक चुप्पी छाई रही, सब इरा का मुँह देख रहे थे। उसकी आँखों के कोर गीले थे। ठंडी साँस लेकर वो बोली, काश कि मेरे पापा आज जीवित होते, तो मेरी भी चिंता करते। हम दोनों बहनें बहुत छोटी थी कि पापा चल बसे। मजबूरन मम्मी को उनके स्थान पर नौकरी करनी पड़ी। बुज़ुर्ग दादा–दादी ने पाला। अब तो वो भी नहीं रहे। मम्मी बहुत अच्छी हैं, लेकिन घर, बाहर, नौकरी के इतने काम हैं कि हम समय से पहले ही बड़े हो गए। तुम सब किस्मत वाले हो जिन्हें माँ–बाप दोनों का प्यार मिला है। काश कि मेरे पिताजी आज जीवित होते। एक बात और, कई बार माँ–बाप की मजबूरियाँ भी होती हैं, बस इतना समझो कि हर माँ–बाप बच्चों का भला चाहते हैं। आज के ज़माने में लड़के, लड़की का अंतर बेईमानी है। मेरे विचार से तो बड़ों के पास अनुभव का अनमोल ख़ज़ाना होता है। वो तो हमारी जड़ें हैं, उन्हें हमारी चिंता होती है, वो हमारी केयर करते हैं, हमें असीमित प्यार करते हैं, हम कौनसी कमाई कर रहे हैं, हमारी हर इच्छा कौन पूरी कर रहा है? भीगी आँखों से उसने और भी बहुत कुछ कहा। बाकी सब उसकी

बातें सुनकर चुप हो गए। कुछ बचा नहीं था बोलने को, लेकिन उनकी आँखें खुल चुकी थी।

अब तक शाम हो चुकी थी। गाने बजाने का दौर चला। अंताक्षरी में जहाँ बड़ों ने पुराने गाने गाए तो इन बच्चों ने भी नए गानों से खूब रंग जमाया। बीच–बीच में तालियाँ बजाते हुए नाचने भी लगते। खूब मस्ती हुई। सूर्य छिपने को था, हँसते–खेलते फिर मिलने का वादा करके गाड़ियो में सामान रखा। अपने पराए का, उम्र का भेद, सब ख़त्म हो चुका था । प्रसन्न तो सभी थे, लेकिन शर्मा जी को हैरानी तब हुई जब आते वक्त विभास मुँह बना कर गाड़ी में पीछे जाकर बैठ गया था और अब गुनगुनाते हुए स्टेयरिंग संभाले हुए बैठा था। शर्मा जी भी मुस्कुराते हुए उसके बराबर आकर बैठ गए और सीट बैल्ट लगाने लगे। बच्चों के बदले हुए व्यवहार के रूप में सबको जैसे नए साल की सौग़ात मिली हो।

■

3

फिर आई होली

अरे जल्दी–जल्दी हाथ चला कम्मो, तीन घंटे में तूने इतनी सी मिर्चें ही कूटी हैं और तू रानो, तीन दिन से मेथी सुखाने के काम में लगी है, अभी भी कुछ–कुछ गीली सी लग रही है, कोई काम पूरा नहीं हो रहा। अभी तो हल्दी कूटनी है, गरम मसाले तैयार करने हैं और भी न जाने क्या–क्या बाँधना है। छोटे मालिक के आने में केवल एक हफ़्ता ही तो बचा है, न जाने ये सारे काम सिरे चढ़ेंगे भी या नहीं। सुमित्रा ताई पूरी हवेली में घूम–घूम कर काम का जायज़ा भी लेती जा रही थी और बड़बड़ाती भी जा रही थी। दोपहर होते–होते आख़िर वो थक कर आंगन में बिछी चारपाई पर बैठ कर दो घड़ी सुस्ताने लगी तो रेशमा चाय बना कर ले आई। सबको चाय देकर सुमित्रा ताई को भी चाय का गिलास पकड़ाया और ख़ुद भी पास बैठकर सुड़क–सुड़क कर चाय पीने लगी। चाय ख़त्म होते ही सुमित्रा ताई झट से उठने को हुई तो रेशमा ने हल्के से उसे बाँह से पकड़ कर वापिस चारपाई पर बिठा लिया और प्यार से उसके खुरदरे हाथों को सहलाने लगी। 'थोड़ी देर आराम कर लो ताई, सब हो जाएगा, चिंता क्यों कर रही हो'?

'अरे चिंता न करूँ तो और क्या करूँ' ताई रेशमा का हाथ झटकते हुए बोली। 'कितना कुछ तैयार करना है, छोटे मालिक और सारे परिवार के लिए, तुझे नहीं पता, तूं तो बाद में यहाँ आई है। परदेस में रह कर भी वो वतन को नहीं भूले। बीस साल से अमेरिका में रह रहे हैं, पर हर साल यहाँ अपने देश, अपने गाँव ज़रूर आते हैं। कई बार बहूजी और बच्चे न भी आ पाए, तो भी छोटे मालिक विराज तो आए ही आए और इस बार तो हमें उनका और भी ज़्यादा ध्यान रखना है। पहले माँ जी सब संभाल लेती थी, अब सब हमारे ज़िम्मे है। बाहर रह कर भी वो जितना हो सके खाने का समान यहाँ से लेकर जाते हैं और ख़ास तौर पर मसाले। उनका कहना है कि हमारे देश जैसे मसाले कहीं भी नहीं मिलते। परदेस में रह कर भी जब रसोई से भारतीय मसालों की महक उठती है तो लगता है कि अपनी ही हवेली में खाना पक रहा है। और तो और जितना समय रहते हैं, हर रोज़ नए नए पकवान घर में बनते हैं। पकवानों के नाम से ही उसे माँ जी की याद आ गई। आँखें नम हो उठी तो मुँह दूसरी तरफ़ फेर लिया।

घुटनों में दर्द के बावजूद भी माँ जी सारा खाना अपनी देख–रेख में पकवाती। रसोई घर में ही मूढ़े पर बैठी रहती। सुमित्रा ताई अपनी ही धुन में बोले जा रही थी। रेशमा तो कब की वहाँ से जा चुकी थी। रसोई घर में कितना काम पड़ा था करने को। वैसे भी ये सब बातें वो कई बार सुन चुकी थी। रेशमा पिछले आठ महीनों से हवेली में काम कर रही थी। वो मालिकों में से किसी से भी नहीं मिली, लेकिन सुमित्रा ताई से इतना कुछ सुन चुकी है कि उन सब के बारे में वो जान गई है। सुमित्रा ताई मालिकों की कोई रिश्तेदार नहीं, बल्कि बहुत पुरानी नौकरानी है। क़रीब तीस–पैंतीस साल पहले वो शादी के बाद पति के साथ किसी दूसरे राज्य से यहाँ आई। यहाँ पर उसके पति के कुछ दूर के रिश्तेदार और जानकार पहले से ही थे। दो–तीन साल उसके पति ने शहर में मेहनत–मज़दूरी की और ताई ने भी घरों में साफ़–सफ़ाई का काम किया, लेकिन फिर उन्हें गाँव की इस हवेली के ज़मींदार के घर काम करने का मौका मिला। ताई के पति को खेतीबाड़ी का काम आता था, बस एक बार जो मौका मिला तो वो यहीं के हो गए। सावित्री घर के काम करती और उसका पति संता खेतों का काम संभालता। काफ़ी ज़मीन थी, बड़ी हवेली थी तो ज़ाहिर है कि नौकर–चाकरों की फ़ौज तो होनी ही थी।

सावित्री और संता की मेहनत और ईमानदारी ने मालिकों के मन में अपनी अलग ही जगह बना ली। जल्दी ही उन्हें हवेली के एक कोने में रहने की अच्छी जगह मिल गई। पता ही नहीं चला कब वो घर के सदस्य समान ही हो गए। दिन–रात काम में लगे रहते, मालिक (ज़मींदार) भी बड़े दयालु और हमदर्द। वहीं रह कर सावित्री ने तीन बच्चों को जन्म दिया। दो बेटे और एक बेटी। सबकी पढ़ाई–लिखाई यहाँ तक कि शादियाँ भी हो गई। संता गांव में भी पैसे भेजता रहा। इधर मालिक के एक ही बेटा था। उच्च शिक्षा प्राप्त करने जो अमेरिका गया तो वहीं का ही हो गया। शादी भी वहीं पर हो गई, पर परिवार भारतीय ही था। ज़मींदार साहब भी अब बूढ़े हो चले। नौकर–चाकरों से काम लेना भी कहाँ आसान था। कुछ ज़मीन बेच कर विराट को अमेरिका में सब सुख–सुविधाएँ जुटा दी और विराज को भी कहाँ कमी थी। पढ़–लिख कर वहाँ अपना बिजनेस चालू कर दिया था। मालिक–मालकिन दो बार बेटे के पास गए पर वहाँ उनका दिल न लगता। कुछ साल पहले दिल के दौरे से मालिक चल बसे तो माँ जी अकेली रह गईं।

विराज तो हर साल ही आता था। उसने बहुत चाहा कि माँ जी चल कर वहीं रहे, मगर माँ जी ने साफ़ इन्कार कर दिया। मालिक के बाद तो वो कभी अमेरिका गई ही नहीं। यूं तो सावित्री और संता पहले भी घर के मैंबर के समान थे, लेकिन

मालिक के जाने के बाद तो माँ जी को उन्हीं का ही सहारा था। उनका एक बेटा अच्छी नौकरी पर लगकर किसी शहर में रहने लगा और बेटी की शादी हो गई। छोटा बेटा भी पढ़–लिख गया था, लेकिन माँ जी के कहने पर वो उन्हीं का ही काम संभालता। धन संबंधी सारे काम उसके ज़िम्मे थे। एक तरह से वो पुराने ज़माने का मुनीम और नए ज़माने का सी.ए. था। शादी के बाद वो तो अलग मकान में रहता था जबकि उसके माता पिता हवेली में रहते। दस बारह कमरों की हवेली और रहने वाली केवल माँ जी। कभी–कभार ही कोई रिश्तेदार आता। माँ जी ने सावित्री को बताया था कि जब वो ब्याह कर आई तो कितनी भरी–पूरी थी हवेली। उसके पति चार भाई, दो बहनें, सास–ससुर यहाँ तक कि दादी सास भी थी। धीरे–धीरे सब बिख़र गए। अपना–अपना हिस्सा लेकर कोई कहीं तो कोई कहीं बस गया। लेकिन विराज के पिताजी यानि कि ज़मींदार साहब को गाँव से बहुत प्यार था। वो सबसे बड़े भी थे और उनके पुरखे न जाने कब से वहीं पर रह रहे थे।

मालिक के होते हवेली में चहल पहल रहती थी। वो राजनीति से दूर थे, लेकिन गाँव वालों के लिए मुखिया ही थे। लोग अपनी समस्याएँ लेकर अक्सर उनके पास आते थे। वो सभी की भरसक मदद करने की कोशिश करते और मालकिन भी हमेशा उनका साथ देती। दीवाली और होली पर ख़ास रौनक़ होती। दोनों ही त्यौहार हवेली में ख़ास चाव से मनाए जाते। काफ़ी मेहमान आते, सबको तोहफ़े दिए जाते। हवेली में काम करने वाले सभी कर्मचारियों को त्यौहारों का इंतज़ार रहता। पहले पहल तो विराज दोनों त्यौहारों पर आता, परंतु शादी के बाद दो बच्चे, उनका स्कूल, अपना काम, तो वो केवल होली पर ही आते। एक तो उन्हें होली बहुत पसंद थी, दूसरा मौसम बहुत बढ़िया होता। उन दिनों तो हवेली में रौनक़ ही रौनक़ होती। बीस दिन या महीना तो वो रहते ही रहते। मालिक के बाद बहुत कुछ बदल गया। सब रौनक़ें ख़त्म हो गईं। चार कमरे ही खुले रखे थे, बाकी सब पर ताला लगा रहता। सब की सफ़ाई करनी भी कौनसी आसान थी। लेकिन जब विराज और उसका परिवार आता तो सारे कमरे खोल दिए जाते। उस समय कुछ रिश्तेदारों का भी आना जाना लगा रहता। पहले वाली बात तो नहीं थी, लेकिन मालकिन की पूरी कोशिश रहती कि विराज और बच्चों को भरपूर खुशी मिले।

चार साल बाद मालकिन भी चल बसी। दीवाली के थोड़े समय बाद की ही बात रही होगी। एकदम से ही अटैक हो गया। मजबूरी वश उस समय विराज अकेला ही आ पाया। सब लोग दीवाली पर कितने खुश थे, लेकिन होनी को कौन टाल सकता है और फिर मौत तो अटल है। विराज को जल्दी ही वापिस जाना था, तो

सारा कारोबार एक बार संता के हवाले ही था। वैसे तो माँ जी के होते भी सब वही देखता था, लेकिन माँ जी को सब लेन देन, ज़मीन, कारोबार के बारे में पता था। चांस कुछ ऐसा बना कि वो होली पर नहीं आ सके। वैसे भी माँ जी को गुज़रे अभी कुछ महीने ही हुए थे, तो होली भी किसने मनानी थी। संता और उसके बेटे द्वारा सारी जानकारी उन्हें मिलती रहती। अब जबसे विराज के आने की खबर मिली तो सबके चेहरे पर खुशी थी, लेकिन अंदर ही अंदर एक डर भी था कि कहीं वो अपनी ज़मीन–जायदाद बेच ही न जाए। काफ़ी लोगों का रोज़गार उनसे जुड़ा था। जबसे विराज के आने की खबर सुनी सावित्री ताई के तो पाँव ज़मीन पर ही नहीं पड़ रहे थे, पहले की तरह ही सारी तैयारियाँ कर रही थी।

माँ-बाप तो अब रहे नहीं। पता नहीं छोटे मालिक अब क्या करेगें। क्या पता सब कुछ बेच कर फिर कभी यहाँ न आएं। हवेली और ज़मीन वगैरह पर काम करने वाले कारिंदों के मन में यही डर समाया था। निश्चित समय पर विराज बाबू, उनकी पत्नी और दोनों बच्चे गाँव पहुँच गए। पहले की तरह ही सब कुछ था, मगर जो कमी थी वो तो थी। कुछ किया भी नहीं जा सकता था। होली से एक दिन पहले एक मीटिंग रखी गई। सब धड़कते दिल से पहुँचे कि न जाने आगे क्या होगा। सबको अपना भविष्य ख़तरे में लग रहा था। दरअसल असमंजस में तो विराज और उसकी पत्नी विदुषी भी थे। माता–पिता के होते भारत आने का चाव रहता था, जब माँ जी थी तब भी ठीक था। विदुषी के मायके में से तो कोई भी यहाँ नहीं था। पहली बार उन्हें हवेली इतनी सूनी लगी, लेकिन जो चले गए, उनके लिए तो केवल दुआ ही की जा सकती है, लेकिन जो ज़िंदा हैं, उन्हें तो सब कुछ चाहिये। विराज के पास भी कोई कमी नहीं थी। अपनी मातृ- भूमि से उसे भी बहुत प्यार था। जब सब इकट्ठा हुए तो स्वागत इत्यादि के बाद विराज ने कहा कि किसी को चिंता करने की ज़रूरत नहीं, सब कुछ वैसे ही चलेगा, जैसे चल रहा है। एक ट्रस्ट बना दिया जाएगा, जिसकी देखरेख में सब होगा। मैं आप सभी से भी पहले की तरह मेहनत, लगन, और वफ़ादारी की उम्मीद रखता हूँ। जब भी समय मिला, हम आते जाते रहेगें। कल हवेली में होली पहले की तरह ही धूमधाम से मनाई जाएगी। तालियों की गड़गड़ाहट से हवेली गूँज उठी। सब के चेहरे पर खुशी की लहर दौड़ गई। सावित्री ताई सबको कल होली की तैयारी करने और तरह–तरह के पकवान बनाने के बारे में बता रही थी, विशेषकर घर के बने ताजा मावे की बनी केसर वाली गुजिया जो कि विराज और बच्चों को बहुत पसंद थी। आख़िर फिर से ख़ुशियों भरी होली आ ही गई!

■

4

एक कप चाय

'प्रीतो एक गिलास चाय लाना'

'अभी लाती हूँ माँ जी'

बिंबोली एक घंटे से चाय का इंतज़ार कर रही थी, लेकिन प्रीतो के पास भी वही रटा–रटाया उत्तर था। वो भी क्या करे। सुबह के समय किसी को स्कूल जाना तो किसी को ऑफिस, किसी का रूमाल ग़ायब तो किसी को टाई नहीं मिल रही। एक हाथ नाश्ता बनाने में तो दूसरा सब को सामान पकड़ाने में। बूढ़ी बिंबोली की आवाज़ भला कौन सुनता।

सब के जाने के बाद आखिर बेचारी बिंबोली को चाय नसीब हो ही गई। सर्दी के मौसम में हर किसी का मन उठते ही चाय पीने को करता है, ख़ास तौर पे अदरक वाली चाय, मगर बिंबोली की किस्मत कुछ अलग थी।

माँ जी को स्टील के गिलास में चाय देकर प्रीतो भी अपनी चाय का कप लेकर पास ही बैठ कर पीने लगी। काम का तो ढेर लगा था, लेकिन प्रीतो भी सब को भेजकर पाँच–दस मिन्ट सुस्ता कर चाय पी कर फिर से काम पर लग जाती थी।

प्रीतो ने कई बार माँ जी से पूछा कि वो हमेशा गिलास में ही क्यों चाय पीती हैं, कप या मग में क्यों नहीं?, लेकिन माँ जी सिर्फ़ मुस्कुरा कर रह जाती या फिर कहतीं, जा अपना काम कर, बहुत काम पड़ा है, कभी फ़ुर्सत में बताऊँगी।

नौकरानी प्रीतो घर के काम के साथ–साथ जी जान से अठहतर वर्षीय माँ जी की सेवा करती थी। घर में और किसी के पास तो समय था नहीं। छुट्टी वाले दिन भी सब अपने में व्यस्त रहते। माँ जी बीमार नहीं थी, पर उम्र का तक़ाज़ा था। अपना नित्यकर्म वो ख़ुद संभालती थी और तो और किताबें पढ़ने की बहुत शौक़ीन थी। मोटे शीशे का चश्मा चढ़ा कर वो पढ़तीं, तभी तो समय का पता न चलता। इस उम्र में भी उनकी सेहत ठीक थी, मगर काम नहीं कर पाती थीं। यूं तो प्रीतो सारा कम कर देती थी, लेकिन उनकी इच्छा होती थी बहू के हाथ की बनी चाय पीने की। बहू तो बाद में आई, शुरू से ही उनके नसीब में किसी अपने के हाथ की बनी चाय पीनी नहीं लिखी थी।

देखा जाए तो इतनी सी बात, सोचा जाए तो बहुत बड़ी, इच्छा तो फिर इच्छा ही है, छोटी हो या बड़ी। माँ जी को किसी तरह की कोई कमी नहीं थी, पैसों की तो बिल्कुल भी नहीं। अपनी पैंशन के साथ–साथ पति की फ़ैमिली पेंशन भी नियमित उनके खाते में आ जाती थी, लेकिन एक कसक उनके मन में शुरू से रही। माँ जी अक्सर पुरानी यादों में खो जातीं।

'बिंबो, एक कप चाय लाना'

'माँ, सुबह से तीन कप चाय आप पी चुके हो'

'एक कप और बना दोगी तो मर न जाओगी'

'पर माँ, मुझे कॉलेज भी तो जाना है'

'अरे तू कौन सा पढ़ कर कलेक्टर लग जाएगी, घर की बाकी औरतों की तरह घर गृहस्थी ही तो सभांलनी है'

बिंबो ने माँ की बात की और कोई ध्यान न दिया और जल्दी–जल्दी एक और कप चाय का बना कर माँ के आगे रख दिया। फटाफट साईकल निकाली और कॉलेज की और चल दी।

घर में किसी को बिंबो की पढ़ाई से कोई मतलब नहीं था। सात बहन भाईयों में बिंबो सब से बड़ी थी। सारे घर के कामों में उसे हाथ बँटाना पड़ता। ये वो ज़माना था जब लड़कियों को ज़्यादा पढ़ाने का रिवाज़ नहीं था। आठ दस जमात पास कर ली, चिट्ठी पत्री लिख पढ़ ली, बस इतना ही बहुत था। माँ का बस चलता तो बिंबो को कभी कॉलेज न जाने देती, लेकिन उसके पिता जी को पढ़ाई का शौक़ था। वो इस छोटे से शहर में प्राईमरी टीचर थे। उस जमाने में आठ- दस बच्चे होना आम बात थी।

बिंबो जहां कॉलेज जाती थी, वहीं सबसे छोटा गुल्लू उन्हीं के स्कूल में पहली कक्षा में पढ़ता था। बाकी सभी बच्चे भी स्कूल जाते थे। बिंबो से दो साल छोटी सोनी को पढ़ाई का कोई शौक़ नही था। तीन साल लगा कर बड़ी मुश्किल से दसवीं पास की थी। अब सिलाई सीख रही थी। बाकी बच्चे भी पढ़ रहे थे। उन दिनों बच्चों पर पढ़ाई का कोई बोझ नहीं होता था, जो जितना पढ़ ले ठीक है।

बड़ी होने के नाते घर का काफ़ी काम बिंबो के ज़िम्मे ही होता। जैसे–तैसे पढ़ाई करके बिंबो भी सरकारी स्कूल में अध्यापिका लग गई। जल्द ही उसकी शादी हो गई। वैसे तो सब ठीक था, लेकिन यहाँ भी बिंबो सबसे बड़ी बहू बनी। दो ननदें

और दो देवर उससे छोटे थे। सास अक्सर बीमार रहती, दिल की मरीज़ भी थी। एक देवर नौकरी करता, बाकी दोनों पढ़ते थे। ससुर की दुकान थी। सुबह उठ कर सबके लिए चाय बनाना बिंबो का ही काम था। सुबह क्या शाम को, जब भी कोई मेहमान आए, जब भी किसी का मन चाहे, बिंबो को ही आवाज़ दी जाती।

बिंबो कामचोर नहीं थी, सिर्फ़ उसका मन होता कि कभी कोई उसके हाथ में भी बिस्तर पर बैठे–बैठे चाय का प्याला थमा दे। ननदों को काम से कोई मतलब नहीं था। सास बीमार थी। शादी के बाद देवरों ने अलग गृहस्थी बसा ली। तब तक बिंबो के दो बेटे पैदा हो चुके थे। ननदें भी शादी करके अपने घर चल गई। जब भी आतीं केवल हुकुम चलातीं और मौज–मस्ती करतीं।

बात मायके ससुराल तक ही नहीं, बिंबो को याद है जब वो ननिहाल जाती थी तो वहाँ भी वो सबसे बड़ी थी, क्योंकि उसकी माँ अपने आठ बहन भाईयों में सबसे बड़ी थी। लोग नानके जा कर मज़े करते हैं, लेकिन बिंबो को वहां भी आराम नहीं था। माँ और नानी ख़ूब बातें करतीं और बिंबो काम के साथ–साथ कई बार चाय बनाती और पापा भी घर में सबसे बड़े थे, तो बिंबो अपने कज़नस में भी सबसे बड़ी थी। उसे तो हर जगह ही काम करना पड़ता।

उस जमाने में घरों में कामवालियां भी कम ही रखी जाती थी और मध्यम वर्गीय परिवार के लिए ये मुश्किल भी था। पता नहीं बिंबो को हर जगह चाय बनाने का काम ही क्यों मिल जाता। दो वजह हो सकती हैं, या तो वो चाय बहुत स्वाद बनाती है, या फिर उसे ये काम आसान समझ कर सौंप दिया जाता है। बिंबो को ग़ुस्सा आता उन अंग्रेज़ों पर, जिन्होंने भारतीयों को चाय पीने की आदत डाल दी। वैसे चाय पीना पसंद तो बिंबो को भी बहुत था, लेकिन कोई और बना कर दे तब। कितना मज़ा आता होगा न उस चाय को पीने में जब आप कुर्सी पर बैठ कर, टाँगें मेज़ पर रखें और कोई बढ़िया सी चाय कप प्लेट में ट्रे में रख कर आपके लिए लाए।

लेकिन ऐसा नसीब कहां बिंबो का। एक बार तो हद ही हो गई। उसकी शादी के एक साल बाद उसकी एक कज़न की शादी थी। खाना बनाने के लिए तो बाहर कुक थे, लेकिन चाय का काम घर की रसोई में ही चलता। वैसे तो दो तीन मेड थीं, लेकिन ढेरों काम थे। मासी ने बड़े प्यार से कहा, "बिंबो बेटा, बस तेरी एक ही ड्यूटी है, घर के मेहमानों की चाय का ज़िम्मा तेरा है, देखना कोई नाराज़ न हो जाए"। ये नहीं कि बाहर चाय का इंतज़ाम नहीं था। बाहर स्टील के छोटे से ड्रम में पड़ी–पड़ी चाय ठंडी हो जाती, लेकिन सब चाय पीने की इच्छा लेकर रसोई में ही

आते। गरमा–गरम चाय की फ़रमाईश बिंबो से ही करते। देखा जाए तो इतनी छोटी सी बात के लिए मना भी तो नहीं किया जा सकता।

सिर्फ़ इतना ही नहीं, चाय के भी कितने रूप, चीनी कितनी हो, किसी को शुगर फरी चाहिए तो किसी को बिल्कुल फीकी चाय चाहिए। दूध पत्ती का ध्यान अलग से रखो। अभी तो शुक्र है, यहाँ पर किसी को ग्रीन टी वाले चोंचलों का पता नहीं, नहीं तो मुसीबत और भी बढ़ती। लगातार तीन दिन तक यही चलता रहा। बिंबो ढंग से तैयार भी नहीं हो पाती थी। उसने सोच लिया कि आगे से वो किसी न किसी तरह से इन झंझटों से दूर ही रहेगी।

समय अपनी गति से चलता रहा। बिंबों की नौकरी गाँव में थी। घर से आठ–दस किलोमीटर ही था। तब तक मोपेड का आविष्कार हो चुका था। औरतों को आने–जाने की कुछ तो सुविधा हो गई थी। बिंबो ने भी अपने लिए मोपेड ख़रीद ली थी। उस छोटे से स्कूल में चार–पाँच टीचर और थोड़े से बच्चे। कोई सेवादार नहीं। सफ़ाई से लेकर पानी भरना, स्कूल बंद करना, खोलना और भी अंदर बाहर के काम सब टीचरों के ज़िम्मे, या ये कहा जाए कि बच्चों के ज़िम्मे। बिंबो को यह देख कर बहुत दुःख होता। बेचारे बच्चे पढ़ने आए या काम करने। बाकी कामों के साथ–साथ अध्यापकों की रोटी–सब्ज़ी भी वही गरम करते और चाय तो बनानी ही थी।

किसी को कहना तो मुश्किल था, लेकिन यहाँ भी बिंबो दो बार सबके लिए चाय बना देती। उसके साथी कहते, "छोड़ो, बच्चों से बनवा लो" लेकिन बिंबो का मन न मानता। छोटी–छोटी लड़कियां, कितने अरमानों से स्कूल आती थीं, गांव में बहुत सारी तो आ भी नहीं पाती थीं, कम से कम जो आती हैं, वो कुछ तो सीखें। वैसे भी पता नहीं कब उनका आना घर वाले बंद करवा दें। बिंबो को बच्चों से बहुत स्नेह रहता, लड़कियों से विशेष तौर पर। कुछ इसलिए कि उसकी अपनी बेटी नहीं थी।

समय कितनी तेज़ी से भागता है, पता ही नहीं चलता। मायके ससुराल में सब अपनी गृहस्थी में व्यस्त। उसके भी दोनों बेटे बड़े हो गए। ख़ूब पढ़–लिख गए। सासू माँ भी ऊपर चली गई। बिंबो की हालत वही की वही। कहीं से भी थक–हार कर आती, चाय पिलाना तो दूर कोई पानी भी न पूछता। घर में तीनों मर्द और हमारे समाज में घर का काम मर्द तो कम ही करते हैं। ऐसा नहीं कि बिंबो के पति काम करना नहीं चाहते थे, लेकिन उन्हें काम करना आता ही नहीं था, सीखने की कभी कोशिश ही नहीं की।

कभी बीमारी में चाय बनाई भी तो ऐसी कि कोई पी न सके। एक बार बीमारी की हालत में जब वो बिंबो के लिए चाय बनाने लगे तो बिंबो ने कहा कि चाय में थोड़ी अजवायन डाल देना। जनाब ने जीरा डालकर चाय बना दी। उसके बाद तो बिंबो की कभी हिम्मत ही नहीं हुई। अब तक घर में पार्ट–टाईम नौकरानी का इंतज़ाम तो हो गया था, जो घर के अन्य कामों के साथ–साथ उसे चाय भी पिला देती, लेकिन बिंबो को मज़ा न आता। कभी दूध पत्ती का अनुपात ग़लत हो जाता तो कभी चीनी ही चीनी होती। कभी लाते–लाते ठंडी कर देती तो कभी कप उसकी पसंद का न होता। बहुत ज़्यादा भरा कप भी उसे पसंद नहीं था और चाय के ऊपर अगर ज़रा सी भी मलाई आ जाती तो भी बिंबो का मूड़ खराब हो जाता।

कभी–कभी उसे लगता कि कहीं वो ही तो ग़लत नहीं, या उसकी उम्मीदें कुछ ज़्यादा हैं। शायद उसे अपनी बनी चाय का फोबिया हो गया। अपनी और दूसरे की बनी चीज़ में कुछ तो अंतर होता है, लेकिन ऐसा नहीं। कई बार बाहर घूमते हुए उसे कई जगह पर बहुत ही बढ़िया चाय पीने को मिली, लेकिन रोज़ रोज़ तो बाहर नहीं जाया जाता।

तीस साल की उम्र में बड़े बेटे की शादी हुई, बिंबो ने तो कई बार कहा, लेकिन वो माना ही नहीं। लड़की उसके साथ ही काम करती थी, सुंदर, सलोनी, पढ़ी–लिखी बहु घर आ गई। कुछ दिन तो मेहमान नवाज़ी में निकल गए। धीरे–धीरे रूटीन सामान्य होने लगा। दोनों इकट्ठे ऑफिस जाते, आकर अपने कमरे में बंद हो जाते। घर के कामों से कोई मतलब ही नहीं। छुट्टी वाले दिन घूमना फिरना, दोस्तों संग ख़ूब हँसी ठिठोली, लेकिन सास–ससुर से कोई मतलब नहीं। छोटे बेटे की पोस्टिंग पहले से ही दूसरे शहर में थी। घर के काम के लिए सुबह से रात तक मेड थी।

दोनों सुबह हल्का सा ब्रेड बटर या ऐसा कुछ नाश्ता अपने लिए बनाते और चले जाते। बिंबो और उसका पति सुबह जल्दी चाय पी लेते थे। दोनों ने कभी भी माँ–बाप से नहीं पूछा कि वो भी चाय पीएंगे। उनके लिए शायद ये मामूली सी बात थी। लंच ऑफिस में लेते और रात का खाना भी बहुत कम घर पर खाते। अक्सर बाहर से ही आर्डर पर मँगवा लेते। एक दो बार उनसे पूछा भी, लेकिन पिज़्ज़ा, बर्गर, नूडल्स या ऐसा ही कुछ फ़ास्ट फ़ूड न तो उन्हें पसंद था और न ही उन्हें हज़म होता था। चार साल बीत गए। घर में एक नन्ही परी भी आ गई थी। हँसी खुशी समय निकल रहा था, लेकिन बिंबो अपनी चाय ख़ुद बनाती।

छोटे बेटे की भी शादी हो गई। उसकी नौकरी दूसरे शहर मे थी। दोनों नौकरी पर चले जाते। दो–चार बार बिंबो और उसका पति वहाँ गए, लेकिन दिल नहीं लगता था। काम वाली अपने समय पर आती और चली जाती। बहू तो बमुश्किल काम की बात करती और बेटा एक दो बार हाल पूछ कर चला जाता। मेहमान से बन कर रह जाते दोनो। इससे तो अपना घर ही भला और नहीं तो अड़ोस–पड़ोस से तो मेल–जोल था।

दो साल पहले पति भी बिंबो का साथ छोड़ गए। बिना किसी पर बोझ बने दो–चार दिन की बीमारी में ही चल बसे। बिंबो की दुनिया तो जैसे वीरान हो गई। सब कुछ होते हुए भी वो नितांत अकेला महसूस करती। बिंबो अक्सर सोचती कि उसमें ही कमी रही होगी। वो सबके काम करती रही, लेकिन अपने लिए किसी से एक कप चाय भी न बनवा सकी। हां, एक कसक ज़रूर थी, शायद बेटी होती तो कभी पूछती, उनकी पसंद पहचानती, लेकिन ये हुआ नहीं।

अब बिंबो को कोई चाहत नहीं थी। मगर जीने के लिए खाना–पीना भी ज़रूरी है। जैसा प्रीतो देती है, वो चुपचाप खा लेती है, लेकिन ज़िंदगी से उन्हें गिला ज़रूर है, सिर्फ़ एक कप चाय ही तो मांगी थी अपनी पसंद की बाकी तो जो दिया वो मुक़द्दर ने अपने आप दिया। इसलिए अब वो स्टील के गिलास में चाय पीती रहेगी, न कप देखेगी न चाहत रहेगी।

■

5

और उसूल बदल गए

सुबह से तीन बार माँ का फ़ोन आ चुका था, लेकिन राशि बात नहीं कर सकी। ज़ाहिर है, सुबह–सुबह काम ही इतने होते हैं कि किसी से बात करनी तो क्या ढंग से बैठ कर एक कप चाय पीने की भी फ़ुर्सत नहीं होती। पराग को ऑफिस और शान को स्कूल भेजकर ही वो चैन से सांस लेती है, तब तक काम वाली बाई भी आ जाती है। तब वो दो कप चाय बनाती है, एक उसे देती है और दूसरा स्वयं लेकर बाहर बालकनी में पौधों के पास बैठकर इत्मिनान से चाय पीती है और अख़बार पढ़ती है। और आज ये माँ को क्या हो गया, उन्हें पता है, राशि की दिनचर्या का। उनका फ़ोन हमेशा ग्यारह–बारह बजे के बाद ही आता है या जब वो करती है तो इसी समय करती है, तब माँ–बेटी बैठ कर इत्मिनान से बातें करती हैं। वैसे भी जब तक ज़रूरी न हो दोनों की बात दस–बारह दिन में एक बार ही होती है। राशि को हर समय फ़ोन से चिपकना पसंद नहीं और फिर उसे ऑनलाईन काम भी करना होता है।

अभी परसों ही मां से काफ़ी देर बात हुई थी, इसलिए आज माँ की तीन मिस्ड काल देखकर राशि को थोड़ी चिंता भी हो रही थी। सब ठीक–ठाक हो। वैसे चिंता की बात तो क्या होगी, अगर ऐसा होता तो मां उसे मैसेज डाल देती। फरी हो कर उसने माँ को फ़ोन लगाया तो झट से उनकी चहकती सी आवाज़ आई, "क्या बिट्टो, तुझे कब से फ़ोन लगा रही हूँ"। वो माँ आपको तो पता है, सुबह–सुबह कितना काम----। चल छोड़, माँ ने उसकी बात को बीच में ही काटते हुए अपनी बात शुरु की। दरअसल तुझे एक ख़ुशख़बरी देनी थी, मुझसे रहा नहीं जा रहा था। मीनू की शादी की बात पक्की हो गई है, जल्द ही 'रोके' की रस्म करनी है, इसी रविवार को शुभ मुहूर्त है। तूं अभी से तैयारी शुरू कर दे और हाँ शनिवार को ही पराग और शान के साथ पहुँच जाना। बहुत से काम तो तुझे ही करने हैं। मीनू मेरी छोटी बहन है। उसकी शादी की बात दो तीन जगह चल रही थी, लेकिन अभी तक कुछ फाईनल नहीं हुआ था। फिर परसों तो माँ ने कुछ बताया नहीं था।

"चलो, बहुत खुशी हुई, उसे कोई तो पसंद आया, कब से तलाश चल रही थी, लेकिन मैडम हाँ भी तो करे, दो तीन रिश्ते तो पराग की जानकारी में भी थे, लेकिन उसे तो न जाने कौन से सपनों के राजकुमार की तलाश थी। मगर अब रिश्ता

हुआ कहाँ, उस नकचढ़ी का, कानपुर, लखनऊ या फिर दिल्ली में ही रहना है उसे"। अरे नहीं, हम सब तो फालतू में ही भटक रहे थे, दूल्हा तो घर में ही था। याद है वो तेरी आगरा वाली मौसी, वो मेरी चचेरी बहन, उसका बेटा सनम, अभी पिछले साल ही अमेरिका से आया है। किसी बहुत बड़ी कम्पनी में नौकरी करता है। आजकल दिल्ली में ही है, अक्सर घर में आता जाता था, बस हो गई प्रेम कहानी शुरू। हमें तो पता भी नहीं चला, ऐसे ही यहाँ–वहाँ ढूँढकर समय बरबाद किया। माँ ऐसे बोल रही थी जैसे वो मीनू की माँ न होकर कोई ख़ास मुँह लगी सहेली हो। सनम और उसके परिवार की प्रशंसा में माँ ने न जाने कितने क़सीदे गढ़ दिए, लेकिन राशि से तो खड़ा भी नहीं हुआ जा रहा था, मुश्किल से कुर्सी तक पहुँची, मुँह से इतना ही निकला, "लेकिन माँ देखा जाए तो वो हमारा भाई हुआ, मौसी का बेटा"।

"अरी छोड़ ना, तूं भी कौन से चक्करों में पड़ गई, आजकल कौन मानता है, इन बातों को। देखे–परखे लोग हैं, राज करेगी तेरी बहन"। माँ तो अपनी ही रौ में न जाने क्या–क्या बोले जा रही थी, काम का बहाना करके राशि ने फ़ोन काट दिया और धम्म से बिस्तर पर गिर गई। आँसू थे कि रूकने का नाम ही नहीं ले रहे थे।

मीनू की शादी के सपने तो उसने भी सँजोए थे, आख़िर बहन है उसकी और दोनों बहनों में प्यार भी बहुत है। आंसुओं का कारण मीनू नहीं बल्कि माँ थी। ज़माना इतना भी नहीं बदला कि छः–सात सालों में ही इतने उसूल बदल जाएँ। कितना चाहती थी वो निखिल को। किसी भी तरह से वो राशि से कम नहीं था। सारे नज़ारे उसकी आँखों के सामने किसी फ़िल्म की तरह आ–जा रहे थे। सब कुछ उसकी आँसू भरी आँखों में गडमड हो रहा था। कामवाली बाई भी काम करके जा चुकी थी। जाते वक्त वो उसको बोल कर गई होगी, लेकिन अपने ही ख़्यालों में खोई उसने ही नहीं सुना होगा। उठ कर उसने दरवाज़ा बंद किया। उसके ऑनलाईन काम करने का समय भी हो गया था, लेकिन उसकी हालत काम करने वाली नहीं थी तो उसने मैसेज डाल दिया। उसे समझ नहीं आ रहा था कि वो बहन की खुशी का जश्न मनाए या अपने सपने बिखरने का मातम।

पढ़ाई में ज़हीन राशि हर क्लास में प्रथम ही रहती। कॉलेज में उसकी मुलाक़ात निखिल से हुई। निखिल माँ की दूर की रिश्तेदारी में था, उनके गाँव से था। रिश्तेदारी भी दूर की और आना–जाना भी नहीं था। वो तो जब निखिल का दाख़िला उसके शहर में हो गया तो आना–जाना भी शुरू हो गया। इत्तिफ़ाक़ से दोनों का

कॉलेज भी एक था। पढ़ाई में दोनों अव्वल। क्लासें अलग–अलग थी, लेकिन आते–जाते कैंटीन में, कभी लाईब्रेरी में दोनों में हैलो–हाय होती रहती थी। प्यार, मुहब्बत जैसी चीज़ का राशि की ज़िंदगी में कोई स्थान नहीं था। उसका तो सारा ध्यान पढ़ाई में ही रहता। दूसरा घर का माहौल भी ज़्यादा खुला नहीं था। एक आम मध्यवर्गीय परिवार, दो बहनें और एक छोटा भाई। पिताजी की अच्छी सरकारी नौकरी थी। बढ़िया गुज़ारा चल रहा था। चूँकि निखिल जानकारी में था तो कभी–कभार उनके घर भी आ जाया करता। वैसे तो वही गाँव चला जाता था, लेकिन दो–तीन बार उसके माँ–बाप भी शहर में आए तो एक दिन के लिए रूक गए। वो तो होटल में ही रूकने वाले थे लेकिन राशि की माँ ने उन्हें घर पर ही ठहराया। पुराने रिश्तों में नज़दीकियाँ बढ़ीं तो सभी को अच्छा लगा। निखिल के घर वाले सम्पन्न लोग थे, अपनी खेतीबाड़ी थी, लेकिन परिवार वाले ज़्यादा पढ़े–लिखे नहीं थे। गाँव में बारहवीं तक का ही स्कूल था, सो उसकी दोनों बहनें और भाई उतना ही पढ़े। किसी ने ज़्यादा पढ़ाई में रूचि ही नहीं दिखाई। बड़ा भाई तो पिताजी के साथ ही खेती के कामों में लग गया और बहनों की अच्छे परिवारों में शादी हो गई ।

निखिल को बचपन से ही पढ़ने का शौक़ था, सबसे छोटा, घर–भर का लाडला, पहले तो पास वाले क़सबे में ही कॉलेज जाता रहा, लेकिन फिर उसकी एडमिशन एम.बी.ए. के लिए दिल्ली में हो गई। इस तरह राशि के परिवार से मिलना हुआ। निखिल के पिता तीन चार पीढ़ियाँ दूर के रिश्ते में राशि की माँ के शायद मौसेरे भाई थे। पर इत्तिफ़ाक़ से दोनों का ' गोत्र ' एक था। इतनी दूर के रिश्तों को तो आजकल लोग पहचानते भी नहीं, लेकिन अपने गाँव के लोगों से कई बार अपनापन होता है तो दोस्ती भी हो जाती है। निखिल वैसे तो उनके घर नहीं आता था, लेकिन जब भी गाँव से आता, तो उसकी माँ गाँव से कई चीज़ें राशि के घर के लिए भी बाँध देती। और तो और घर की भैंसों का ताज़ा दूध भी दे देती। कार से तीन घंटे का रास्ता, निखिल सीधा राशि के घर पर ही आता, सामान दे कर ही होस्टल जाता। एक दो बार माँ ने ज़बरदस्ती चाय के लिए रोक लिया तो रूकना ही पड़ा। जाते वक्त माँ ने राशि को भी साथ ही कॉलेज जाने को बोल दिया, वैसे तो वो बड़े आराम से मैट्रो से जाती थी। रास्ते में दोनों ने पढ़ाई–लिखाई की ही दो चार बातें की। वैसे भी राशि आजकल की लड़कियों की तरह नहीं थी। न ही बहुत फ़ैशन वाले उटपटांग कपड़े पहनना और न ही देर रात पार्टियों में जाना। लेकिन सुंदर बहुत थी, लंबा

कद, काले घने बाल, सुबह की लालिमा जैसा रंग, बड़ी–बड़ी बोलती सी आँखें, सुतवां नाक और गुलाब की पंखुड़ियों से नरम पतले होंठ।

दिल्ली जैसे शहर में रहकर भी वो ज़्यादातर सूट ही पहनती। आजकल जबकि लड़कियां तो छोड़ो बड़ी उमर की औरतों ने भी दुपट्टों से दूरी बना ली है, राशि ज़रूर दुपट्टा लेती। उसके पास हर तरह के सुंदर सुंदर दुपट्टे थे, जो कि उसके रूप की शोभा को दुगुना कर देते थे। कभी–कभार जीन्स भी पहन लेती। आधुनिक कपड़े भी थे उसके पास, मगर शालीनता के घेरे में। बदन दिखाऊ कपड़ों से उसे सख़्त नफ़रत थी। दूसरी तरफ़ निखिल भी गाँव में पला–बड़ा शर्मीले स्वभाव का युवक था। गाँव के बाद वो कस्बे में भी पढ़ा, लेकिन सड़क छाप मजनुओं जैसी ओछा हरकतों से कोसों दूर। सब कुछ जानते हुए भी वो अनजान बना रहता। मित्र मंडली में हर प्रकार के लोग शामिल थे, उसे ग़लत हरकतों के लिए उकसाते भी थे, मगर वो उत्तर में सिर्फ मुस्कुरा भर देता। आख़िर संस्कार भी तो कोई चीज़ हैं। तभी तो कहते हैं कि संस्कारी व्यक्ति कहीं भी हो, अपना इमां नहीं खोता, वरना तो इस जहाँ में क्या नहीं होता।

समय अपनी गति से चला जा रहा था। निखिल का पहला साल लगभग ख़त्म होने को था। कुछ समय बाद परीक्षाएं थी, लेकिन उससे पहले कॉलेज का ट्रिप राफ़्टिंग के लिए जाने वाला था। इसके इलावा घूमना–फिरना, मौज–मस्ती तथा और भी बहुत सी एक्टीविटिज़ होनी थी। आख़िर एक हफ़्ते का ट्रिप था। कॉलेज के लड़के, लड़किया ख़ूब खुश थे। वैसे तो आजकल लड़के, लड़कियाँ खुले आम मिलते हैं, लेकिन बहुत से परिवारों में आज भी पाबंदियां हैं। पहले तो राशि की माँ ने भी थोड़ी आपत्ति जताई, लेकिन और लड़कियां भी जा रही थी और फिर निखिल भी जा रहा था तो वो आश्वस्त सी थी। राशि के मना करने पर भी उसने निखिल को फ़ोन पर राशि का ध्यान रखने की हिदायत दे ही डाली। उसे ये नहीं पता था कि निखिल की जगह राशि को ही उसका ध्यान रखना पड़ेगा। हुआ यूँ कि दो दिन तो हँसी–खुशी गुज़र गए, तीसरे दिन राफ़्टिंग का प्रोग्राम था। सबको तो ये आती नहीं, कुछ को तो पानी से दूर से भी डर लगता है। राशि भी उन्हीं में ही थी। उस दिन दो गरूप बन गए। राफ़्टिंग करने वाले एक तरफ़ चले गए जबकि बाकी पास के ही किसी कैफ़े में बैठकर अंताक्षरी खेलने लग गए। बढ़िया समय और बिना किसी सामान के बिताना हो तो इससे उत्तम कुछ भी नहीं। ज़्यादातर लड़कियां इसी गरूप में थी, बहुत कम को राफ़्टिंग में रूचि थी, हाँ कुछ देखने और चीयर–अप करने के

लिए भी गई हुई थी। अंताक्षरी का ख़ूब दौर चल रहा था कि किसी को फ़ोन आया कि वहाँ कुछ अनहोनी हो गई है। किसी लड़के को बहुत गहरी चोट लगी है। सब भागकर वहाँ पहुँचे तो देखा कि निखिल बेसुध पड़ा है और उसका एक पैर बुरी तरह ज़ख़्मी था। कॉलेज स्टाफ़ के लोगों ने डॉक्टर को फ़ोन कर दिया था। फ़र्स्ट एड देकर उसे ठहरने वाले स्थान पर शिफ़्ट कर दिया गया। जब राशि को पता चला तो वो भी भागकर वहाँ पहुँची।

निखिल की हालत देखकर एक बार तो उसके भी होश उड़ गए। तीन–चार घंटे बाद निखिल को होश आ गया। डॉक्टर ने कहा कि, घबराने की बात नहीं, लेकिन शहर जाकर चैक–अप करवाओ, यहाँ पर इतना इंतज़ाम नहीं है। हो सकता है प्लास्टर लगवाना पड़े। अब क्या किया जाए, उसके घर वालों को फ़ोन करें, लेकिन दिल्ली ही वहाँ से पाँच घंटे की दूरी पर थी और उसका गाँव तो और भी तीन चार घंटे दूर। सिर्फ़ राशि की ख़ास दोस्त शिखा ही जानती थी कि निखिल का राशि के घर आना–जाना है। कॉलेज के रजिस्टर में तो लोकल गार्डियन के तौर पर राशि के घर का ही एड्रैस दिया हुआ था, लेकिन इस समय स्थिति और थी। राशि ने बताया कि वो उसे जानती है। तुरंत ही टैक्सी बुला कर राशि, शिखा और निखिल दिल्ली के लिए रवाना हो गए। राशि ने शिखा को मना किया कि वो चली जाएगी, लेकिन शिखा नहीं मानी। वैसे तो निखिल के एक दो दोस्त भी तैयार थे जाने के लिए। राशि ने घर पर फ़ोन कर दिया था। उन्होंने निखिल के घर भी इतला कर दी थी। इंजेक्शन के कारण निखिल पूरे रास्ते शिखा की गोद में सिर रखकर सोया रहा। जब तक वो घर पहुँची, निखिल का परिवार भी आ चुका था।

तीन दिन हस्पताल रह कर उसे डिस्चार्ज मिल गया, लेकिन गाँव जाने की इजाज़त डॉक्टर ने नहीं दी। प्लास्टर लगा था, बीच–बीच में चैक–अप के लिए भी आना था। परीक्षाएँ भी आने वाली थी। होटल में रहने की सोची, लेकिन राशि के माता–पिता ने अपने घर पर रहने का सुझाव दिया। पहले तो वो नहीं माने, इतना बोझ किसी पर डालना और वो भी दिल्ली जैसे शहर में, लेकिन परिस्थितियों और निखिल की सेहत और पढ़ाई का ध्यान रखते हुए वो मान गए। चार बेडरूम का अच्छा घर था राशि का, इसलिए कोई दिक्क़त नहीं हुई। वैसे भी अगर दिल में जगह हो तो सब मैनेज हो जाता है। एक केयरटेकर सुबह–शाम आता था। बीच–बीच में राशि का भाई भी मदद कर देता। छड़ी के सहारे निखिल अपनी दिनचर्या कर लेता।

कुछ दिनों बाद वो लैपटॉप पर और किताबों से पढ़ाई भी करने लग गया। कुछ मदद दोस्त ऑनलाईन कर देते और कुछ नोट्स वगैरह राशि के हाथों भिजवा देते।

निखिल के खाने इत्यादि का ज़्यादातर ध्यान माँ ही रखती थी या फिर दिन में मेड भी होती। उस दिन माँ की तबियत ठीक नहीं थी, मेड भी नहीं आई। बाकी सब अपने–अपने काम पर निकल गए। राशि घर पर रही। वैसे उस दिन उसकी क्लासें भी कम थी। सुबह निखिल को चाय देने गई तो वो सो रहा था। घुंघराले बाल उसके चेहरे पर अजब छटा बिखेर रहे थे। भोला सा चेहरा, मासूम बच्चे की तरह लग रहा था। राशि ने पहली बार निखिल को इतने क़रीब से देखा। समझ नहीं आ रहा था कि उसे जगाए तो कैसे, या फिर चाय वापिस ले जाए। इसी सोच में थी कि डोरबैल बजी, शायद मेड थी। घंटी की आवाज़ से निखिल भी उठ गया। राशि के हाथ में चाय देखकर वो भी एकबार सकपका गया। बैड का सहारा लेकर जल्दी से उठने की कोशिश करने लगा, लेकिन उठ नहीं पाया। राशि ने इशारे से उसे लेटे रहने के लिए कहा और दरवाज़ा खोलने चली गई। वापिस आई और सहारा देकर निखिल को उठाया।

शर्मिंदा सा होते हुए निखिल ने कहा, "माफ करना, आज आँख ही नहीं खुली। लगता है दवाइयों का नशा हो जाता है"। कोई बात नहीं आप फ्रेश हो जाईए, तब तक मैं और चाय बना कर लाती हूँ। थोड़ी देर में राशि दो कप चाय बना कर लाई। तब तक निखिल फ्रेश होकर कुर्सी पर बैठ गया था। दोनों ने मिलकर चाय पी और कुछ कॉलेज की बातें की। चाय पकड़ाते समय राशि का हाथ निखिल के हाथ से कुछ इस तरह छुआ कि उसके सारे बदन में झुरझुरी सी हो गई। परंतु उसने अपने आप को संयम करते हुए चेहरे पर आए भावों को छुपा लिया। निखिल का भी राशि को इतने क़रीब से देखने का पहला अवसर था। इस प्रकार पजामा सूट और बिख़रे से बालों में तो वो अप्रतिम लग रही थी। कोई मेकअप नहीं, फिर भी चेहरा कैसे दमक रहा था। वैसे तो वो बहुत कम मेकअप करती थी, लेकिन ऐसा नेचुरल रूप, कोई बनावटीपन नहीं। फ़िल्मी भाषा में कहा जाए तो दोनों के दिमाग की घंटियाँ बज गईं। दिल के तार झंकरित हो उठे। प्यार, इश्क़, मुहब्बत जैसे शब्दों का मज़ाक़ उड़ाने वाली राशि आज ख़ुद इस गिरफ़्त में थी। शिखा से उसकी कई बार बहस हो चुकी थी इस विषय पर। जब भी कहीं ख़बरों में ये पढ़ती, सुनती कि कोई लड़का लड़की भाग गए या किसी ने सुसाइड कर लिया या कोई ऐसी और बात तो वो जमकर मज़ाक़ उड़ाती।

उसने ये तो कभी नहीं कहा कि वो शादी नहीं करेगी, लेकिन उसके अनुसार प्यार तो शादी के बाद हो ही जाता है। उसके परिवार में अरेंज मैरिज का ही रिवाज चला आ रहा था, लेकिन अब तो स्थिति बदल चुकी था। प्यार की कोंपलें दोनों और फूट चुकी थी। निखिल के पास न फटकने वाली राशि उसके कमरे में जाने का बहाना ढूँढती, कभी नोट्स देने के बहाने तो कभी चाय–पानी के बहाने। अगली बार जब डॉक्टर को दिखाने गए तो राशि भी साथ ही चली गई। प्यार का इज़हार किसी ने नहीं किया, लेकिन कहते हैं न कि "इश्क़ और मुश्क छुपाए नहीं छुपता" राशि की माँ तो घर के कामों में ही उलझी रहती और बहन अपनी पढ़ाई और अपनी दुनिया में। मगर पिताजी की अनुभवी आँखों से यह सब छुप न सका, मगर कभी उन्हें यह वहम लगता और कभी सच। मगर वो चुप रहे, उन्हें भरोसा था अपनी परवरिश पर कि जो भी हो राशि कोई ग़लत कदम नहीं उठाएगी।

निखिल का प्लास्टर खुल गया। वो बिल्कुल ठीक था। उसके माँ बाप ने कई बार हाथ जोड़ जोड़ कर राशि के परिवार का धन्यवाद किया। निखिल की माँ ने तो यहाँ तक भी कह दिया कि आज के जमाने में कोई बहुत पास का सगा रिश्तेदार भी इतना नहीं करता जितना उन्होंने किया है। निखिल वापिस होस्टल चला गया। फ़ाइनल एग्ज़ाम शुरू हो चुके थे। सब पढ़ने में व्यस्त मगर फ़ोन पर बातें चलती रहती। दोनों के कान जो सुनने के लिए बेताब थे, वो पहल अभी तक किसी तरफ़ से नहीं हुई थी। वो दिन भी आ गया जब कॉलेज बंद हो गए और निखिल को अपने गाँव जाना था। वो राशि के घर सबको मिलने आया। सभी घर पर थे। दोनों एक दूसरे को देखते और पिताजी उन दोनों की निगाहों को पढ़ते। लब भले ही झूठ बोल दें, मगर नज़रें कभी झूठ नहीं बोलती। कोई कुछ नहीं बोला। हाँ, जाते जाते निखिल ने एक अंग्रेज़ी नावल ज़रूर राशि को लौटाया जो शायद बीमारी के वक्त पढ़ते पढ़ते वो साथ ले गया था। दिल की बात दिल में ही रह गई, ये तो वही हो गया, "पहले आप, पहले आप"।

राशि को बहुत निराशा हुई। एग्ज़ाम के बाद भी वो दो दिन रहा। दोनों मिले भी, लेकिन निखिल ने कुछ नहीं कहा। उसकी आँखों में कुछ तो था, लेकिन होंठ भी तो हिलें। नारी सुलभ लज्जा के चलते राशि भी कुछ न कह पाई। निखिल को गए एक हफ़्ता हो गया था। फ़ोन भी आता, लेकिन बात हालचाल पूछने पर ही ख़त्म हो जाती। राशि को लगता कि वो कुछ कहना चाहता है, मगर कुछ कहे भी तो। एक रात खाने के बाद जब वो लेटी तो उसे बिल्कुल नींद नहीं आ रही थी। उसने कुछ

पढ़ने को लिए वही नावल उठाया और खोला, तभी कोई काग़ज़ सा नीचे गिरा। झुककर उठाया तो एक सफेद लिफ़ाफा, शायद उसके अंदर कोई काग़ज़ था। खोल कर देखा तो निखिल का पत्र। बड़ी ही सादगी से उसने अपने प्यार का इज़हार किया हुआ था। शिखा का अंग अंग खिल उठा। जी कर रहा था कि ज़ोर ज़ोर से नाचे, लेकिन रात का सन्नाटा, सब सो रहे, चारों और ख़ामोशी। पर उसे बहुत हँसी आ रही थी निखिल पर। आज के युग में पत्र कौन लिखता है और वो भी प्रेम पत्र। बुद्धू कहीं का। पर कहीं न कहीं उसे उसका ये अंदाज़ बहुत अच्छा लगा।

मन में आया कि मोबाईल उठा कर अभी हाँ बोल दे,मगर फिर रूक गई। सोचा चलो थोड़ा तड़पाते हैं। निखिल के सुंदर सपने देखती न जाने वो कब नींद के आग़ोश में पहुँच गई। अगली सुबह उसे कुछ बदली–बदली सी लग रही थी, कई दिनों से चुपचाप रहने वाली राशि ख़ूब चहक रही थी। शाम को उसने शिखा से मिलने का प्रोग्राम बनाया। वही उसकी एकमात्र अन्तरंग सखी थी। जब उसे पता चला तो वो भी बहुत खुश हुई। राशि के लाख मना करने पर भी उसने निखिल को फ़ोन लगाया और शरारत से बोली 'क्या हाल है, मेरे होने वाले जीजू' ये सुनकर एक बार तो निखिल हकला सा गया, उसके कंठ से आवाज़ ही न निकली।" क्यों चौंक गए, हो गया न सरप्राइज़, लो बात करो अपनी उससे" और मोबाईल राशि के कानों पर लगा दिया। हज़ारों बातें करने वाली राशि के मुँह से बड़ी मुश्किल से ' हैलौ' निकली और दोनों ज़ोर से हंस पड़े । बाद में बात करते हैं, कह कर राशि ने मोबाईल बंद कर दिया।

बाकी दिन तो दोनों के मज़े से गुज़रे। फिर से कॉलेज शुरू हुए। निखिल का आख़री साल था, और राशि की भी पोस्ट ग्रेजुएशन पूरी होने को थी। दोनों ने पढ़ाई के साथ साथ सुखद भविष्य के सपने देखे। एक साथ जीने मरने की क़समें खाई, मगर किसी को भनक तक नहीं हुई। सिर्फ़ शिखा ही उनके प्यार की एकमात्र राज़दार थी। दोनों को घर वालों की और से तो लेशमात्र भी आशंका नहीं थी, लेकिन काश कि ऐसा हो पाता। पढ़ाई ख़त्म हो गई, इसी बीच कैंपस इंटरव्यू में निखिल की नौकरी भी लग चुकी थी। तय हुआ कि निखिल अपने घर पर बात करेगा। उसने अपनी भाभी को शर्माते हुए बताया तो वह छेड़ते हुए बोली "वाह लल्ला, तुम तो बड़े छुपे रूस्तम निकले"। बात बड़ों तक पहुँची, सब बड़े खुश। उसके पिता की खुशी का ता पारावार ही न रहा। पहले सोचा फोन करे, फिर मन में आया कि ऐसी बातें आमने–सामने ही अच्छी लगती हैं। कुछ दिनों बाद पहले ही की तरह बहुत सा घर का बना

सामान लेकर दोनों दिल्ली गए। चाय पानी के बाद निखिल की माताजी ने सबके सामने ही रिश्ते का प्रस्ताव यह कहते हुए रखा कि, "आज तो हम आपसे निखिल के लिए राशि बिटिया का हाथ माँगने आए हैं"।

"लेकिन हमारी तो रिश्तेदारी है, ऐसा कैसे हो सकता है, मेरा और भाई साहब का गौत्र एक है, मेरा गाँव भी वही है, इस नाते निखिल और राशि भाई बहन हुए।"

"पहली बात तो ये कि मैं आपके भाई सामान ज़रूर हूँ, लेकिन मैं आपका सगा भाई तो नहीं हूँ,जमाना बदल गया है, लोग तो अपने ही गोत्र में रिश्ते कर लेते हैं, ननिहाल वाले गोत्र को कौन मानता है", निखिल के पिता ने कहा। दो चार बातें करने के बाद वो चले गए। माहौल कुछ अजीब सा हो गया था। राशि के पिता उन्हें विदा करने गए तो कहा कि वो सोच कर बताएंगे। राशि के पिता को तो कोई आपत्ति नहीं थी, लेकिन उसकी माँ तो जैसे फट पड़ी। क्या क्या लांछन नहीं लगाए उस पर। पता नहीं उसे किस बात पर चिढ़ थी, प्रेम विवाह करने पर या रिश्तेदारी पर। नया तो कुछ भी नहीं था। सदियों से प्रेम विवाह होते आए हैं। माना कि इन दिनों दोनों परिवार बहुत नज़दीक आ गए लेकिन बच्चों पर ज़बरदस्ती का रिश्ता क्यूँ थोपा जाए। उनकी मर्ज़ी मुताबिक नई शुरूआत भी तो की जा सकती है।

राशि के पिता ने उसकी माँ को समझाने की बहुत कोशिश की, लेकिन वो टस से मस नहीं हुई। मरने तक की धमकी दे डाली। राशि आजतक समझ नहीं पाई कि वो ग़लत कहाँ थी। आख़िर संस्कारों से बंधी राशि पराग की दुल्हन बन कर ससुराल आ गई। सब ठीक था, लेकिन अंदर ही अंदर उसके टीस सी उठती। समय अपनी गति से चल रहा था। दोनों परिवारों का प्यार तो वहीं ख़त्म हो गया। शिखा की निखिल से कभी–कभी बात हो जाती थी। उसी ने बताया कि निखिल की कम्पनी ने उसे अमेरिका भेज दिया। अभी तक उसने शादी नहीं की। यही नियती मान कर धीरे धीरे राशि अपनी गृहस्थी में रमने लगी थी। वह बहुत कम मायके जाती। पिताजी चाहते हुए भी कुछ कर न पाए।

आज माँ के फ़ोन ने उसे बुरी तरह हिला दिया। इतन जल्दी उसूल बदल गए। जहां कोई रिश्ता नहीं था, वहाँ नाक कटने की दुहाई दी और जहाँ सच में रिश्तेदारी है वहाँ सब भुला दिया और अब प्रेम विवाह भी मान्य हो गया। राशि को शादी में तो जाना ही था, मगर कोई बहाना बना कर वो 'रोके' पर नहीं गई। शादी में भी बेमनी सी घूम रही थी। शादी से पहले पराग ने कई बार कुछ नया ख़रीदने की सलाह दी, लेकिन उसने कुछ नहीं ख़रीदा। शादी के अगले दिन ही शान की पढ़ाई

का बहाना करके वो वापिस आ गई। उसे यह देखकर बहुत दुख हुआ कि माँ के चेहरे पर लेशमात्र भी पश्चात्ताप नहीं। कैसे भाग भाग कर मेहमानों का स्वागत कर रही है। वही फ़र्स्ट कज़न मौसी जिसे वो अपनी सगी बहन समान समझती थी, आज समधन कह कह कर उसके आगे पीछे झूल रही है और इस प्रेम विवाह को इस तरह स्वीकार कर लिया जैसे कुछ हुआ ही न हो। पिताजी के सिवाय कोई उसके दर्द को नहीं समझ सका। वापिस आते वक्त जब वो पिताजी से मिलने गई तो उनकी आँखों में दर्द और नमी थी। सिर पर हाथ रखते हुए इतना ही बोले, "मुझे माफ़ कर देना बिटिया, मैं तेरे लिए कुछ न कर सका, मीनू ने तो जिद्द करके अपनी बात मनवा ली, काश कि तब तू भी अड़ गई होती।"

गाड़ी में बैठते ही निखिल का मासूम चेहरा उसकी आँखों के आगे आ गया। निखिल ने तो उसके सामने कोर्ट मैरिज का भी प्रस्ताव रखा था, लेकिन वो नहीं मानी। माँ ने संस्कार और उसूलों की दुहाई जो दी थी। पराग तो समझ रहा था कि राशि की आँखों में बहन की शादी की खुशी–गमी के मिलेजुले आँसू हैं, वो बेचारा क्या जाने कि ये आँसू तो राशि अपनी माँ के उसूल बदलने पर या अपनी कायरता पर बहा रही थी?

■

6

अपने- पराये

ऑफिस से लौटकर प्रतीक फ्रेश हुआ, एक बड़ा सा मग काफी. बनाई, हीटर और टीवी चलाया और धप्प से रज़ाई में घुस कर फ़ायर स्टिक पर अपने मनपसंद प्रोग्राम का आनंद लेने लगा। सब कुछ कितना बदल गया है। कम्प्यूटर, मोबाईल, वाई-फ़ाई आदि ने तो दुनिया ही बदल दी। अब टीवी को ही लो, केबल, डिश सब छूट गए, कौन देखे बेतलब की एड, सारे प्रोग्राम का मज़ा ही किरकिरा हो जाता है, जब खाना खाते वक्त सड़े हुए दाँतों की और हारपिक की एड देखनी पड़े या फिर बीमे वालों की, माना कि 'ज़िंदगी के साथ और ज़िंदगी के बाद' वाली बात ठीक है लेकिन वो तो बंदे को ऐसे डराते हैं जैसे यमदूत सामने ही खड़ा है। फ़ायर स्टिक पर आराम से मनपसंद प्रोग्राम देखो। आधुनिक तकनीक से लगभग सारे काम घर बैठे ही हो जाते हैं। बस थोड़ा ध्यान देने और बैंलेस बना कर रखना ज़रूरी है, वरना तो नुक्सानों की भी कमी नहीं।

ठंड का मौसम और गरम रज़ाई, बंदे का नाख़ून तक बाहर निकालने का मन न करे, लेकिन बेचारे प्रतीक की मजबूरी। आज रात को बॉस की बेटी की शादी पर जाना ज़रूरी था। उसे तो ये ताम–झाम बिल्कुल पसंद नहीं थे, पर बॉस से पंगा कौन ले। वैसे भी वो थोड़ा सड़ियल तबियत का था। सभी ऑफिस वालों ने मिलकर बहुत बढ़िया गिफ़्ट ख़रीद कर पहले ही दे दिया था, पर वहाँ जाकर शक्ल दिखानी भी ज़रूरी थी। मन मार कर प्रतीक रज़ाई से निकला और कार निकालकर चल पड़ा। सुनने में कितना अच्छा लगता है, मन की करो, मन की सुनो, लेकिन क्या सचमुच ऐसा हो पाता है। इन्सान सामाजिक बंधनों में कितना जकड़ा हुआ है। कभी मजबूरियाँ तो कभी ज़रूरतें न जाने क्या क्या करवा देती हैं। यही सोचता सोचता वह शादी वाले स्थल पर पहुँच गया। होटल था, पर खाना वगैरह बाहर खुले लॉन में ही था। काफ़ी भीड़, खूब सजावट, कितनी ही स्टॉल्स अनगिनत प्रकार के व्यंजन।

प्रतीक अक्सर सोचता कि हमारी शादियों में खाने की कितनी बरबादी होती है। इतना सारा खाने का समान, पर अगर देखा जाए तो कोई स्टाल भी खाली नहीं थी। लोगों के सामने फलों की भरी प्लेटें ऐसे रखी हुई थी कि शायद आज फलाहार से ही पेट भरना हो और वैसे भी इस तरह के कुछ विदेशी फल ख़रीदना भी हर एक

के बस में नहीं। चाट, टिक्की, पापड़ी, गोलगप्पे, पेय पदार्थ और न जाने कितनी तरह के सनैक्स, पर हर जगह ही लाईन लगी है। न पता चल रहा है, वैज है या नान वैज। पहले पढ़ना पढ़ता है। बेचारे बैरे, यहाँ से वहाँ, वहाँ से यहाँ लगातार घूमते ही रहते हैं। आख़िर पेट भी तो पालना है और इसके बाद खाना भी न जाने कितनी प्रकार की सब्जियाँ, रोटियाँ, चावल, चाईनीज़, प्रदेशीय, स्वीट डिशिज़। प्रतीक ने बॉस को ढूँढा, शक्ल दिखा कर बधाई दी और वापिस आकर एक कोने में बैठ गया। ऑफिस के बहुत लोग परिवार सहित आए हुए थे और बीवी बच्चों के साथ विभिन्न तरह के व्यंजनों का लुत्फ़ उठा रहे थे। पीने वालों का कोना दूसरी तरफ़ था।

प्रतीक को इन सबसे कोई मतलब नहीं। घी में इस तरह तली मसालेदार चीज़ें उसे बिल्कुल भी पसंद नहीं थी। अब तक उसने सिर्फ़ नींबू पानी और चार टुकड़े फलों के लिए थे। एक बात उसे अच्छी लगी और वो था गायन। स्टेज पर बहुत अच्छे गीत ग़ज़ल चल रहे थे। कान फोड़ू संगीत से तो कितना ही सुरमयी था ये। परन्तु यहाँ कोई उस कलाकार को दाद देने वाला नहीं था। मुश्किल से दो चार तालियाँ बजती। किसी को खाने–पीने से ही फ़ुर्सत नहीं थी। प्रतीक तो कब का चला गया होता, अगर ये मनपसंद ग़ज़लें न सुनने को मिलती और साथ में जलता हुआ अलावदान। अक्सर तो बिजली के बड़े–बड़े हीटर ही रखे होते हैं। उसे आग के पास बैठकर ग़ज़लें सुनना अच्छा लग रहा था। दो बार तो उसने पसंद की ग़ज़ल की फ़रमाइश ही कर दी, जो कि तुरंत पूरी हो गई। प्रतीक का घर से बिगड़ा हुआ मूड अब ठीक हो चुका था। उसकी जान–पहचान के बहुत लोग थे वहाँ, लेकिन प्रतीक अपने ही मूड का बंदा था।

वो तो बॉस से मिलने के बाद घर ही जाने वाला था कि उसके कानों में जगजीत सिंह की ग़ज़ल "तुम, इतना जो मुस्कुरा रहे हो, क्या गम है जिसको छुपा रहे हो" सुनाई पड़ी, तो उसके पैर बरबस ही उस तरफ़ खिंचे चल पड़े। अब भूख भी लग गई तो वो उठ खड़ा हुआ। शायद कुछ पसंद का मिल जाए। खाने के सामान के चारों तरफ़ घूम लिया, मगर कुछ ख़ास पसंद नहीं आया। तभी उसकी नज़र पंजाबी स्टॉल की तरफ़ गई। कढ़ी और सरसों का साग उसके फ़ेवरेट भी थे और देखने में अच्छे भी लग रहे थे। कई प्रकार की रोटियाँ, नान वगैरह थे, लेकिन उसे तलाश थी मक्की की रोटी की और वो भी ताजा। एक तरफ़ थोड़ा साईड में तंदूर लगे हुए थे, वो वहाँ पर ही पहुँच गया, तंदूरी रोटी लेने ही वाला था कि उसने देखा, एक तरफ़ चूलहे पर दो औरतें मक्की और बाजरे की रोटियाँ सेंक रही हैं। उसके तो मन की

मुराद जैसे पूरी हो गई। उसी तरफ़ लपक लिया और अपनी प्लेट आगे बढ़ाई। उस औरत ने चिमटे से प्लेट में गरम–गरम रोटी रख कर घी लगा दिया। प्रतीक वहीं पास में ही कुर्सी लेकर बैठ गया। रोटियाँ सेंकने वाली औरत ने सादा सूट और अच्छे से सिर पर चुन्नी लपेटी हुई थी। दूसरी लड़की सी थी, वो थोड़ा–थोड़ा करके आटा गूँथ रही थी। प्रतीक को खाना बहुत अच्छा लगा, उसे अपने गाँव की याद आ गई। ऐसा साग और मक्की की रोटी गांव में ही मिलती है।

वो एक और रोटी लेने वहाँ फिर पहुँच गया। दो तीन लोग और भी खड़े थे। प्रतीक इंतज़ार करने लगा। अचानक ही उसकी नज़र रोटी पकाने वाली औरत पर पड़ी तो वो कुछ चौंक सा गया। चेहरा कुछ जाना–पहचाना लगा। वो थोड़ा घूमकर सामने आ गया। ये तो उसके गाँव की रत्नो चाची थी। उनके मुहल्ले में ही रहती थी। अच्छा घर था, कुछ ज़मीन वगैरह भी थी। ये यहाँ कैसे, वो सोच में पड़ गया। इसके पति को भी वो पहचानता था, अच्छी खेतीबाड़ी, शायद वो दो भाई थे। प्रतीक ज़्यादा नहीं जानता था। वो बारहवीं के बाद जो गाँव से निकला तो आज दस–बारह साल हो गए, बहुत कम जाना हुआ। घर वाले शादी के लिए कितना ज़ोर दे रहे हैं, पर अभी वो सोच ही रहा है। पढ़ाई पूरी होते ही उसे अच्छी सरकारी नौकरी मिल गई और वो शहर का होकर ही रह गया। रोटी लेकर उसने कई बार ध्यान से देखा। लड़की की शक्ल भी उसी के जैसी लग रही थी। खाना ख़त्म होते ही वो उठ खड़ा हुआ। मौका तलाशने लगा कि जब वहाँ कोई न हो तब कुछ बात करे।

एक, दो, लोग वहां रोटी लेने आ ही रहे थे। जब कुछ मिंट वहाँ कोई नहीं आया तो वो पास जा कर बोला, आप रत्नो चाची हो ना, मैं प्रीतू, रज्जी का बेटा। रत्नो ने आँख उठाकर देखा, पहचानने की कोशिश की, खुशी से भर आई आँखों को पल्लू से पोंछते हां में सिर हिला दिया। पर यहाँ कैसे? "लम्बी कहानी है बेटा", चाची रोटियाँ सेंकते बोली। तब तक वहाँ दो तीन लोग आ खड़े हुए। चाची गरमा–गरम रोटियाँ उनकी प्लेट में डालती गई। प्रतीक ने अपना कार्ड निकाल कर हाथ में रखा हुआ था। जब वहाँ कोई नहीं था तो उसके हाथ में देकर बोला, कल मुझे फ़ोन पर अपना पता बताना। बैठ कर बात करेंगे। रास्ते भर और रात भर उसके दिमाग़ में रत्नो चाची ही घूमती रही। गांवों में घरों की छत्तें अक्सर मिली हुई ही होती हैं। शहरों जैसा बेगानापन नहीं होता। उसे याद आया कैसे वो और उसके साथी उनके आम के पेड़ से कच्चे–पक्के आम छत से जाकर ही तोड़ लेते। रत्नो चाची की सास तो कई

बार डाँटती, लेकिन चाची को तो उसने सदा ही मुस्कुराते देखा। ज़्यादा बातचीत नहीं होती थी। प्रतीक को तो उनकी शादी का भी याद था।

अगले दिन ऑफिस में जाकर रोज़मर्रा का काम चालू हो गया। मोबाईल दो बार बजा, पर वो उठा नहीं पाया। सिर्फ़ नं. देखकर वापिस काल नहीं की। ऑफिस के काम में इतना बिज़ी हुआ कि कल वाली बात दिमाग़ से ही निकल गई। शाम को जब गाड़ी में बैठने लगा तो किसी का फ़ोन आ गया। सुनकर बंद कर रहा था कि दो मिस्ड कॉल दिखी, उसे कुछ याद न आया। वापिस कॉल की, तो लड़की की आवाज़, "भैया मैं, बीना, कल शादी में--"। ओह हाँ, उसे सब याद आ गया। उसका पता पूछकर गाड़ी उसी और मोड़ दी। एक पुराने से होटल का पता था। जब वो वहाँ पहुँचा तो रत्नो बाहर ही खड़ी थी। प्रतीक ने बड़े प्यार से उसके पैर छुए तो उसने उसे गले से लगा लिया। रत्नो उसे लेकर होटल के पीछे बने कमरे में ले गई। ठीक–ठाक सा कमरा। थोड़ा बहुत ज़रूरत का सामान। पानी पिलाकर वो पास ही बैठ गई। प्रतीक समझ नहीं पा रहा था, कैसे बात शुरू करे, मगर करनी तो थी। वैसे गाँव में तो उन दोनों की बात शायद कभी हुई भी न हो। सिर्फ़ पहचान ही थी। शहर में किसी अपने का मिलना बहुत सुकून देता है, लेकिन रत्नो चाची जिन हालात में मिली वह दुखदायी था। हिम्मत करके उसने पूछ ही लिया। किसी अपने को पाकर आँसुओं का बहना स्वाभाविक ही है। रत्नो चाची ने अपनी आपबीती कुछ इस प्रकार बताई।

पाँच साल पहले उसके पति की गाँव में साँप के काटने से मौत हो गई। उसके पति से पंद्रह साल बड़ा एक उसका अपाहिज जेठ और तीन ननदें हैं। ननदें अपने घरों में हैं, जेठ की शादी नहीं हुई। उसकी अपनी एक बेटी है। पति की मौत के कुछ समय बाद ही उस पर जेठ से शादी करने के लिए सारे परिवार ने दबाव डालना शुरू कर दिया, जो कि उसे मंज़ूर नहीं था। सास का कहना था, क्या पता वंश का वारिस ही मिल जाए। तरह–तरह से उसे तंग किया गया। वो बेचारी पाँच जमात पास, करे तो क्या करे। मायके में भाई–भाभियों का ख़ुद का गुज़ारा मुश्किल और दो जनों को कौन रखे। बाप है नहीं, माँ को वैसे ही कोई नहीं पूछता। क्या करे? और तो और सास ने बेटी की भी पढ़ाई छुड़वा दी। भाई के कहने पर जब ज़मीन में अपना हिस्सा मांगा तो तूफ़ान आ गया। सब ननदें, ननदोई माँ का साथ दे रहे हैं। बाहर आना–जाना बंद। माँ–बेटी सारा दिन घर का काम करती। कोई न कोई ननद आई ही रहती। जीना दुष्वार कर दिया। जो दो चार गहने थे वो पहले ही

सास के पास थे। एक रात माँ–बेटी सदूकची में कपड़े डालकर भाग निकली और बस पकड़ कर शहर पहुँच गई। यहाँ रहना भी कहाँ आसान था। घरों में बर्तन, सफ़ाई का काम तलाश किया तो दुत्कार ही मिली। बिना जान–पहचान कौन अपने घर में घुसने देता।

सड़क किनारे कई रातें गुज़ारी। सारी–सारी रात बेटी के सिराहने बैठी रहती। पास में जो थोड़े बहुत पैसे थे, वो ख़त्म होने को थे। एक दिन इस होटल पर गई तो बर्तन साफ़ करने का काम मिल गया। कुछ दिन बीते ही थे कि यहाँ के रसोईये को गांव जाना पड़ गया। होटल मालिक शादियों में खाना वगैरह बनाने का ठेका लेता है। उस शादी में मक्की की रोटी बनाने वाला कोई नहीं था। इसे पता लगा तो उसने मालिक से कहा कि वो बना देगी। सबको उसकी बनी रोटियाँ पसंद आ गई। तब से आज चार साल हो गए वो यही काम करती है और मालिक ने खुश होकर रहने के लिए होटल के पीछे कमरा और ज़रूरत का सब सामान भी दे दिया। और तो और बेटी को पास वाले सरकारी स्कूल में एडमिशन भी दिलवा दी। बेटी दसवीं में पढ़ रही है। अभी आपसे फ़ोन पर बात के बाद वो ट्यूशन पर गई है। कभी–कभी मेरे साथ काम पर भी चली जाती है। जहाँ दुनिया में बुरे लोग हैं, वहाँ भले लोगों की भी कमी नहीं। शुक्र है दाते का, रत्नो ने ऊपर वाले का शुक्रिया अदा करने के लिए हाथ जोड़ दिए।

लेकिन चाची आप चाचाजी का हिस्सा ले सकती हैं, प्रतीक ने कहा। कहाँ बेटा, मैं तो वापिस गाँव नहीं जाऊँगी और कोर्ट कचहरी, मुझे कुछ नहीं पता। मैंने किसी को बताया ही नहीं कि मैं कहाँ हूँ। उस नर्क से एक बार मुश्किल से निकली हूँ। यहीं पर रह कर अपनी बेटी को पढ़ाऊँगी, उसे किसी क़ाबिल बनाऊँगी। वो सब तो ठीक है, लेकिन अपना हक छोड़ना भी अक्लमंदी नहीं। मेरी बहुत जान–पहचान है, सब ठीक हो जाएगा। चिंता नहीं करना। देखता हूँ, कैसे हिस्सा नहीं मिलता और जो जुल्म आपने सहे, उनका हिसाब भी चुकता करना है। काग़ज़ात तैयार करवा कर जल्दी मिलूँगा। कुछ भी मुश्किल हो तो मुझे फ़ोन करना। नमस्ते कह कर प्रतीक तो चला गया पर रत्नो अपने–पराए का अंतर समझने की कोशिश कर रही थी।

■

7

कुछ तो मजबूरियाँ रही होंगी

आज फिर पीहू रोते–रोते बड़ी मुश्किल से सोई। मानसी भी सोना चाहती थी, लेकिन नींद भी तो आए। करवटें बदलते–बदलते जब बदन दुखने लग गया तो उठ खड़ी हुई। रसोई में जाकर पानी पिया। समय देखा तो रात का एक बज चुका था। हर तरफ़ सन्नाटा पसरा हुआ था, लेकिन मानसी के अंदर जो ख़ालीपन था, उसका क्या? बाहर का सन्नाटा तो दिन चढ़ने से पहले ही ख़त्म हो जाएगा। बिल्डिंग में चहल–पहल हो जाएगी, कोई सैर करने को निकलेगा तो कोई जिम को जाएगा। कहीं से कारें साफ़ करने की आवाज़ें आएंगी तो कहीं से झाड़ू लगाने की। हर किसी की नियमबद्ध दिनचर्या। हर कोई ऊपर से कितना सजा–सँवरा लगता है, लेकिन मन के भीतर का शून्य, अंदर की हलचल सिर्फ़ मुक्त भोगी ही जानता है।

मानसी का मन लेटने को हुआ, शायद नींद आ जाए, सुबह ऑफिस भी जाना है, पीहू को स्कूल भी भेजना है, लेकिन नींद तो कोसों दूर थी। परदा हटा कर खिड़की के सामने खड़ी हो गई। चाँद पूरे यौवन पर था, शायद चौदहवीं की रात थी, लेकिन जबसे उसके जीवन से पराग गया उसके लिए तो हर रात अमावस की रात बन चुकी थी। जब तक पीहू छोटी थी तब मुश्किलें और तरह की थी और अब जब वो दस साल की हो गई है तो मुसीबतें और भी बढ़ गई हैं। इतनी पढ़ी–लिखी मानसी जो कि एक कार्पोरेट ऑफिस में काफ़ी ऊँचे ओहदे पर न जाने कितने कर्मचारियों को संभालती थी, छोटी सी पीहू के सवालों के जवाब नहीं दे पाती थी। पहला सवाल तो यही होता कि मेरे पापा कहाँ पर है, कब आएंगे, उनका फ़ोन क्यों नहीं आता, उनसे कहो न हमसे वीडियो कॉलिंग करे। इसी प्रकार के ढेरों सवाल।

किसी प्रकार से मानसी उन सवालों से पीछा छुड़ाती तो पीहू और सवाल पूछती, मेरी दादी कहाँ है, नानी को तो मैनें देखा ही नहीं है, सब बच्चों के घर उनकी मासी, बुआ, चाचा, मामा आते हैं, हमारे घर तो कोई रिश्तेदार आता ही नहीं। कल ही मेरी दोस्त कुहू बता रही थी कि इतवार को उसके मामा–मामी अपने दो साल के प्यारे से बेटे को लेकर आए और बहुत से तोहफे भी लेकर आए। दो दिन तक वो रहे, कितना मज़ा आया। मामा के गोल–मटोल बेटे रोहण के साथ वो ख़ूब खेली। ऐसे न जाने कितने सवाल पीहू उससे हर रात सोने से पहले ज़रूर पूछती। छुट्टी वाले

दिन तो मानसी उसे लेकर कहीं न कहीं घूमने चली जाती। मॉल में घूमना पीहू को बहुत पसंद था। सारे ऑफिस में मानसी की ज़्यादा दोस्ती सिर्फ़ रीता से थी और वो अकेली रहती थी। उसकी अभी शादी नहीं हुई थी। कभी–कभी वो पीहू को लेकर उसके घर चली जाती, लेकिन वहाँ तो पीहू का दिल बिल्कुल नहीं लगता था। थोड़ी देर टीवी देखकर वो बोर हो जाती।

इन्हीं सवालों और परेशानियों के झंझावत में उलझी मानसी पीहू के पास जाकर लेट गई और जल्द ही नींद के आग़ोश में चली गई। वक्त और हालात कैसे बदल जाते हैं और किस तरह बदल जाते हैं, इन्सान सोच भी नहीं पाता। मानसी ने कभी सपने में भी नहीं सोचा होगा कि इतने बड़े और अच्छे परिवार के होते वो यूँ अकेली हो जाएगी। वो तो ये भी नहीं जानती कि इन सब के लिए ज़िम्मेदार कौन है, वो ख़ुद, हालात, पराग या उसकी अपनी कमज़ोरी। घर–भर की लाडली मानसी के दो भाई और एक छोटी बहन थी। पिताजी की बहुत अच्छी नौकरी, पर उनकी ट्रांस्फर बहुत जल्दी हो जाती थी, इसलिए सारा परिवार एक छोटे से कस्बे में ही रहता। काफ़ी बड़ा पुश्तैनी घर और बहुत से रिश्तेदार भी आस–पास ही रहते थे।

मानसी का परिवार बहुत ज़्यादा रूढ़िवादी तो नहीं था, लेकिन बहुत ज़्यादा आधुनिक विचारधारा भी नहीं था। अगर लड़कियों पर ज़्यादा पाबंदियाँ नहीं थी, तो ज़्यादा छूट भी नहीं थी। लेकिन हां, मानसी की स्थिति अपनी बाकी कज़नस से ज़्यादा अच्छी थी। बाकी सब ने तो वहीं पर रह कर इंटर या ग्रेजुएशन किया, लेकिन मानसी को शहर में होस्टल में रह कर पढ़ाई करने की छूट मिली। एम. बी. ए. के बाद हैदराबाद में नौकरी मिल गई, बल्कि पहले ही मिल गई थी। मानसी की माँ तो नहीं चाहती थी कि वो नौकरी करे, लेकिन पिताजी की सपोर्ट थी। हर माँ की तरह मानसी की माँ को भी उसके रहने–खाने की चिंता थी, लेकिन मानसी को किसी होस्टल में जगह मिल गई थी। पहले कुछ दिन तो कम्पनी की तरफ़ से ही इंतज़ाम होता है।

मानसी हँसमुख और मिलनसार थी, लेकिन बहुत ज़्यादा माडर्न नहीं थी। उसके संस्कार, पहनावा मर्यादित था। जीन्स वग़ैरह पहनती थी, लेकिन शार्टस नहीं। अपने पुरूष सहकर्मियों से काम की बात ही करती और लड़कियों की तरह लड़कों के साथ घूमना–फिरना, मूवीज़ देखना उसके संस्कारों में नहीं था। जब भी मौका लगता छुट्टियों में वो घर जाना पसंद करती। कंपनी में काफ़ी माडर्न लड़कियां थीं। कईयों ने तो उसका नाम 'बहन जी' भी रखा हुआ था, लेकिन मानसी को कोई फ़र्क

नहीं पड़ता था। उसके जैसे विचारों वाली लड़कियों का भी गरूप था। ज़िंदगी मज़े से चल रही थी, लेकिन तूफ़ान भी कहाँ पूछ कर आते हैं। ऑफिस के बॉस के बेटे के जन्मदिन की पार्टी में सब के साथ मानसी भी गई। ऑफिस के कर्मचारियों के इलावा कुछ और लोग भी थे।

नाच–गाना, हंसी–खुशी का माहौल था। मानसी ने प्लेन साड़ी के साथ प्रिंटिड गोटे किनारी वाला कंटरास्ट सुंदर ब्लाउज़ पहना हुआ था। मैचिंग ज्यूलरी, सैंडिल और हल्का मेकअप। लंबी और सुंदर वो थी ही, लंबे खुले बाल सचमुच ग़ज़ब ढा रहे थे और भी लड़कियां सुंदर लग रही थीं, लेकिन मानसी में कुछ तो ख़ास था। चारों तरफ़ मौज–मस्ती चल रही थी। जाम भी छलक रहे थे, आदमी तो पी ही रहे थे, कुछ औरतों ने भी आधुनिकता के नाम पर गिलास थामे हुए थे। मानसी से भी पूछा गया, लेकिन उसने शालीनता से मना कर दिया। उसे तो सिर्फ़ नींबू पानी ही पसंद था। तभी बॉस ने एनाउंस किया कि उसका कज़न पराग गाना गाएगा। थोड़ी ना नुकर के बाद पराग गाने के लिए राज़ी हो गया। सचमुच ही उसकी आवाज़ में जादू था। उसने किसी पुरानी फ़िल्म का गाना 'मेरे महबूब क़यामत होगी, आज रुसवा तेरी गलियों में मुहब्बत होगी' गाया।

फिर तो गानों का दौर ही चल पड़ा। तीन गाने तो पराग ने ही गाए। डिनर करते–करते रात के दो बज गए। सब लोग चले गए। पराग भी जाने ही वाला था। मानसी के कई बार कोशिश करने पर भी कैब बुक नहीं हुई, तो बॉस ने पराग को मानसी को ड्रोप करने के लिए कह दिया। पराग का घर भी लगभग उसी तरफ़ था, जिधर मानसी का हॉस्टल था। वैसे तो होस्टलों में इतनी देर तक बाहर नहीं रहने दिया जाता, लेकिन वो हॉस्टल स्पैशल तौर पर वर्किंग वुमन के लिए था, इसलिए ज़्यादा पूछताछ नहीं होती थी। मानसी थोड़ा झिझक तो रही थी, लेकिन और कोई चारा भी तो नहीं था। बॉस की बीवी ने तो रात को रूक जाने की पेशकश रखी थी, लेकिन मानसी जाना चाहती थी। आगे शनि, इतवार की छुट्टी थी। देर तक सोकर आराम से उठने का सुख भी तो हफ़्ते बाद नसीब होता है।

गुड नाईट बोल कर दोनों चल पड़े। पार्टी में तो दोनों में कोई बात भी नहीं हुई थी। बॉस उन्हें बक़ायदा कार तक छोड़ने आया। मानसी को थोड़ा अजीब तो लग रहा था, क्योंकि इतनी रात को किसी अजनबी के साथ बैठने का उसका पहला मौका था। वो तो रात के आठ–नौ बजे या उससे भी पहले ही अपने कमरे में आ जाती थी। मूवीज़ वग़ैरह भी छुट्टी वाले दिन ही देख लेती थी, लेकिन वो इतनी

डरपोक भी नहीं थी और पराग बॉस का कज़न भी तो था। रास्ते में काफ़ी देर दोनों पहले तो चुप रहे, लेकिन फिर पराग ने थोड़ी बहुत बात शुरू की। उसने बताया कि वो भी एक कम्पनी में उच्च ओहदे पर कार्यरत है और कंपनी की तरफ़ से मिले फ़्लैट में अकेला रहता है। उसका परिवार काफ़ी दूर एक गाँव में है। दो चार बातें मानसी ने भी अपने और अपने परिवार के बारे में बताई। दोनों ने एक दूसरे के फ़ोन नं. भी ले लिए। हॉस्टल के आगे छोड़कर पराग चला गया।

अगला दिन तो आराम में निकल गया। ऑफिस में मानसी के साथ तीन–चार लड़कियों का गरूप था। अक्सर वो सभी इतवार को मिलकर मस्ती करती थीं। इत्तिफ़ाक़ कि इस बार दो तो घर चली गई और एक की तबीयत कुछ ठीक नहीं थी। दो दिन से कमरे में बोर हो रही मानसी ने सोचा कि चलो मॉल से कुछ शॉपिंग की जाए, क्योंकि अगले महीने उसे भी घर जाना था। जब भी वो घर जाती, सबके लिए कुछ न कुछ ज़रूर लेकर जाती, ख़ास तौर पर अपनी छोटी बहन वृंदा के लिए। मानसी मॉल में अपनी बहन के लिए कोई सुंदर सी ड्रेस की तलाश में एक ब्रैंडिड शोरूम में घुसी। वो ड्रेसेज़ चूज़ करने में बिज़ी थी, तभी उसे साथ वाले काऊंटर से जानी–पहचानी आवाज़ सुनाई दी। देखा तो पराग भी लेडीज़ कपड़े देख रहा था। दोनों ने एक साथ ही हैलो बोली। थोड़ी बातचीत के बाद पराग बोला, "अच्छा हुआ आप यहाँ मिल गई, मुझे अपनी कज़न सिस्टर के लिए ड्रेस ख़रीदनी है, लेकिन मुझे लेडीज़ कपड़ों की कोई नॉलेज नहीं। प्लीज़ आप मेरी मदद करें।"

जिस काऊंटर पर मानसी खड़ी थी, वहाँ पर तो मॉडर्न ड्रैसिज थी। वैसे भी मानसी तो ड्रैस चूज़ कर चुकी थी। उसने पराग से भी वहीं पर ड्रैस चूज़ करने के लिए बोला, लेकिन उसने कहा कि उसे तो अपनी बहन के लिए दुपट्टा सूट लेना है, क्योंकि गाँव में वैसे कपड़े नहीं चलते। मानसी ने उसे बहुत ही सुंदर सूट चुनकर दिया, क्योंकि उसके घरों में भी काफ़ी हद तक सूट साड़ियाँ ही चलती थी। दोनों अपने–अपने पैकेट उठाकर चल दिए। "क्या आप मूवी देखना पसंद करेंगी?" अचानक ही पराग ने पूछा। मन तो मानसी का भी था, तो उसने झट से हाँ में सिर हिलाया। अभी मूवी में थोड़ा टाईम था, तो दोनों ने कुछ खाया–पिया। मूवी देखने के बाद पराग ने उसे होस्टल तक छोड़ दिया। जल्दी–जल्दी में मानसी अपना सामान गाड़ी से निकालना भूल गई। अगले दिन पराग ने उसे फ़ोन किया तो सामान लेने के बहाने फिर मिलना हो गया।

अब तो ये मुलाक़ातों का सिलसिला शुरू हो चुका था। दोनों की दोस्ती कब प्यार में बदल गई पता ही नहीं चला। कई बार तो मानसी रात को पराग के फ़्लैट पर भी रूक जाती। सारी दूरियां ख़त्म हो चुकी थी। दोनों का घर जाना भी कम हो गया। मानसी की माँ अक्सर शिकायत करती, लेकिन मानसी काम का बहाना बना कर टाल देती। समय अपनी गति से चल रहा था कि अचानक पराग को गाँव जाना पड़ गया। जल्दी आने का वादा करके वो चला गया। मानसी से फ़ोन पर बात हो जाती थी, लेकिन कुछ दिनों बाद फ़ोन आना भी बंद हो गया। मानसी की परेशानी बढ़ती जा रही थी। दोनों प्यार में इतना डूब चुके थे कि एक दूसरे की पारिवारिक जानकारी नाममात्र की ही थी। दोनों की जात–बिरादरी अलग थी, लेकिन आजकल ये चीज़ें बच्चों के लिए कोई मायने नहीं रखती। जल्दी ही दोनों शादी की बात घर वालों से करने ही वाले थे कि पराग ही ग़ायब हो गया।

किसी को भी मानसी पराग के प्रेम प्रसंग के बारे में पता नहीं था, सिवाय मानसी की एक अंतरंग सखी रचना के। मानसी आख़िर पूछे भी तो किससे। मानसी को तो उसके गाँव का नाम भी पता नहीं था। वो बॉस का कज़न था, लेकिन बॉस भी वहाँ से जा चुके थे। जल्द ही उसे अहसास हो गया कि वो माँ बनने वाली है। एक दो बार चुपके से उसके ऑफिस जाकर पता करने की कोशिश की, लेकिन कुछ पता नहीं चला। दिन निकलते जा रहे थे। मानसी को लग रहा था कि वो पागल हो जाएगी। घर भी किस मुँह से जाए। पराग के प्रेम की निशानी को मिटाने की हिम्मत भी उसमें नहीं थी। सिर्फ़ रचना ही थी जो उसका सहारा बनी हुई थी और उसे हौंसला दे रही थी। चार महीने बीत गए। उसने घर पर फ़ोन करना लगभग बंद ही कर दिया था। किसी का फ़ोन आता तो बस हूँ हाँ में जवाब देती। कोई न कोई बहाना बना कर फ़ोन काट देती। आख़िर एक दिन उसके मम्मी–पापा बिना बताए आ पहुँचे।

मानसी को देखकर उन्हें लगा कि शायद वो बीमार है। उसकी मम्मी की नज़रों से सच छुपा न रह सका। मानसी फूट–फूट कर रो रही थी। मम्मी उसे डॉक्टर के पास ले जाना चाहती थी, लेकिन मानसी कहाँ तैयार थी। वैसे भी समय काफ़ी हो चुका था। अपने दिल का सारा ग़ुबार निकालकर वो दोनो चले गए। माँ ने तो यहाँ तक कह दिया कि अब अपनी काली शक्ल दिखाने की ज़रूरत नहीं। आज से वो उनके लिए मर गई। पता नहीं वापिस जा कर उन्होंने लोगों को क्या कहा होगा, लेकिन तब से आज तक लगभग दस साल हो गए, मानसी को किसी के बारे

में कुछ पता नहीं। नौकरी छोड़ कर रचना की मदद से वो मुंबई चली आई। वहाँ पर रचना की ही किसी जानकार के पास रहकर पीहू को जन्म दिया। मुंबई जैसे शहर में कोई किसी की और ध्यान नहीं देता। समय अपनी गति से चलता रहा और नौकरी भी मिल गई। पीहू के पापा के बारे में उसने यही बताया कि वो विदेश गए हुए हैं। वैसे वो किसी से कम ही मिक्सअप होती थी।

पीहू के सवालों से बचने के लिए इतवार को मानसी मॉल में आई हुई थी। चिल्डरन ज़ोन में खेलना पीहू को बहुत पसंद था। उसको वहां छोड़कर मानसी पास में ही कॉफ़ी पीने बैठ गई। वहाँ खेलते–खेलते पीहू की दोस्ती मानव नाम के लड़के से हो गई जो कि अपने पापा के साथ आया हुआ था। उसके पापा वहीं पास में ही बैठे हुए थे। मानसी जब पीहू को लेने आई तो दोनों ख़ूब मस्ती कह रहे थे। मानव और पीहू एक दूसरे को छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे, लेकिन जाना तो था ही। तभी दूर से अपने पापा को देख मानव उनकी तरफ़ भागा ताकि पीहू और उसकी मम्मी को पापा से मिलवा सके। मानसी ने उस और देखा तो मानो उसे चक्कर ही आ गया। वो गिरते–गिरते बची। पास पड़ी कुर्सी का सहारा न लेती तो गिर ही जाती। मानव का पापा और कोई नहीं यक़ीनन पराग ही था। दस सालों में इतना भी अंतर नहीं आया था कि मानसी उसे पहचान न सके। बाल कुछ कम और थोड़े सफ़ेद हो गए थे। थोड़ा शरीर भर गया था।

पराग ने भी मानसी को देख लिया था। दोनों बच्चों ने जब बड़े उत्साह से अपने माँ–बाप का परिचय दिया और अपने नए दोस्त से मिलाया तो दोनों को हैलो बोलना पड़ा। मानसी अपलक पराग को निहार रही थी। बात करने का कोई सिरा हाथ नहीं आ रहा था। पर अब तक वो सँभल चुकी थी। बच्चों ने आईसक्रीम खाने की फ़रमाइश की तो पराग ने दोनों को उनकी पसंद की आईसक्रीम दिलवा दी। दोनों आईसक्रीम खाने में मस्त हो गए। जब बात करने का कोई सिरा हाथ न लगा तो पराग ने पूछा 'कैसी हो '?

'ठीक हूँ, जी रही हूँ'

'तुम कैसे हो, मज़े में लग रहे हो, मानव की मम्मी साथ नहीं आई'?

पराग के जवाब देने से पहले दोनों बच्चे आईसक्रीम ख़त्म करके उनके पास आ गए। मानसी जाने के लिए उठ खड़ी हुई। पराग ने पूछा कि क्या हम कल मिल सकते हैं। पहले तो मानसी चुप रही, लेकिन फिर उसने हाँ में सिर हिलाया और अपना फोन नं. दे दिया।

'ठीक है, फ़ोन पर बात करेंगे, घर पर तुम्हारा इंतज़ार हो रहा होगा'।

'घर पर कोई नहीं है' पीहू तपाक से बोली। पराग ने ज़्यादा ध्यान नहीं दिया।

मानसी और पीहू अपनी गाड़ी की और चल दी, पराग टैक्सी बुक करने लगा। पीहू का बस चलता तो दोनों को अपनी गाड़ी में ही बिठा लेती, लेकिन मम्मी का उखड़ा मूड़ देखकर चुप रही। बाद में पराग का फ़ोन आया तो मानसी ने सिर्फ़ इतना कहा 'क्या मिलना ज़रूरी है, रिश्ते तो तुमने कब के ख़त्म कर दिए'।

'सिर्फ़ एक बार'

तीन बजे कैफ़े में मिलने का समय निश्चित हुआ। मानसी को ऑफिस से छुट्टी लेकर आना था। पीहू तो वैसे भी शाम छः बजे तक स्कूल के डे केयर में रहती थी। वहीं पर कभी डाँस और कभी जिमनास्टिक क्लास चलती थी। मानसी जब वहाँ पर पहुँची तो पराग पहले से ही बैठा हुआ था। थोड़ी देर चुप्पी छाई रही तो पराग ने ही बात शुरू की।

'मैं तुम्हारा गुनहगार हूँ मानसी, लेकिन मैं बहुत मजबूर था। तुमसे आख़री बार विदा लेकर जब गाँव पहुँचा तो मेरी चाची की तबियत बहुत खराब थी। मैनें तुम्हें बताया था कि मेरा संयुक्त परिवार है। पापा और मेरे दो चाचा, हम सभी इकट्ठे रहते हैं। तब दादाजी भी ज़िंदा थे। हम दो सगे भाई हैं, बड़े चाचा का एक बेटा बेटी हैं और छोटे चाचा के भी दो बेटे हैं। मैं सबसे बड़ा हूँ। सरू हम सब भाईयों की इकलौती लाडली बहन है। वहाँ जाकर मुझे पता चला कि वो किसी लड़के से प्यार करती है और जवानी में बहुत बड़ी भूल कर बैठी है। लड़के वाले शादी करने को तो तैयार थे, लेकिन उनकी शर्त थी कि मुझे उनकी लड़की से शादी करनी पड़ेगी, जो कि बहुत मोटी और सिर्फ़ आठवीं पास थी।

'मैंने टालने की बहुत कोशिश की, मगर कोई चारा नहीं था। चाची मेरे आगे गिड़गिड़ा रही थी, उसकी तबियत दिन–ब–दिन बिगड़ती जा रही थी, चाचा भी गुमसुम। सोचने विचारने का समय नहीं था। मजबूरन मुझे शादी करनी पड़ी। एक हफ़्ते में ही सब कुछ हो गया। मैनें फ़ोन का सिम निकालकर फेंक दिया। किस मुँह से तुमसे बात करता। सोचा धीरे–धीरे तुम्हारे ज़ख़्म भर जाएंगे । मैं माफ़ी के क़ाबिल तो नहीं, लेकिन हो सके तो मुझे माफ़ कर देना। तुम पीहू और अपने पति के साथ खुश रहो, कह कर पराग तेज़ी से बाहर निकल गया'। मानसी उसको जाता देखती

रही और सोच रही थी, एक बार भी मेरे बारे में नहीं पूछा। भारी मन से वो उठ कर चली आई। शायद नियति को यही मजूंर था।

अगले दिन उसने फ़ोन पर रचना से बात की, उसे सब बताया। रचना ने उससे पराग का नं. लिया। मानसी ने नं. तो दे दिया, लेकिन उससे कहा कि पराग से बात मत करे। अब उसकी अपनी गृहस्थी है। रचना कहां मानने वाली थी। रचना अब भी हैदराबाद में ही थी। उसकी शादी वहीं पर हो गई थी। उसका पति भी वहीं पर किसी अच्छी कम्पनी में था। रचना ने अगले ही दिन पराग को फ़ोन लगाया। उसके बारे में पूछा तो पता चला कि वो भी हैदराबाद में ही है। जब उसने अपनी कम्पनी का नाम बताया तो रचना को हैरानी हुई, क्योंकि उसके पति की भी वही कम्पनी थी। उसके पति कबीर को भी मानसी के बारे में सब पता था, लेकिन उसे क्या मालूम कि उसके साथ काम करने वाला पराग ही वही लड़का है।

सिर्फ़ इतना ही नहीं पराग से उसकी अच्छी जानकारी थी। बहुत ज़्यादा दोस्ती तो नहीं थी, लेकिन पराग का एक दोस्त राहुल उसका भी अच्छा दोस्त था। अगले दिन वैसे ही कबीर ने राहुल से पराग की बात छेड़ दी तो राहुल ने बताया कि पराग बहुत अच्छा लड़का है, लेकिन किस्मत के आगे किसी का बस नहीं चलता। एक आठ साल का बेटा है जो कि गाँव में अपनी दादी के पास रहता है। पत्नी की एक कार एक्सीडेंट में पाँच साल पहले मृत्यु हो गई थी। पराग भी साथ ही था वो बच तो गया, लेकिन एक टाँग कट गई। देखने में पता नहीं चलता, लेकिन एक टाँग लकड़ी की है। अब कबीर को ध्यान आया कि अक्सर उसने उसे अपनी सीट पर बैठे ही देखा है। चलते–फिरते कम ही देखा है।

कबीर ने सारी बात रचना को बताई। अगले ही दिन रचना और कबीर पराग से मिले। पराग के बारे में जानकर रचना को बहुत दुख हुआ। पराग ने रचना से विनती की कि वो मानसी को पराग के बारे में कुछ न बताए। अब मानसी असमंजस में थी कि वो उसे मानसी के बारे में बताए या नहीं। पराग तो यही समझ रहा था कि मानसी की शादी हो गई है। आपस में कबीर और रचना विचार करने लगे कि अब क्या किया जाए। पराग की वास्तविक स्थिति को जानकर क्या मानसी उसे माफ़ कर देगी और अपना लेगी। उन्होंने ये विचार किया कि इन दोनों को एक बार फिर से मिलाया जाए। कुछ दिनों बाद ही रचना की बेटी माही का जन्मदिन था तो उसने मानसी से आने का आग्रह किया। वैसे भी पीहू और माही में अच्छी दोस्ती थी।

घर पर ही छोटी सी पार्टी रखी गई थी। मानसी और पराग का आमना सामना हुआ। दोनों में हैलो हाए ही हुई। रात को जब रचना ने मानसी को पराग के बारे में बताया तो वो तड़फ उठी। रचना ने पूछा कि क्या वो पराग से अब भी प्यार करती है। मानसी का बस चलता तो भागकर पराग के पास पहुँच जाती, लेकिन सुबह का इंतज़ार तो करना ही था। अगर मानसी ने इतने साल रो–रो कर गुज़ारे तो पराग भी कहाँ सुखी रहा। अगले दिन कबीर ने पराग को होटल में बुलाया। मानसी, कबीर और रचना भी वहां पहुँच गए। पीहू घर पर माही और उसकी दादी के साथ मज़े से रह गई। बात रचना ने शुरू की। धीरे–धीरे सारे गिले शिकवे दूर हो गए। मानसी ने पराग को माफ़ तो पहले ही कर दिया था। वैसे भी मजबूरियों के आगे किसी का वश नहीं चलता। थोड़ी देर के लिए कबीर और रचना वहाँ से जानबूझकर कर उठ कर चले गए ताकि वो अकेले बात कर लें।

'क्या तुम सचमुच मेरे साथ शादी करने को तैयार हो, ये जानते हुए कि मेरा एक बेटा है, जिससे तुम मिल चुकी हो और मेरी एक टाँग लकड़ी की है', पराग ने पूछा।

'गाँव में शादी करना तुम्हारी मजबूरी थी और एक्सीडेंट किसी के साथ भी हो सकता है'

'अभी एक और बात बतानी बाकी है, अब मैं बाप भी नहीं बन सकता'

'उसकी ज़रूरत भी नहीं, पीहू तुम्हारी ही बेटी है, हमारा परिवार तो पहले ही पूरा है, एक बेटा और एक बेटी'

'क्या, पीहू मेरी बेटी है'? पराग ने खुशी और हैरानी से पूछा।

'चाहो तो डी.एन. ए. टैस्ट करवा लो', मानसी ने छेड़ते हुए कहा।

इतने में रचना और कबीर आ गए। पूरी बात जानकर सबके चेहरे खुशी से चमकने लगे। दुख के बादल छँट चुके थे। सारी मजबूरियाँ ख़त्म हो गई थी। बस अब किसी तरह मानसी को अपने परिवार से मिलना बाकी था, लेकिन वो जानती थी कि वो उनको मना लेगी। क्योंकि माँ–बाप तो बच्चों की खुशी में खुश रहते हैं।

■

8

हक की परिभाषा

माही ने नज़र उठा कर घड़ी की और देखा तो उसे कुछ घबराहट सी हो आई। सिर्फ़ एक घंटा ही बचा है, मेहमानों के आने में और अभी कितने काम पड़े हैं। मेड भी बेचारी कितनी तेज़ी से हाथ चला रही है। चाय भी पड़ी–पड़ी ठंडी हो गई तो वो उठा कर एक घूँट में ही पानी की तरह पी गई। अब माही को थोड़ा अपने आप पर ग़ुस्सा भी आया। क्या ज़रूरत थी फालतू में किट्टी मैंबर बनने की। वो तो इन सब से कोसों दूर रहती है। वैसे भी नौकरी करने वाली औरतों के पास समय ही कहां होता है। ये चोंचले तो घरेलू महिलाओं के लिए ही ठीक हैं। इसी बहाने मिलना–जुलना हो गया और मुहल्ले की ख़बरें भी मिल गई। सब से बड़ी बात ये भी थी कि सजने–सँवरने का इससे बढ़िया मौका कब मिलता।

नौकरीपेशा को तो रोज़ ही घर से निकलने के लिए तैयार होना पड़ता है, पर उस तरह तैयार होने में और इस तरह तैयार होने में बहुत अंतर है। अपनी बचपन की सखी सुहानी के बहुत कहने पर उसने पहली बार ज़िंदगी में एक किट्टी डाली।

जिसके घर भी किट्टी होती, उसे लंच तैयार करना होता था दस बारह मैंबरस के लिए। रखा तो उन्होंने ये हुआ था कि ज़्यादा ताम-झाम नहीं करना, लेकिन हर कोई एक से बढ़ कर एक व्यंजन तैयार करता था। आख़िर स्टेटस भी तो दिखाना होता है। उसको तो ये सोच कर ही हैरानी हो रही थी कि कुछ–कुछ महिलाओं ने तो चार–चार किट्टियां डाली हुई थीं। कोई होटल में तो कोई किसी क्लब में। सुहानी के कहने पर जिस किट्टी की मैंबर माही बनी वो घर पर ही की जाती थी। घर का बना खाना और खर्च भी कम। चाहो तो कुछ सामान समोसे, स्वीट डिश वगैरह बाज़ार से मँगवा लो, लेकिन माही खाना बनाने में निपुण थी तो उसने घर पर ही सब कुछ तैयार करने का फैसला किया। चूँकि ये सब उसके लिए नया था, वैसे मेहमान तो उसके घर पर आते ही रहते हैं, लेकिन आज का अनुभव कुछ अलग था।

और फिर उसे ग़ुस्सा आ रहा था प्रिय सखी सुहानी पर। कितना कह रही थी कि वो हर काम में मदद कर देगी, जल्दी ही आ जाएगी। पंगचुऐलिटी, तंबोला, गेम्स, सब तैयारियाँ वो कर लेगी, लेकिन न जाने कहाँ रह गई, फ़ोन भी नहीं उठा रही।

जैसे–तैसे सब तैयारियाँ हो गई। बस टेबल सजानी ही बाकी थी तो सुहानी आई। आते ही चुपचाप काम में लग गई। माही को भी तैयार होना था । सुहानी को देख उसकी जान में जान आई और बचा काम उसके हवाले कर वो बाथरूम में घुस गई। बारह बजते ही सब आने शुरू हो गए। हँसी खेल, मज़ाक, बातें, खाना पीना सब अच्छे से हो गया। सुहानी ने हर काम में भाग–भाग कर मदद की, लेकिन उसके चेहरे पर जो उदासी की परत थी वो माही की पारखी नज़रों से छुपी नहीं रह सकी। उसने एक दो बार पूछा भी कि सब ठीक तो है घर में, लेकिन काम की वजह से ज़्यादा बात नहीं हो पाई और सुहानी ने भी हँस कर कहा, सब ठीक है। लेकिन माही उसकी रग–रग से वाक़िफ़ थी। दोनों बचपन की सखियाँ थी और संयोग भी देखिए, दोनों की शादी एक ही शहर में हुई और घर भी ज़्यादा दूर नहीं थे। दोनों पढ़ी–लिखी थी, लेकिन घरेलू हालात के चलते सुहानी ने नौकरी नहीं की और उसकी नौकरी में दिलचस्पी भी कम थी। उसकी सास बीमार रहती थी, दो बच्चे, पहले तो देवर ननंद भी थे, जिनकी अब शादियाँ हो गई थी। जबकि माही पर घरेलू जिम्मेदारी बहुत कम थी। शुरू से नौकरी करती थी। पति की आय भी अच्छी, अपना फ़्लैट और परिवार गाँव में रहता था। कभी–कभार जाना–आना होता था। एक बेटा, कुल मिलाकर बढ़िया ज़िंदगी थी।

सुहानी के पति का ठीक–ठाक सा बिजनेस था। तीन मजिंला अपना छोटा सा घर था। नीचे सुहानी, उसका पति, दो बच्चे और सास थे। पहली मंज़िल पर देवर अपने परिवार के साथ निवास करता था। उसके ऊपर की मंज़िल को किराये पर दे रखा था। उसका किराया माता जी के बैंक खाते में जमा हो जाता। अपनी ज़रूरत के हिसाब से वो पैसे मँगवा लेती थी। दोनों बेटों का कारोबार ठीक–ठीक था। अपना मकान था तो गुजारा अच्छा हो जाता था। तभी तो कहते हैं कि मकान अपना हो तो थोड़े कम पैसों से भी काम चल जाता है, लेकिन अगर किराया देना पड़े तो आधी कमाई उसी में निकल जाती है। सुहानी तो दिन रात अपने ससुर का शुक्रिया अदा करती कि उन्होंने दूरदर्शिता दिखाते हुए थोड़ी सी कमाई में भी इतना अच्छा घर बना लिया। बेटी को भी पढ़ा–लिखा दिया और किस्मत से उसे बैंक में नौकरी मिल गई। पति भी बैंक में कार्यरत थे और अपना खूब बड़ा सा घर था। अच्छा शाही घर था उसका। कहते हैं कि घर की बेटी सुखी तो सारा परिवार सुखी। सुधा की अपने दोनों भाईयों से बहुत बनती थी। भाई भी उस पर जान छिड़कते थे। शादी पर भी खूब खर्च किया था। सब अच्छा ही अच्छा था।

ये थी दोनों सहेलियों की कहानी। सुहानी के चेहरे पर जो उदासी थी वो माही से छुपी नहीं थी। एक दो बार पूछा भी मगर वो टाल गई। काम ख़त्म होते ही वो चली गई। माही ने भी ज़्यादा रोका नहीं। वो ख़ुद बहुत थकी हुई थी और आराम करना चाहती थी। दो तीन दिन निकल गए। माही ऑफिस के काम में व्यसत हो गई। मगर उसे सुहानी की चिंता बराबर सता रही थी। उसने सुहानी को शाम को पार्क में सैर करने के लिए फ़ोन किया। वो दोनों पहले भी समय मिलने पर पार्क में शाम को कभी–कभी घूमती थी। महीने दो महीने में तो एक बार तो दोनों परिवार पिकनिक वगैरह के लिए भी चले जाते थे। मिलना–जुलना, बच्चों का सैर–सपाटा भी हो जाता था, लेकिन पिछले छः महीने से वो जा नहीं पाए थे। कारण कि सुहानी की सास का स्वर्गवास हो गया था। चलो उम्र के हिसाब से सबको जाना ही होता है। सब कुछ ठीक–ठाक था तो सुहानी उदास क्यूँ। इसीलिए माही ने उसे पार्क में बुलाया, ताकि उसके दिल का हाल जान सके।

दोनों ने कुछ देर यहाँ–वहाँ की बाते की। रात होने को थी तो माही ने उससे पूछा कि लगता है कि तुम किसी बड़ी उलझन में हो। मुझे बताओ तो शायद कोई हल सोचा जाए। सुहानी अपनी पारिवारिक समस्या बताना नहीं चाहती थी, लेकिन माही के बहुत ज़ोर देने पर उसने सब बता दिया। जैसा कि सरकार की और से माँ–बाप की सम्पति पर सभी बच्चों का हक निश्चित है। बेटा हो या बेटी, सब बराबर के हक़दार हैं। सुहानी जिस मकान में रहती है, जब तक सास ज़िंदा थी सब ठीक था। तीनों भाई बहन आपस में प्यार से रहते थे। इकलौती बहन सुधा भी उसी शहर में रहती थी। जब जी चाहता, आ जाती। दोनों भाई अपनी बहन और उसके परिवार के स्वागत–सत्कार में कोई कसर नहीं छोड़ते थे। राखी, टीका, दीवाली, तीज सब का नेग करते। माँ के पास भी अपने पैसे होते थो, बेटी को हर त्यौहार, सालगिरह, जन्मदिन पर खूब तोहफ़े देती। समस्या तब खड़ी हुई जब मां के मरने के बाद सुधा ने घर में से अपना हिस्सा माँगा और न देने पर कानूनी कार्यवाही की धमकी तक भी दे डाली।

उन्हें अपनी प्यारी छोटी बहन से इस तरह के व्यवहार की क़तई उम्मीद नहीं थी। माँ की कोई वसीयत भी नहीं थी। उन्होनें उसे कहा कि वो ऊपर वाली मंज़िल उसकी। चाहे बेचे चाहे किराया ले ले (आजकल कई शहरों में ऊपर नीचे के मकान बिक जाते हैं), लेकिन उसका कहना है कि तीसरी मंज़िल की कीमत कम है। पूरे मकान की कीमत डालकर उसे उसका तीसरा हिस्सा दिया जाए। अब या तो हम

उसे काफ़ी नक़द दें और ऊपरी मंज़िल तो हम दे ही रहे हैं, लेकिन कीमत के हिसाब से तीस चालीस लाख और दें या फिर मकान बेचें। पैसे देने की हमारी हैसियत नहीं है और अगर एक बार मकान बिक गया तो पता नहीं फिर कब बनेगा। बनेगा भी या नहीं। बच्चे बड़े हो रहे हैं, उनकी पढ़ाई–लिखाई, शादी विवाह और बिजनेस भी इतना बड़ा नहीं। बस दिन–रात दोनों भाई इसी चिंता में डूबे रहते हैं। अब इस समस्या का क्या हल निकाला जाए।

यह सब सुनकर माही के पैरों तले भी ज़मीन खिसक गई। भारी मन से दोनों सखियों ने विदा ली। माही का किसी काम में मन नहीं लग रहा था। रात का खाना–पीना निपटाकर वो लेट गई, लेकिन नींद आँखों से कोसों दूर। जब उसका ये हाल है तो सुहानी के दिल पर क्या बीत रही होगी। सुहानी ने बताया था कि उन्होंने तो बहन को ये भी कहा कि ऊपरी मंज़िल की रजिस्टरी अपने नाम करवा ले, किराया लेती रहे जितने पैसे और बनते हैं दोनों भाई धीरे–धीरे करके दे देंगे। माही की समझ में ये नहीं आ रहा था कि ग़लत कौन है। अगर हम लड़कियों के हिस्से के हक की बात करें तो सुधा भी ग़लत नहीं थी। अगर तीसरा भाई होता तो हो सकता है वो भी यही कहता। नीचे का घर बड़ा है, बीच वाला उससे छोटा, टॉप वाला उससे भी छोटा, लेकिन प्यार–मुहब्बत भी तो कोई चीज़ है। माना कि सरकार ने लड़कियों के हक़ों की रक्षा करते हुए ये फ़ैसला किया है, मगर देखा जाए तो जमाना कितना बदल चुका है।

पुराने जमाने में लड़कियों की पढ़ाई–लिखाई पर कुछ खर्च नहीं था। जायदाद में हिस्सा भी नहीं था। शायद इसी लिए दहेज प्रथा थी। इसके इलावा हर तीज–त्यौहार पर मायके से तोहफ़े जाने ही जाने थे। चाहे उसके बच्चों की शादियाँ हो या ससुराल में कुछ भी खुशी गमी हो, मायके से कुछ न कुछ आना है। बेटियों के घर आज भी खाली हाथ नहीं जाते। सारी उम्र ससुराल में रहने के बाद लड़कियों को तो कफ़न भी मायके का होने का रिवाज है। समय के साथ–साथ बहुत कुछ बदला, लेकिन दहेज या बाकी लेन–देन तो नही बदला। ज़्यादा ही हो गया लगता है। लड़की जितना मर्ज़ी पढ़ी–लिखी हो, दहेज तो फिर भी है, स्वरूप चाहे बदल गया। पुराने जमाने में तो हाथ का पंखा देकर ही काम चल जाता था, अब तो ए. सी. भी कम है। शादियाँ तो और महंगी हो गई हैं। जब बराबर का हिस्सा है तो फिर फ़र्ज़ भी बराबर होने चाहिए। आज कितने माँ–बाप हैं जो लड़कियों के पास रहते हैं। ये देन–लेन बिल्कुल ख़त्म होना चाहिए। अगर खर्च करना भी है तो दोनों पक्ष बराबर करें,

लेकिन दूसरी तरफ़ देखा जाए तो कई बार लड़कियों को सचमुच ही मायके की स्पोर्ट चाहिए होती है। माही को आज भी याद था कि बचपन में कैसे उसकी एक सहेली के पिता की असामायिक मौत पर उसकी माँ ने लोगों के घरों में काम करके गुज़ारा चलाया था। उन दिनों कानून औरतों के पक्ष में नहीं था। उसकी माँ भी बहुत कम पढ़ी–लिखी थी। भाभियों ने तो घर में घुसने तक नहीं दिया। चोरी छुपे भाई कुछ मदद कर देते, लेकिन वो बहुत कम थी। ससुराल पक्ष भी कमज़ोर था।

सोचते–सोचते माही ने यही निष्कर्ष निकाला कि सरकार ने तो अपनी और से सही फ़ैसला किया है, औरतों को क़ानूनन जायदाद में हिस्सा देकर। अपने हक का सही प्रयोग करना तो औरतों के हाथ में है। हक की सही परिभाषा भी उन्हें ही तय करनी होगी। बहुत कुछ परिस्थितियों पर भी निर्भर करता है। सुहानी के केस में देखा जाए तो उसे सुधा ग़लत लगी। जब सुधा के पास सब कुछ है तो भाईयों को बेघर करना बिल्कुल ग़लत है। लड़कियों की मायके से कितनी यादें जुड़ी होती हैं। जब अपना हिस्सा ले लिया तो फिर सब ख़त्म, लेकिन अगर उसकी सहेली की माँ के समय ये कानून होता तो उसे इतने दुख न उठाने पड़ते। माही ने निष्कर्ष ये निकाला कि अपने हक की और फ़र्ज़ की सही मायने में परिभाषा तो हालात और ज़रूरतों को देखते हुए स्वयं ही तय करनी चाहिए। सुधा से उसकी भी अच्छी दोस्ती थी। उसने फ़ैसला किया कि वो जाकर उससे बात करेगी कि वो ये सब क्यों कर रही है? आख़िर क्यों अपने प्यारे भाईयों को बेघर करने पर तुली है? शायद कुछ हल निकल आए। यही सोचते–सोचते वो नींद के आग़ोश में चली गई।

■

9

अनमोल तोहफ़ा

आज सुबह से ही वेदांत का दफ़्तर में मन नहीं लग रहा था। न जाने क्यों मूड़ उखड़ा सा था। जब आदमी का मन ठीक न हो तो न चाहते हुए भी किसी न किसी से बिना बात के ही लड़ाई झगड़ा, मन मुटाव सा हो जाता है। दफ़्तर के माहौल में चुप रहना पड़ता है वरना तो गाली–गलौच होते भी देर नहीं लगती। पब्लिक डीलिंग में भी दो तीन लोगों से उलझ गया। एक तो जाता–जाता कह भी गया कि लगता है आज बीवी से लड़कर आया है। दफ़्तर के आसपास के लोग यह सुनकर जब हँस पड़े तो वह खिसियाना सा हो गया। उसके बाद सारा दिन वो चुपचाप अपने काम में लगा रहा मगर मन में तो जैसे ज्वार- भाटा उठ रहा था।

छुट्टी के बाद वो कार उठाकर घर जाने की बजाए जाकर पार्क में बैठ गया। समस्या तो वही जो एक आम मिडिल क्लास परिवार की होती है। इतनी अच्छी उसकी तनख़्वाह, ऊपर से ज्योति भी ट्यूशनस से बीस–पच्चीस हज़ार कमा लेती है, कुल चार जनों का परिवार, फिर भी महीने का आख़री हफ़्ता मुश्किल से निकलता है। हर महीने यही होता है, महीने के पहले हफ़्ते दीवाली और आख़री हफ़्ते कंगाली होती है। समझ में नहीं आता कि आख़िर पैसे जाते कहाँ हैं। अभी तो मकान का किराया नहीं देना होता, लेकिन हर महीने पंद्रह हज़ार बैंक की किस्त तो कटती है। दो साल पहले किराये के मकान का पच्चीस हज़ार किराया था। वो तो माँ ने अपना फ़्लैट ख़रीदने का न केवल सुझाव दिया, बल्कि कुछ ज़मीन बेचकर उसे पचास लाख रूपए भी दिए ताकि वो शहर में अपना फ़्लैट ख़रीद लें और हर दो तीन साल बाद सामान उठाने से मुक्ति मिले।

बड़े शहरों में मकान किराए पर लेने के भी कुछ क़ायदे–कानून होते हैं जो कि छोटे शहरों में या गाँवों क़स्बों में नहीं होते। वेदांत के पापा के पास कोई बहुत ज़्यादा ज़मीन नहीं थी। दादा पड़दादा के समय तो काफ़ी थी, लेकिन बँटते–बँटाते टुकड़े ही रह गए। नई तो किसी ने ख़रीदी नहीं। पुराने समय के लोग तो ज़मीन को माँ का दर्जा देते थे, ज़मीन को बेचना पाप के समान था, जब तक बिल्कुल ही जान पर न बन आए, बहुत ही विपरीत स्थिति न हो, कोई उसे बेचने का सोच भी नहीं सकता था। ज़मीन और सोना ही संपत्ति थी। लोग फालतू खर्च नहीं करते थे और न

ही दिखावा होता था, लेकिन अब परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं। अब तो अंदर से भले खाली हो, बाहर से ऐसे जैसे किसी रियासत से ताल्लुक़ हो।

वेदांत को कई बार हैरानी होती कि पापा प्राईमरी स्कूल के टीचर थे और माँ तो कम पढ़ी–लिखी गृहिणी। दो बहनें और वेदांत, तीन भाई बहन। सबकी पढ़ाई–लिखाई, शादियाँ सब अच्छे से हो गया। तीन साल पहले पापा के स्वर्गवास के बाद माँ जी को फ़ैमिली पैंशन लग गई जो कि बहुत ज़्यादा नहीं है, लेकिन माँ के मुँह से कभी कमी की बात नहीं सुनी। थोड़ी बहुत आमदन ज़मीन से है जो कि बंटाई पर बहुत पहले से ही दी हुई है। वेदांत नौकरी के बाद शुरू से ही शहर में रह रहा है। लगभग पंद्रह साल होने को आए। नौकरी के तीन साल बाद शादी हो गई और दो बच्चे। बड़ी बहन की शादी तो पहले ही हो गई थी, छोटी की उसकी नौकरी लगने के बाद हुई। शादी के बाद तो मानो खर्चे बढ़ गए, पहले भी कहाँ उसने घर पैसे दिए। पिताजी ने एक दो बार कुछ कहने की कोशिश की, लेकिन वेदांत ठहरा माँ का लाडला। माँ ने कहा, कोई बात नहीं, शहर के खर्चे हैं, यही तो दिन हैं मौज़–मस्ती के, शादी के बाद तो घर–गृहस्थी संभालनी ही है।

कुल मिलाकर उसने शादी से पहले तीन साल की कमाई से छोटी बहन की शादी पर एक दस ग्राम की सोने की चेन या फिर घर आते समय माँ के लिए दो चार सूट या बहनों को राखी पर नेग ज़रूर दिया होगा। शादी के बाद तो जैसे सब बदल गया। सारा खर्च माँ–बाप ने किया, सिर्फ़ दुबई का हनीमून उसने प्लान किया वो भी बैंक से कुछ क़र्ज़ लेकर। अक्तूबर में शादी थी, तो नवंबर में पहली दीवाली। एक बार जो बैंक से क़र्ज़ लिया, फिर तो वो दिनचर्या का हिस्सा ही बन गया। क्रेडिट कार्ड के रूप में बैंक वाले ऐसी मीठी गोलियाँ खिलाते हैं कि आदमी उस रस में डूबता ही चला जाता है। कुछ होश नहीं रहती खर्चे की। बड़ी शान से जब चाहें, जहाँ चाहें कार्ड का प्रयोग ऐसे होता है, जैसे सब फरी मिल रहा हो। अक्ल ठिकाने तब आती है जब महीने बाद मोटा बिल सामने आता है और नियत समय पर पेमेंट न हुई तो तगड़ा ब्याज देना पड़ता है। मुसीबत यहीं से शुरू होती है, फिर तो यही सिलसिला रहता है। पिछले पैसे ख़त्म नहीं होते कि नई खरीददारी शुरू हो जाती है।

वेदांत का भी यही हाल था। शादी के बाद खर्चे की गाड़ी ऐसी पटरी से उतरी कि अब तक घिसट रही है। उसकी पत्नी ज्योति अच्छी लड़की थी, मगर खर्चीली थी। 'शॉपिंग मेनिया' कुछ ज़्यादा ही था। आलतू–फालतू की चीज़ों से घर भर लेती। मेकअप के सामान की तो इतनी शौक़ीन की उसे ख़ुद पता नहीं कि उसके पास क्या

है। एक चीज़ तो कभी खरीदी ही नहीं। हर रंग की लिपस्टिक, नेल पॉलिश, मस्कारे, शैंपू न जाने क्या क्या और फिर जल्दी ही इन की एक्सपायरी डेट आ जाती। फिर से नया सामान मंगाती। जब भी फरी होती ऑनलाईन समान देखती और झटपट आर्डर कर देती। पहले पहल तो वेदांत ने नोटिस नहीं किया, लेकिन जब खर्च बस से बाहर हो जाता तो प्यार से टोकता तो घर में अंशाति फैल जाती। कपड़े, मैचिंग जूते न जाने क्या क्या। हर साल, दो साल में घूमने भी ज़रूर जाना है। बच्चों के पढ़ाई के खर्चे। आख़िर कटौती कहां की जाए। साल दो साल में मम्मी–पापा भी एक दो हफ़्ते के लिए आते थे, सब देखते, लेकिन कुछ कहने की हिम्मत न होती।

वो नहीं चाहते थे कि उनके कारण बेटे के घर में क्लेश हो, लेकिन दोनों को बच्चों की बहुत चिंता रहती। उनकी तो सरकारी नौकरी थी, पैंशन लग गई, लेकिन इनका क्या होगा। कोई बचत नहीं। पिताजी ने कई बार समझाना चाहा कि हर महीने कुछ पैसे किसी स्कीम में लगाने चाहिए, बैंकों की, बीमा कंपनियों की ढ़ेरों स्कीमें हैं, लेकिन बेटा टका सा वही जवाब देता कि खर्चे ही पूरे नहीं होते और अगर वो अपने जमाने की बात करते तो जवाब मिलता कि वो जमाना और था। अब आजकल की जनरेशन को कैसे समझाया जाए कि जमाना कितना बदल जाए, नियम ज़रूरतें वही रहती हैं। बचत का महत्व तब भी था, आज भी है और हमेशा रहेगा। बाद में तो उन्होंने शहर आना ही छोड़ दिया था। कुछ तो सेहत खराब रहने लग गई और कुछ उन्हें वहाँ के तौर–तरीके ही पसंद नहीं थे। जब देखो तब बाहर से खाना आ रहा है, छुटटी वाला दिन तो पक्का बाहर ही गुज़रता। कभी नया फ़ोन तो कभी नया टीवी।

पूछो तो टाल जाते या फिर ये जवाब कि आपको कुछ पता नहीं, इस फ़ोन में नए फ़ीचर हैं। पिताजी भले ही पुराने जमाने के थे, मगर नई चीज़ों की भी कुछ न कुछ जानकारी तो थी। उन्हें पढ़ने का बहुत शौक़ था, सब जानते थे कि कम्पनी ने तो कुछ न कुछ लालच देकर अपना सामान बेचना ही होता है। माना कि सब कुछ ग़लत नहीं था, मगर बहुत कुछ ग़लत था। इसी तरह समय गुज़रता गया। पिताजी को ऊपर से बुलावा आ गया। माताजी गाँव में अकेली रह गईं। बेटियाँ आती–जाती मगर सबकी अपनी घर–गृहस्थी थी। वेदांत, ज्योति भी कितना रह पाते। नौकरी, बच्चों का स्कूल, ज्योति का ट्यूशन वर्क। माँ दो तीन बार गई, लेकिन ज़्यादा दिल न लगता। सब अपने में मस्त और बेटा–बहू में अक्सर खर्चे को लेकर किच–किच होती। सब फालतू खर्चे मां को दिखते, लेकिन वो कह न पाती, वैसे भी उसकी सुनता कौन। उसे वहाँ पर कोई तकलीफ़ नहीं थी, लेकिन कोई ज़्यादा पूछता भी नहीं

था। माताजी को रह–रह कर वो समय याद आता कि कैसे उनके जमाने में बुज़ुर्गों की इज्ज़त की जाती थी।

अपने घर के बुज़ुर्गों के साथ–साथ मुहल्ले वालों से भी पैर छूकर आशीर्वाद लिया जाता। अपने हाथों से बना कर गरमा–गरम खाना, चाय, दूध देते। कभी–कभी तो पैर भी दबा देते, लेकिन वो सब तो बीते जमाने की बातें हो गईं। मेड खाना बना देती, कैसरोल में पड़ा है, जिसे खाना हो खा ले, गरम करना है तो माईक्रोवेव में गरम कर ले। नहीं कुछ पसंद तो बाहर से आर्डर कर लो। गाड़ी तो एक ही है। सब अपनी–अपनी कैब बुलाकर चले जाते हैं। किसी को खर्चे की परवाह ही नहीं है। एकाउंटों में पैसे आ जाते हैं, कैश कोई रखता नहीं या बहुत कम। कई तरीके हैं पेमेंट करने के। माना कि सब बढ़िया है, मगर पैर तो चादर देख कर ही पसारने चाहिए।

तभी तो माताजी ने सोचा कि जो भी है, आगे पीछे इन्हीं का है तो उन्होंने थोड़ी ज़मीन बेचकर फ़्लैट खरीद दिया। शायद कुछ खर्चा कम हो जाए, लेकिन जब से फ़्लैट ख़रीदा खर्चे और भी बढ़ गए। उसे सजाने–सँवारने में ही बहुत खर्च हो गया। बात फिर वहीं की वहीं। किराया बंद हुआ तो किश्त शुरू हो गई। कुछ फ़र्क तो पड़ा, लेकिन खर्चे और बढ़ा लिए। अब नए घर में पुराना सामान कैसे रखा जाए। आख़िर बचत हो कैसे, जब ख़र्चों पर कंट्रोल ही नहीं है। पिताजी की मृत्यु के बाद दो साल दीवाली, होली पर वेदांत परिवार सहित गाँव चले जाते। बच्चों का मन तो न होता, परंतु जाना पड़ता। इस बार बच्चों ने दीवाली पर गाँव जाने से साफ़ मना कर दिया, साथ ही पिछले दो साल दीवाली पर जो नहीं ख़रीद पाए उसकी लिस्ट भी सामने रख दी। वेदांत ज्योति का प्यार–रोमांस न जाने कहाँ उड़ चुका था। गृहस्थी के चक्कर में बुरी तरह उलझ चुके थे। आमदन तो बढ़ने से रही, ख़र्चों में ही कटौती करनी होगी।

वेदांत, ज्योति ने थोड़ी कोशिश शुरू तो की, लेकिन वो नाकाफ़ी थी। दरअसल बचत की आदत ही नहीं थी। दीवाली में कुल एक हफ़्ता ही बचा था। बाजार सज गए । बच्चों का उत्साह चरम पर था। पिछले दो साल एक तो करोना ऊपर से गाँव चले जाना, भला दीवाली क्या हुई। वेदांत सोच रहा था कि अगर वो गाँव नहीं जा सके तो माँ को ही यही बुला लेते हैं। ज्योति का सास से कोई मनमुटाव नहीं था, बल्कि दोनों के रिश्ते अच्छे थे, परन्तु ख़र्चों की परेशानी के मारे उसकी तबियत भी अब ख़राब रहने लगी थी और अगर सेहत ठीक न हो तो मन कहाँ से

ठीक होगा। वो नहीं चाहती थी कि सास इस बार दीवाली पर यहाँ हो, लेकिन अगले ही दिन बिना फ़ोन किए माताजी को देख सब हैरान रह गए। गाँव से कोई रिश्तेदार शहर आ रहा था तो माताजी भी साथ ही गाड़ी में बैठ गईं। माँ से मिलकर सब खुश हुए। माताजी की अनुभवी आँखें घर के माहौल को आते ही पहचान गईं। पता तो उन्हें सब था कि परेशानी का कारण क्या है, लेकिन आज के जमाने में बच्चों को कुछ समझाना आसान नहीं।

साईंस ने तरक्क़ी तो बहुत कर ली, लेकिन नुकसान कम लोगों को ही दिखते हैं। ख़रीददारी के सामान की लिस्टें, कपड़े, पटाखे, लड़ियाँ और न जाने क्या क्या। माताजी दो दिन से यही देख रही थी। रात में जब फ़ुर्सत से वेदांत उनके पास आया तो माँ–बेटा बातें करने लगे। परेशानी की लकीरें उसके चेहरे पर साफ़ झलक रही थी। माँ ने पूछा, सब ठीक तो है। 'हां' में सिर हिलाकर वो पास ही लेट गया। अब माँ तो माँ थी, पूछे बिना कैसे रहती। वैसे भी वो गाँव से कुछ सोच कर ही आई थी। माँ की थोड़ी सी सहानुभूति से ही उसने सब बता दिया कि कैसे उन्होंने किस्तों पर सारा सामन ख़रीदा और न जाने कैसे–कैसे अनाप–शनाप ख़र्चों की आदत पड़ चुकी है। वो दोनों तो बहुत कोशिश करते हैं, लेकिन बच्चे माने तब ना। अब उनकी आदतें बिगड़ चुकी हैं। थोड़ी देर में ज्योति भी वहाँ पहुँच गई। माँ ने कहा कि अगर वो उसकी बात माने तो धीरे–धीरे स्थिति सुधर सकती है। कहना कुछ नहीं, करके दिखाना है। कोई और समय होता तो ज्योति नखरे दिखाती, लेकिन इस समय हालात से वो थक चुकी थी। कोई बहुत बड़े क़र्ज़ नहीं थे, बस उधार की आदत जिसे माडर्न भाषा में 'क्रेडिट कार्ड' और 'किश्त पुरान' कहा जाता है वो ही नहीं ख़त्म हो रही थी।

अगले दिन ख़रीददारी तो हुई, लेकिन माँ ने अपने डेबिट कार्ड का प्रयोग किया। वेदांत ज्योति ने बहुत मना किया मगर माँ नहीं मानी। सब ख़रीदा, लेकिन कम मात्रा में। कुछ मिठाइयाँ घर पर बनी। बच्चों को समझाया कि कैसे पटाखे प्रदूषण फैलाते हैं, चाईनीज़ सामान बिल्कुल नहीं ख़रीदना। बिजली की लड़ियों की जगह पारम्परिक दिए जलाए, माँ लक्ष्मी का पूजन किया। फालतू के गिफ़्ट यहाँ–वहाँ बाँटना फ़िज़ूल है, कोई काम की चीज़ नहीं होती। शुभकामनाएँ देना ही काफ़ी है। मन से सब परेशान हैं, लेकिन पहल करने की हिम्मत कोई नहीं करता। पहली बार माँ वेदांत के पास लगातार छः महीने रही। बिना कुछ ज़्यादा किए बहुत कुछ बदल चुका था। बाहर से खाना मंगवाना, मोबाईल बिल, पैट्रौल, बिजली खर्च, फालतू

ख़रीददारी ऐसे बहुत से खर्चे पता ही नहीं चला कब कम होते चले गऐ। बस थोड़ी मेहनत और समझदारी से काम लिया। माँ ने वापिस गाँव जाने की तैयारी कर ली थी। कोई नहीं चाहता था कि माँ वापिस जाए, क्योंकि बहुत कुछ बदल गया था। सब समझ गए थे कि कैसे सूझबूझ से जमाने के साथ चला जा सकता है।

किसी को नहीं बदल सकते, लेकिन सूझबूझ भी बहुत मायने रखती है। अपनी बचत ही काम आती है। माँ की मदद और सयानप और सीख से घर का नक्शा ही बदल गया। लिए गए सामान की किस्तें तो भरनी ही थी, लेकिन आगे से तौबा कर ली। वही तनख़्वाह थी, सब वही था मगर थोड़ी आदतें बदलने से सब पटरी पर आ गया। वेदांत ने तो ये भी सोच रखा था कि जब भी थोड़े हालात ठीक हो गए, माँ से लिए पैसे उनके अकाऊंट में डाल देगा। दूसरों को देखकर अपना घर उजाड़ना और अपनी नींद उड़ाना कहाँ की समझदारी है और बच्चे तो अभी कच्ची मिट्टी के समान हैं, जैसे चाहो ढाल लो और आगे चलकर अच्छी आदतें भी उनके ही काम आएंगी। दीवाली पर माँ से जो इस प्रकार का तोहफ़ा मिला वह सबके लिए अनमोल था। पैसा तो आता–जाता रता है, लेकिन सूझबूझ, आदतें, समझदारी तो जीवन भर साथ रहती हैं।

■

10

सही सोच

"आज बहुत देर कर दी सैर से लौटते हुए, कब से नाश्ता बना कर रखा है", रेखा ने नाश्ता परोसते हुए पति मानव से कहा। बस वैसे ही, थोड़ी देर राजीव जी के पास खड़ा था रास्ते में। शायद तुमने ध्यान नहीं दिया, वो जो सात नं. वाला घर है हमारी गली में एक मंज़िला, उसकी ऊपरी मंज़िल बननी शुरू हो गई। चलो अच्छा है ना। सारे घर एक से सुंदर लगेंगे और छत पर सैर करनी भी आसान होगी। पूरी दस घरों वाली गली में वो एक घर ही एक मंज़िल का था, बाक़ी सब दो मंज़िले और किसी–किसी ने तो एक, दो कमरे तीसरी पर भी डाले हुए थे। सब की अपनी–अपनी ज़रूरतें और आर्थिक स्थिति होती है, मगर अच्छे लोग वही होते हैं जो दूसरों की खुशी में भी खुशी मनाते हैं। अपनी खुशी तो हर कोई मनाता है। ख़ुशक़िस्मती से रेखा का मुहल्ला काफ़ी अच्छा था। किरायेदारों को मिला कर तीस पैंतीस परिवार होंगे। सब आपस में मिलजुल कर रहते। दुःख–सुख में एक दूसरे का साथ देते।

खाना तो हर किसी ने अपना–अपना ही होता है, लेकिन मुसीबत में अगर कोई सहारा मिल जाए और खुशी को बाँटने का मौका मिल जाए तो समय अच्छा गुज़र जाता है। तभी तो कहते हैं कि पड़ोसी अच्छा हो तो बहुत सी मुसीबतें टल जाती हैं। वैसे भी किसी मुश्किल घड़ी में रिश्तेदार या घर वाले तो बाद में पहुँचते हैं, पड़ोसी पहले पहुँच जाते हैं। आजकल वैसे भी आधुनिक सुख–सुविधाओं के चलते दुनिया बहुत छोटी हो गई है, कोई विदेश में रह रहा है तो कोई भारत में ही किसी दूसरे शहर में पढ़ रहे हैं या नौकरी, बिजनेस वगैरह कर रहे हैं। संयुक्त परिवार व्यवस्था भी नाममात्र की रह गई है। लोग अकेले रहना ज़्यादा पसंद करते हैं। 'प्राईवेसी' का चलन कुछ ज़्यादा ही हो गया है, लेकिन सब ठीक चलता रहे तो सब ठीक है। अगर मुश्किल घड़ी जैसे कि बीमारी या और भी कई तरह की समस्याएँ चलती रहती हैं, उस समय फिर अपने ही साथ देते हैं।

बात चल रही थी रेखा, मानव के मुहल्ले की। राजीव और मीना के मकान की सिर्फ़ एक मंज़िल ही बनी हुई थी। राजीव मिलिट्री में नौकरी करते थे। दो बेटियाँ थी। मीना की भी सरकारी स्कूल में टीचर की नौकरी थी। समय के साथ दोनों रिटायर हो गए। दोनों बेटियों को शादी के बाद आस्ट्रेलिया जाना पड़ गया। एक की

शादी तो भारत में ही हुई, लेकिन पति को कम्पनी ने कुछ समय बाद ही बाहर भेज दिया। दूसरी के लिए रिश्ता वहीं पर ही मिल गया। राजीव और मीना अकेले ही रहते थे। राजीव की मिलिट्री की नौकरी के कारण मीना पहले भी बेटियों के साथ ही रहती थी। पति की पोस्टिंग तो न जाने कहाँ–कहाँ होती रही है। नौकरी के बाद मीना का समय किट्टी पार्टियों में अच्छा निकल जाता। रेखा, मीना के इलावा मुहल्ले की और भी औरतें किट्टी पार्टियों में बिज़ी रहती। मिलने–जुलने के इलावा मुहल्ले की समस्याओं का पता भी चलता रहता और गपशप भी हो जाती।

कितने भी अच्छे हों, मगर हैं तो हम इन्सान ही। भले ही आजकल दूसरों की बातों में पुराने समय की तरह बातों में दख़ल नहीं दिया जाता, मगर कानाफूसी तो हो ही जाती है। जल्दी ही मुहल्ले में यह बात फैल गई कि ऊपर वाली मंज़िल राजीव के समधी बनवा रहे हैं। बड़े शहरों में छतें बेचना अब कोई नई बात नहीं है। नीचे कोई है तो ऊपर कोई और रह रहा है। सरकार से भी कई जगह इजाज़त मिलनी शुरू हो गई है, लेकिन राजीव की बड़ी बेटी के ससुर मोहित का ऊपर घर बनवा कर रहना लोगों को कुछ हज़म नहीं हो रहा था। सब जानते हैं कि समधियाने के रिश्ते बड़े नाज़ुक होते हैं। थोड़ी दूरी बनी रहे, तो ही ठीक है, लेकिन कोई क्या कर सकता है। पूछ तो सकते नहीं, आपस में ही बात करके मन को शांत करने के इलावा कोई चारा नहीं था। राजीव के समधी मोहित के दो बच्चे थे। बेटे की शादी राजीव की बेटी से हुई और वो दोनों आस्ट्रेलिया में थे और बेटी वहीं देहली में ही थी। नौकरी के दौरान उनके पास सरकारी क्वार्टर रहा और अब दोनों समधियों में कुछ तो फैसला हुआ जो वो वहीं पर आकर रहेंगे।

मकान बनता रहा, धीरे–धीरे लोगों की दिलचस्पी भी कम होती गई। वैसे भी एकदम से बात फ़ैलती है फिर जब सामने से कोई ध्यान न दे तो हर कोई चुप हो जाता है। देखा जाए तो इतनी फ़र्सत भी किसके पास होती है कि दूसरों की बात में टाँग अड़ाता रहे। सात–आठ महीने में मकान बन कर तैयार हो गया। बहुत ख़ूबसूरती से सजाया गया। राजीव ने भी नीचे वाले भाग की मुरम्मत करवा कर रंग–रोगन करवा दिया। मोहित परिवार ने शिफ़्ट करने से पहले धार्मिक अनुष्ठान किया और सारे मुहल्ले का प्रीति भोज किया। उस समय दोनों परिवारों के बच्चे आए हुए थे। कुछ समय बाद सब चले गए। नीचे वाले तल पर राजीव और मीना और ऊपर वाले तल पर मोहित और रैना हँसी–खुशी रहने लगे। राजीव की दोनों बेटियाँ बाहर, जबकि एक तो मोहित की बहू ही थी। मोहित की बेटी कभी–कभार अपने दोनों

बच्चों के साथ आती तो जैसे घर में बहार आ जाती। दोनों समधियों में बहुत प्यार देखने को मिलता। चारों लगभग एक ही गाड़ी में निकलते। कुछ लोग खुश होते तो कुछ को थोड़ी जलन भी होती। कुछ महीनों बाद मीना को आस्ट्रेलिया जाना पड़ गया, क्योंकि बेटी प्रैगनैंट थी। राजीव साथ नहीं गया वह प्राईवेट फ़र्म में नौकरी करता था। मीना के जाने के बाद भी राजीव को कोई तकलीफ़ नहीं हुई, क्योंकि उसके खाने–पीने का ध्यान मोहित और रैना बख़ूबी रखते थे। घर के काम के लिए नौकरानी पहले से ही रखी हुई थी। बेटी के घर बेटा पैदा होने की खुशी दोनों परिवारों ने मिलकर मनाई। आख़िर दोनों का रिश्ता था। मीना के वीजे की म्याद ख़त्म होने से पहले ही मोहित और रैना अपने पोते की देखभाल के लिए चले गए।

विदेशों में बच्चों के साथ नौकरी करने के भी कुछ क़ायदे कानून हैं। राजीव की दूसरी बेटी भी वहीं पर थी। दोनों बहनों का घर एक ही शहर में था। उसके एक बेटी थी। ससुराल में कोई पास आकर रहने वाला नहीं था, और उसका मन बच्चों को ज़्यादा देर कहीं बाहर छोड़ने को नहीं होता था। जब मोहित और रैना वहाँ पर आए तो अपने पोते की देखभाल के साथ बहू की बहन की बेटी का भी ध्यान रखने लगे। बहू को भी अपने काम के लिए समय मिल जाता। वो अभी बाहर तो नहीं जाती थी, मगर ऑनलाईन काम कर लेती थी। विदेशों में जितनी आमदन है, खर्चे भी उसी हिसाब से हैं और सहूलतें भी वैसी हैं, लेकिन वहाँ पर भारत की तरह घरेलू नौकर नहीं मिलते और अगर मिलते भी हैं तो इतने महँगे कि उन्हें अफोर्ड करना बहुत मुश्किल है। मोहित, रैना बाहर थे, राजीव मीना भारत में थे। घर की भी देखभाल अच्छे से हो रही थी, लेकिन कहते हैं न कि मुसीबतें कह कर नहीं आतीं। मोहित, रैना की बेटी सारा वहीं देहली में थी, उसके पति निखिल का बहुत बुरी तरह से ऐक्सीडैंट हो गया। ससुराल से सारा की काफ़ी बड़ी उम्र की सास थी जो कि ज़्यादा चल–फिर नहीं सकती थी। एक ननद थी, जो आई, लेकिन सबका अपना घर परिवार। आख़िर कोई कब तक रह सकता है।

निखिल का बाल–बाल बचाव हुआ, लेकिन टाँग में काफ़ी चोट आई। महीना भर तो हस्पताल में ही रहना पड़ा। सारा के दो छोटे बच्चे, नौकरी, बीमार सास, बेचारी क्या–क्या करती, लेकिन राजीव, मीना ने उसे बहुत सहारा दिया। जब वो हस्पताल रहा, तब भी और जब घर आ गया तब भी। मीना तो कई बार उसके पास रात को भी रह जाती थी। दिन तो निकल ही जाते हैं, लेकिन अगर अपनों का साथ हो तो पता ही नहीं चलता। कुछ समय बाद मोहित आ गया, लेकिन बच्चों के पास

रैना थी। यहां पर आकर मोहित ने बेटी दामाद को संभाला और अपने घर की भी, खाने पीने की भी कोई चिंता नहीं क्योंकि राजीव और मीना थे ही। इसी तरह बारी–बारी से सब लोग आते–जाते रहते और देखा जाए तो पाँच घरों का काम आराम से चल रहा था। इसी बीच जब एक बार मीना गई हुई थी तो राजीव जी नहीं गए थे। राजीव को निमोनिया हो गया और काफ़ी तेज़। एक दम से मीना का आना संभव नहीं था तो मोहित परिवार ने ही उनकी सेवा की और उन्हें अपनों की बिल्कुल भी कमी महसूस नहीं होने दी।

कितना भी किसी को न बताया जाए, मगर कुछ पूरी, कुछ अधूरी ख़बरें यहाँ–वहाँ फ़ैल ही जाती हैं और फिर रेखा के इस मुहल्ले में तो काफ़ी लोग बहुत समय से रह रहे थे। वो लोग जिन्हें इन दो समधियों का एक ही घर में नीचे, ऊपर की मंज़िल पर रहना बहुत अजीब सा लगा था, वही अब इन दोनों परिवारों की तारीफ़ करते नहीं थकते थे। सबकी समझ में ये बात आ गई थी कि पहले जमाने की बात और थी, जब लोगों के आठ, दस, बारह बच्चे भी होते थे। फिर चार–पाँच का जमाना और अब तो एक या दो। जब परिवार ही इतने सिमट गए हैं तो किसे अपना कहा जाए और जब बेटियों को बराबर के अधिकार मिल गए हैं तो कर्तव्य भी तो बराबर के हुए। अब अगर किसी की एक बेटी है और दूसरे का एक ही बेटा है तो दोनों के माँ–बाप को उन्हीं की आस है। तो समय आ गया है कि सोच बदली जाए। मौका मिले तो मिल–जुल कर रहने में कोई बुराई नहीं।

दिंसबर में मीना की दोनों बेटियाँ आस्ट्रेलिया से आई। दोनों के बच्चे पहली बार ननिहाल आए थे, तो जश्न तो बनता ही था। सारा भी अपने परिवार के साथ आ गई। उसकी सास जो बैड पर ही थी, उसे भी स्पैशल तौर पर बुलाया गया। इतना सम्मान और प्यार देख कर तो जैसे उसकी बीमारी आधी हो गई। सबने क्रिस्मस और नया साल मिलकर मनाया। एक जश्न सब मुहल्ले वालों ने भी मिलकर किया। मीना की बेटियों ने सबको बाहर से लाया हुआ कुछ न कुछ तोहफ़ा दिया। जिस दिन दोनों बेटियों की फ़्लाइट थी, सब उनसे मिलने आए और कुछ न कुछ भेंट किया। आख़िर रिवाज के मुताबिक हम आज भी बेटियों को खाली हाथ विदा नहीं करते। पता ही नहीं चल रहा था कि कौन अपना कौन पराया। सब अपने लग रहे थे। अब सबको लग रहा था कि इन दोनों परिवारों का फ़ैसला और सोच बिल्कुल सही है और आज के समय की माँग भी यही है।

■

11

मिट्ठू की लोहड़ी

रिनी और मिनी दोनों बहनें आज बहुत खुश थी। रिनी दस साल की थी और मिनी तीन साल की । उनका छोटा भाई मिट्ठू तो सिर्फ़ दस महीने का था। वैसे तो खुशी की वजह लोहड़ी का त्यौहार भी था, लेकिन उससे ज़्यादा खुशी थी मिट्ठू की पहली लोहड़ी की। जैसा कि हमारे देश में कई जगह और ख़ास तौर पर पंजाब में लड़कों के जन्म के बाद और शादी के बाद पहली लोहड़ी अत्यंत धूमधाम से मनाई जाती है। कई तो होटलों में और कुछ लोग घर में ही अपनी–अपनी सामर्थ्य के अनुसार खाने–पीने का और विशेष तौर पर नाच–गाने का इंतज़ाम करते हैं। ढ़ोली की थाप और हल्की सर्दी में रेवड़ी, मूँगफली, गच्चक, भुगा के अलावा और भी बहुत सा खाने का सामान और सबसे बड़ी बात जलती लकड़ियों का सेक। पुराने समय में तो चूल्हें में लकड़ियाँ ही जलाई जाती थी, लेकिन समय बदलने के साथ बहुत कुछ बदल गया है। गाँवों में तो फिर भी कहीं–कहीं चूल्हे जलते होगें, वरना तो गैस का ही चलन है।

सर्दी के मौसम में जो मज़ा आग के पास बैठने का है, वो हीटर में नहीं। कई बच्चों ने तो इस प्रकार से आग जलती भी कम ही देखी होगी। रिनी को तो फिर भी कुछ–कुछ पता था, लेकिन छोटी मिनी के लिए कौतूहल था। वो तो लोहड़ी के आस–पास ही घूम रही थी। शाम से ही रिनी के घर में मेहमान आने शुरू हो गए थे। दोनों बुआ तो तीन दिन से ही यहीं पर थी। मिनी के ननिहाल से भी लोग आ रहे थे। गली–मुहल्ले के इलावा और भी कई लोकल, दूर–पास के रिश्तेदार और मित्र वगैरह भी बुलाए गए थे। घर के पास ही टेंट लगा था, जहाँ पर रात के खाने की तैयारी चल रही थी। ऐसे माहौल का आनंद तो सभी उठाते हैं, मगर बच्चों को तो विशेष खुशी होती है। रिनी की मम्मी यानि कि साक्षी नन्हें मिट्ठू को तैयार कर रही थी। बहुत प्यारी ड्रैस थी उसकी, भांगड़ा टाईप की। आजकल सब बना–बनाया मिलता है। मिट्ठू था भी बहुत सुंदर, प्यारा सा बच्चा, काले घने बालों में चमकता प्यारा सा मुखड़ा । साक्षी उसकी सुंदर सी छवि पर बलिहारी हो रही थी। कहीं उसी की नज़र न लग जाए, तो उसने माथे के कोने में काला टीका लगा दिया।

रिनी उसके पास ही खड़ी थी और भाई को तैयार करने में माँ की मदद भी कर रही थी। तभी रिनी को न जाने क्या सूझी कि उसने कहा, मम्मी मेरे मन में एक बात आ रही है, कुछ पुछूं? हाँ–हाँ बेटा क्यों नहीं, पूछो क्या पूछना चाहती हो। रिनी ने धीरे से कहा, मम्मी मुझे अपना तो याद नहीं, मगर मिनी का थोड़ा–थोड़ा याद है। क्या हमने मिनी की लोहड़ी भी इसी तरह मनाई थी, मुझे तो नहीं लगता। ऐसी लोहड़ी तो हम पहली बार मना रहें हैं। और मेरी भी क्या? कोई फ़ोटो तो है नहीं, जबकि हमारे बचपन की और कितनी तस्वीरें हैं? साक्षी तो कुछ देर रिनी का मुँह ताकती रह गई, उसे कोई जवाब ही नहीं सूझ रहा था। उसने तो सपने में भी नहीं सोचा था कि उसे ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ेगा। साक्षी पढ़ी–लिखी, नौकरी करती थी। उसके पति देवांश भी अच्छी नौकरी पर थे। देवर, ननद, मायका सब पढ़ा–लिखा परिवार, लेकिन मान्यताएँ कुछ–कुछ वही पुरानी।

रिनी, मिनी दोनों बेटियों से सबको बहुत प्यार था। हम कितने भी प्रगतिशील हो जाए, लेकिन कहीं न कहीं सोच तो पुरानी है ही। साक्षी को याद है कि जब रिनी के जन्म की ख़बर मिली तो एक बार तो सबके चेहरे पर उदासी सी थी, भले ही अगले ही पल सब सँभल गए। उसकी माँ और सास दोनों थी वहीं पर। माँ तो कुछ नहीं बोली पर सास ने ये कहा था कि चलो 'लक्ष्मी' आई है। बेटा, बेटी दोनों ही प्यारे हैं और तो कुछ नहीं मगर अगर पहली बार बेटा हो जाए तो आगे की चिंता नहीं रहती। धीरे–धीरे रिनी ने अपनी बाल सुलभ हरकतों से सबका मन मोह लिया था। सब उससे बहुत दुलार करते थे, लेकिन उसकी खुशी इस तरह नहीं मनाई जिस तरह का स्वागत मिट्ठू का हुआ है। तब कोई लड्डू नहीं बाँटे, न ही किसी ने बधाई दी। साक्षी ने अपने स्कूल में सहयोगियों को छोटी सी पार्टी ज़रूर दी थी, वो भी उनके कई बार माँगने पर।

मिनी के जन्म के समय तो वो मायके में आ गई थी। कहीं न कहीं सबके मन में ये था कि शायद जगह बदलने से कुछ अच्छा हो जाए। मिनी के जन्म के समय देवांश वहाँ नहीं थे, हफ़्ते बाद आकर मिनी को देखा था। काम का बहाना बना दिया था, ससुराल से भी कोई नहीं आया था। बहानों का क्या है, जितने मर्ज़ी बना लो। लेकिन कहते हैं न कि बच्चे अपने आप ही प्यार लेते हैं। धीरे–धीरे मिनी ने भी सबका मन मोह लिया। सब ठीक चल रहा था। आजकल वैसे भी दो बच्चों की परवरिश करना ही मुश्किल है, लेकिन घर में जैसे एक ख़ालीपन सबको लगता था। कहीं न कहीं साक्षी के मन में भी पुत्र लालसा थी। देवांश की बातें दो–तरफ़ा सी

होती। वो ये भी कहता कि आजकल बेटियाँ कहाँ बेटों से कम हैं। हमें तो ये दोनों काफ़ी हैं। इन्हें ही खूब पढ़ाएंगे। लड़कियां हर फ़ील्ड में नाम कमा रही हैं, लेकिन कभी थोड़ा सा उदास भी हो जाता और कहता कि वंश तो बेटों से ही चलता है, बुढ़ापे का सहारा तो बेटे ही बनते हैं। लडकियां तो अपने घर चली जाएंगी। उनका अपना परिवार होगा, वो हमें संभालेगी या अपने परिवार को। साक्षी की सास भी पढ़ी–लिखी उच्च विचारों वाली थी, लेकिन वो भी अक्सर कहती कि एक और चांस लेना चाहिए।

साक्षी ख़ुद नहीं समझ पाई थी कि आख़िर वो भी क्या चाहती है। बढ़ती महंगाई, काम का बोझ, ऊपर से नौकरी, बच्चों की परवरिश करना कौनसा आसान है, मगर फिर भी दिल का कोई कोना खाली लगता। अभी वो कुछ निश्चित नहीं कर पाए थे कि मिट्ठू के आगमन की ख़बर आ गई। इस बार घर का माहौल बिल्कुल अलग। कभी सोचते कि 'बच्चे दो ही अच्छे' । कभी सोचते कि टैस्ट कराया जाए, जो कि इतना आसान नहीं था और फिर साक्षी तो इसके लिए बिल्कुल भी तैयार नहीं थी। सास की इच्छा तो थी कि चोरी छुपे टैस्ट करवा ही लिया जाए परंतु अगर लड़की हुई तो 'भ्रूण हत्या' जैसे महापाप के लिए कोई भी तैयार नहीं था। इसी उहापोह में दिन निकलते गए। साक्षी तो दिन–रात विचारों के बवंडर में ही घिरी रहती। कुछ दिन छुट्टी पर रही, लेकिन फिर जाना शुरू कर दिया। वहाँ जाकर कुछ देर के लिए ही सही इस सब को भूलकर काम में खो जाती, मगर खाली बैठते ही फिर वही ध्यान। उसने तो ढंग से खाना–पीना भी छोड़ दिया था, जबकि उसे सही डाईट की ज़रूरत थी। समय–समय पर देवांश ही उसे डॉक्टर के पास ले जाता।

साक्षी की सास के दिल में पोते की चाह ज़रूर थी, लेकिन उसे साक्षी की भी बहुत चिंता थी। वो ही उसके खाने–पीने का ध्यान रखती। फ़ल वगैरह काटकर उसके सामने रखती और भी खाने–पीने का सामान मनुहार से, ज़बरदस्ती उसे खिलाती। देवांश इस बारे में ज़्यादा बात नहीं करता, परंतु साक्षी को हौसला देता कि कोई बात नहीं जो ऊपर वाले की इच्छा। समय तो बीत ही जाता है। मिट्ठू के जन्म की खुशी तो सबके चेहरे पर देखती ही बनती थी। हस्पताल में सबको मिठाई, पैसे बाँटे। किन्नर भी जब बधाई लेने आए तो साक्षी की सास ने बहुत कुछ दिया, खुशी के मारे अपनी सोने की अगूंठी भी उतार कर दे दी, परंतु उस समय किसी को बुलाया नहीं। साक्षी के मायके वाले और ननदें हो गई थी। साक्षी बहुत कमज़ोर थी, तो यही सोचा गया कि कोई बड़ा प्रोग्राम बच्चे के जन्मदिन पर करेंगे, परंतु जब

लोहड़ी आ गई तो उसे ही सबके साथ धूमधाम से मनाने का फैसला हुआ। ऐसा नहीं कि मिट्ठू के आने के बाद रिनी, मिनी को प्यार नहीं मिला। सब उन्हें प्यार करते। उन्हें कभी भी ऐसा महसूस नहीं हुआ कि उनको प्यार नहीं मिल रहा या सब मिट्ठू का ध्यान रख रहे हैं, बल्कि वो दोनों भी छोटे भाई को खूब प्यार करती।

मिनी तो उसके आसपास ही रहती, उससे बातें करती, मिट्ठू ने तो क्या बोलना था, वो ख़ुद ही जवाब–सवाल करती रहती। कभी उसके पास अपने खिलौने ले आती तो कभी खाने का सामान। उसे कई बार समझाया गया कि अभी वो छोटा है, ये सब नहीं पता उसे, पर वो कहाँ मानती। उसे तो जल्दी पड़ी रहती कि वो कब बड़ा हो और उसके साथ खेले। साक्षी की सास की सेहत काफ़ी ठीक थी, ससुर तो बहुत पहले चल बसे थे। वो सब का ध्यान रखती। साक्षी के नौकरी पर चले जाने के बाद बच्चों की पूरी ज़िम्मेदारी वो खुशी–खुशी संभालती। मिट्ठू में तो जैसे उसकी जान बसती थी। साथ ही साथ वो रिनी, मिनी का भी बहुत ध्यान रखती थी। एक और बड़ा बेटा था उसका जो कि दूसरे शहर में रहता था पहले वो कभी–कभी वहाँ चली जाती थी, मगर मिट्ठू के जन्म के बाद वो कहीं नहीं गई, बेटियों के पास भी नहीं। मिट्ठू उसका इकलौता पोता था, क्योंकि बड़े बेटे के भी एक ही बेटी थी। नाती तो थे, बहुत प्यारे थे उसे, लेकिन मिट्ठू तो अपने वंश का था।

हालांकि काम बहुत पड़ा था मगर रिनी के एक छोटे से सवाल ने साक्षी को सोचने पर मजबूर कर दिया कि आख़िर भूल कहाँ पर हुई, जबकि उन सबके मन में ऐसा कुछ नहीं था। कितना अच्छा होता कि अगर उसने रिनी मिनी की पहली लोहड़ी मनाई होती या किन्नरों को नेग दिया होता। कहने का भाव ये कि अगर हम दोनों को ही बराबर का प्यार करते हैं तो भेद भाव किस लिए। कुछ चीज़ें दिखानी भी पड़ती हैं, ताकि प्यार का अहसास हो। उसे इस बात की भी ग्लानि हो आई कि वो मिट्ठू के आने से पहले इतनी परेशान क्यों रही । बच्चे तो भगवान की अनमोल बख़्शीश हैं, जिनसे घर आँगन महकता है। लड़का हो या लड़की क्या फ़र्क पड़ता है। ज़रूरत है तो सोच बदलने की। अगर सब लड़के इतने ही आज्ञाकारी होते तो वृद्ध आश्रम क्यों होते और लड़कियों से ही तो वंश बढ़ता है। मरने के बाद लड़कों को ही मुखाग्नि देनी चाहिए ताकि गति हो, तो दूसरी दुनिया किसने देखी है। मरने के बाद कौन कहां गया या क्या होता है, किसी को नहीं पता। साक्षी को अपने व्यवहार में कुछ कमी लगी, लेकिन फिर उसे ये भी लगा कि ऐसी बातों के लिए सोच, समाज, परिवार हमारा यहाँ–वहाँ का वातावरण बहुत सी चीज़ें ज़िम्मेदार हैं। चलो हम दूसरे को तो

नहीं बदल सकते, ख़ुद से शुरूआत तो कर सकते हैं। लोहड़ी पूजते समय पहले उसने रिनी, मिनी से पूजन करवाया और फिर मिट्ठू से । वहाँ बैठे लोगों से भी आग्रह किया कि बेटों के साथ–साथ बेटी की भी पहली लोहड़ी मनाने की परम्परा करें। बेटियों की तरक्क़ी के लिए और भी बहुत कुछ करने की ज़रूरत है, मगर जहाँ से शुरूआत हो सके वहीं से की जाए। बदलाव की ज़रूरत तो पल–पल है। साक्षी का मन अब कुछ हल्का था।

■

12

हैप्पी! वैलेंटाइन डे

पाखी कई दिनों से बाज़ार जाने की सोच रही थी, लेकिन कभी कोई काम आ गया तो कभी कोई मेहमान आ गया। कभी ख़ुद की तबियत ठीक नहीं तो कभी पतिदेव को साथ जाने की फ़ुर्सत नहीं। आख़िर एक दिन वो अकेली ही निकल पड़ी गाड़ी उठाकर मार्किट की तरफ़। इंतज़ार करने की भी हद होती है। घर में कई ज़रूरी चीज़ें ख़त्म थी। माना कि आजकल ऑनलाइन या फ़ोन पर सब हाज़िर है, पर कुछ चीज़ें देख–परख कर, हाथ में लेकर ही पसंद की जाती हैं। वैसे भी पाखी को ख़ुद जाकर शॉपिंग करना ही ज़्यादा पसंद था। एक बार उसने ऑनलाईन चादरों का जोड़ा मँगवाया, लेकिन जब खोलकर देखा तो उसे ज़रा भी पसंद नहीं आया। स्क्रीन पर दिखने वाले कपड़े और उसके रंग में और सामने पड़ी चादर में ज़मीन आसमान का अंतर था। वापिस भेज कर और मँगवाया, लेकिन बात नहीं बनी। दो तीन बार और भी कुछ ऐसा ही हुआ। अब तो पाखी ने जैसे प्रण ही कर लिया कि वो इस झंझट में पड़ेगी ही नहीं। दुकान पर जाओ और देख–परख कर चीज़ लो। अपने काम के लिए समय तो निकालना ही पड़ता है।

साथ चलने के लिए किसी सहेली का भी कितना इंतज़ार किया जाए। वैसे कोई साथ हो तो शॉपिंग करने में मज़ा तो बहुत आता है और चीज़ पसंद करने में भी आसानी रहती है। तभी तो कहते हैं कि एक से भले दो, मगर आज लोगों के पास समय को छोड़कर सब कुछ है। जब कभी पाखी की बहन सारा देहली से आती है या वो वहाँ जाती है तो पाखी खूब शॉपिंग करती है, लेकिन ऐसा मौका मुश्किल से साल में एक दो बार ही मिलता था। चलो जैसा मौका मिले वैसा ही करो, तभी तो आज वो अकेली ही निकल पड़ी। अपनी तैयार की हुई लिस्ट देखकर सारा सामान ख़रीद लिया, तो उसके मन को बहुत तसल्ली हुई। पाखी की शुरू से आदत है कि उसे किचन में सारा सामान चाहिए, ये नहीं कि मौक़े पर कोई चीज़ ख़त्म मिले। मेहमानों के सामने कुछ भी मंगवाना उसे क़तई पसंद नहीं था।

वो वापिस जा ही रही थी कि रास्ते में जूतों का नया शोरूम देख कर उसे नए सैंडिल लेने का मन कर आया। जूते तो उसके पास बहुत थे, लेकिन मैचिंग जूते तो जैसे उसकी कमज़ोरी थी। शोरूम में तरह–तरह के सजे जूते देखकर वो ख़ुद को

रोक नहीं पाई और घुस गई दुकान में। काफ़ी लोग थे अंदर, वो भी शोकेस में सजे लेडीज़ सैंडिल देखने लगी। तभी एक सेल्ज़मैन लपककर उसके पास आया और उसकी पसंद पूछी, उसका साईज़ लिया और उसकी पसंद के जूते दिखाए। काफ़ी डिज़ाइन देखने के बाद उसे दो जोड़ी जूते पसंद आए, पेमेंट की और चल दी। दुकानदार ने उसका फ़ोन नं. नोट कर लिया था ताकि जब भी नया स्टॉक आए या सेल वगैरह लगे तो वो सूचित कर सके। वैसे भी आजकल इन सब चीज़ों के मैसेज़ आना एक आम बात है। पाखी खुशी–खुशी घर लौटी और अपनी दिनचर्या में व्यस्त हो गई। अगली दोपहर उसे जूतों वाली दुकान से फ़ोन आया। ग़लती से एक जोड़ी जूते में दोनों जूते अलग अलग नंबर के चले गऐ थे। पाखी को यह सुनकर बहुत ग़ुस्सा आया, परंतु उसके कुछ कहने से पहले ही दुकानदार ने खेद व्यक्त करते हुए कहा कि उसे आने की ज़रूरत नहीं, शाम को उसका सेल्ज़मैन आ जाएगा। पाखी ने अपना एड्रैस बता दिया।

शाम को बैल बजी तो उसने देखा कि वही कल वाला सेल्ज़मैन जूतों का डिब्बा लिए खड़ा था। ठंड का मौसम था, मेड से कहकर उसने उसे अंदर बुला लिया और स्वयं जूतों का डिब्बा लेने चली गई। उसने भी आकर कहाँ डिब्बा खोलकर देखा था। जब तक वो अच्छे से फिर से जूते पहन कर देखती, मेड चाय ले आई। पाखी ने जूते वाले को भी चाय देने का इशारा किया। एक दो बार मना करने के बाद उसने कप पकड़ लिया और धीरे–धीरे पीने लगा। टाईम पास करने के लिए पाखी भी चाय पीते–पीते उससे पूछने लगी कि शोरूम को खुले कितना समय हुआ, कौन–कौन से ब्रैंड के जूते हैं, इत्यादि। एक दो बातों का जवाब देने के बाद सेल्ज़मैन ने अचानक ही पूछा, "मैडम, क्या कभी आप जोधपुर गई हैं? उसके इस सवाल से पाखी को थोड़ा अजीब तो लगा, लेकिन फिर उसने कहा, "हाँ, एक बार मामा जी के पास, बहुत साल पहले, तब उनकी वहाँ पोस्टिंग थी", लेकिन इस बात को तो बीस साल हो गए। यह कहते हुए पाखी ने बहुत ग़ौर से उस सेल्ज़मैन का चेहरा देखा। जैसे उसे भूला बिसरा कुछ याद आया हो।" "क्या तुम सक्सैना साहब के बेटे हो, जिनकी जोधपुर में उन दिनों जूतों की बहुत बड़ी दुकान थी?", पाखी के मुँह से निकला। पहले तो पाखी ने उसकी और ध्यान भी नहीं दिया था। वैसे भी न जाने कितने अनजान लोग हर रोज़ मिलते हैं। बहुत कम ही ध्यान जाता है। उसके हाँ कहते ही एकबारगी तो पाखी का मुँह कसैला हो गया। दिल तो किया, वही जूता उठा कर उसके मुँह पर मारे, पर शांत रही। सेल्ज़मैन ने बदली किए हुए जूतों का

डिब्बा उठाया और हाथ जोड़कर बोला, मैंने और मेरे परिवार ने जो उस दिन आपसे बर्ताव किया, उसके लिए मैं शर्मिंदा हूँ। मैंने जो आपका दिल दुखाया, उसकी सज़ा तो भगवान ने मुझे बहुत पहले दे दी है। हो सके तो मुझे माफ़ कर देना। यह कह कर वो तो चला गया, लेकिन पाखी अतीत के गलियारे में भटकने लगी। सारी पुरानी यादें एक–एक करके चलचित्र की तरह उसकी आँखों के सामने आने लगी। सिर एकदम से ऐसे दुख रहा था, जैसे अभी फट जाएगा। उसने मेड को एक कप कड़क चाय बना कर लाने के लिए कहा और आकर बिस्तर पर लेट गई। चाय पीकर, लंबी लंबी सांसे लेकर मन को कुछ हल्का किया। पाखी उस कड़वे अतीत को बिल्कुल भी याद नहीं करना चाहती थी, लेकिन सब कुछ अपने बस में नहीं होता। उन दिनों पाखी की शादी की बात चल रही थी। साधारण सी शक्ल सूरत, मिडिल क्लास परिवार, पाँच भाई बहनों में सबसे बड़ी पाखी का रिश्ता ही नहीं हो रहा था। कई जगह बात चली, लेकिन लेकिन कहीं बन नहीं पाई। उस समय के हिसाब से पाखी काफ़ी पढ़ी–लिखी थी, परंतु पढ़ाई की कद्र करने वाले भी तो हों। दुनिया कितनी भी बदल जाए, हमारे देश में लड़की की शादी और वो भी कम या बिना दहेज के करना लगभग असंभव सा ही है।

उन दिनों बैंक में कार्यरत पाखी के मामाजी की बैंक में जोधपुर पोस्टिंग थी। वहीं पर वनीश के पापा की जूतों की बहुत बड़ी दुकान थी। बैंक में काफ़ी आना–जाना होने के कारण वनीश के पापा और पाखी के मामा की काफ़ी अच्छी दोस्ती थी। इत्तिफ़ाक़ से जात बिरादरी भी एक ही थी। वनीश ज़्यादा पढ़ा–लिखा नहीं था, लेकिन काफ़ी प्रभावशाली व्यक्तित्व का स्वामी था। लंबा कद, गोरा रंग, काले कुछ–कुछ घुंघराले बाल, तीखे नैन नक्श और वाकपटुता तो पूछो ही मत। किसी ग्राहक को मुश्किल से ही खाली हाथ जाने देता। तीन बहनों का इकलौता भाई था। वनीश के पिताजी को काम के सिलसिले में बाहर जाना पड़ता था, तो वनीश ने पढ़ाई छोड़कर काम संभाल लिया । एक बहन बड़ी थी, जिसकी शादी हो चुकी थी, दो छोटी अभी पढ़ रही थी। पाखी के मामाजी को वनीश बहुत अच्छा और मिलनसार लगा। वो भी अपनी भानजी के लिए अच्छे वर की तलाश में थे। उन्होंने अपनी पत्नी से बात की और सोचा कि किसी दिन मौका देखकर वो वनीश के पिताजी से बात करेंगे। पाखी के मामाजी एक बहुत अच्छे इन्सान थे और उनका परिवार भी उच्च संस्कारों वाला था। ज़्यादा धनवान नहीं थे, मगर मिलनसार और रिश्तों का महत्व, क़दर बहुत अच्छे से समझते थे।

पाखी के मामाजी ने अपने एक सहकर्मी जो कि उनके काफ़ी क़रीब था, उसे अपने मन की बात बताई। उसे भी ठीक लगा। अभी तक सिर्फ़ आदमियों में ही जान–पहचान थी, घरों में आना–जाना नहीं था। सहकर्मी ने बात वनीश के पिताजी तक पहुँचा दी थी। इत्तिफ़ाक़न ही पाखी अपनी मम्मी के साथ जोधपुर आ गई। उधर वनीश के भानजे का जन्मदिन था। होटल में पार्टी रखी गई। बहुत से और लोगों के इलावा पाखी के परिवार को भी निमंत्रण भेजा गया। जब वनीश के पिताजी को पता चला कि उनके घर मेहमान आए हुए हैं, तो उन्होंने उन्हें भी साथ लाने की ताक़ीद की। पाखी एक छोटे से शहर में रहने वाली सीधी सादी, मगर उच्च विचारों वाली पढ़ी–लिखी लड़की थी। बहुत ज़्यादा गोरी और सुंदर नहीं थी, मगर अच्छी लगती थी। उसकी काली बड़ी–बड़ी आँखें तो जैसे बोलती सी लगती। अगर देखने वाले की नज़र पारखी हो तो उसके व्यक्तित्व में कोई कमी नहीं थी। पाखी को पता नहीं था कि वहाँ मामाजी ने उसकी शादी की बात चलाई हुई है। पहले तो वो किसी अनजान पार्टी में जाने को तैयार नहीं थी, लेकिन जब सब जा रहे थे तो उसे भी जाना पड़ा। सबसे बड़ी बात, उसके मामा की बेटी जो उससे दो तीन साल छोटी थी, मगर दोनों में बहुत दोस्ती थी, वो भी जा रही थी। शहर में रहने के कारण वो थोड़ी चुलबुली और फ़ैशन नेबल भी थी।

पार्टी में लोग खूब बन–ठन कर आए हुए थे। जब वो होटल के बाहर पहुँचे तो सामने बड़े से बोर्ड पर छोटी–छोटी जगमगाती हुई लाईटों से लिखा हुआ था, "हैपी, वैलेंटाइन डे" पाखी को समझ नहीं आया कि ये कौनसा दिन हुआ, क्योंकि उसने तो कभी सुना नहीं था। उसका मन आया कि मामा की बेटी से पूछूँ, मगर वो चुप रही। वनीश के पिताजी ने अपने परिवार से पाखी के मामाजी और बाकी सबका भी परिचय करवाया। वनीश की बड़ी बहन तो अपने परिवार में व्यस्त थी, मगर दोनों छोटी बहनें और माँ भी बड़ी अकड़ूँ और घंमडी सी लगी। दुकान पर सबसे हंस–हंस कर बातें करने वाले वनीश का भी यहाँ और ही रूप देखने को मिला। रुतबे और पैसे का काफ़ी दिखावा लग रहा था, लेकिन वनीश के पिताजी का व्यवहार बहुत अच्छा था। पता नहीं कैसे सूप पीते समय किसी का हाथ लग गया तो उसके ऊपर सारा सूप गिर गया। यह देख वनीश की बहनें हँसने लगी। पहले भी वो उसकी और देखकर अजीब तरीके से मुस्कुरा रही थी। जब वो उठकर अपनी कज़न के साथ वाशरूमश की और जा रही थी तो उसके कानों में ये आवाज़ पड़ी, "ये बहनजी कहाँ से आई है, न कपड़े पहनने का और न खाने का सलीका है"। इसके

बाद ज़ोर से ठहाके की आवाज़ सुनाई दी। पाखी को यह सुनकर बहुत बुरा लगा। मन में तो आया कि पलटकर जवाब दे, मगर मौक़े की नज़ाकत देखकर चुप रही। एक बात ज़रूर थी। उम्र का तक़ाज़ा कहो या आकर्षण, पाखी को मन ही मन वनीश बहुत अच्छा लगा, जबकि उसे उसके बारे में कुछ पता नहीं था।

पाखी की मम्मी को सब पता था और उसने भी सब नोटिस किया था। ज़ाहिर है, बात वहीं पर ख़त्म हो गई। रिश्ता हो न हो वो अलग बात है, लेकिन मेहमानों से ऐसा बर्ताव तो सरासर बदतमीज़ी ही कहलाएगी। बाद में पाखी को भी पता चल गया था। उसे तो पहले ही बहुत बुरा लगा था। भले ही उसे वनीश देखने में अच्छा लगा था। एक तरह से अच्छा ही हुआ, ऐसे घमंडी और बदतमीज़ लोगों के साथ गुज़ारा करना भी मुश्किल होता, परंतु न जाने क्यों पाखी के मन में एक कसक सी रह गई। बाद में भी वनीश का चेहरा कई बार उसके सामने आता और वो मीठे सपनों में खो जाती। होश में आते ही वो सिर झटक देती। समय को तो अपनी रफ़्तार से चलना ही होता है। उसका रिश्ता बहुत अच्छे घर में हुआ। प्यार करने वाला पति, दो प्यारे बच्चे और प्रतिष्ठित परिवार और क्या चाहिए। बाद में मामाजी से पता चला कि वनीश की दुकान में आग लग गई थी, सब जल कर ख़ाक हो गया। बीमा वगैरह से भी कुछ ख़ास नहीं मिला। उन पर काफ़ी क़र्ज़ भी था। घर बेचकर मुश्किल से दोनों बेटियों की शादी साधारण से घरों में की और कुछ क़र्ज़ चुकाया। वनीश की पत्नी बहुत बड़े घर की बेटी थी। व्यवसाय में हुए नुक्सान को देखकर वो तो अपने घर वापिस चली गई। वनीश के पिताजी तो बाद में जल्दी ही अटैक से चल बसे। बचे माँ बेटा, वो भी जोधपुर छोड़कर कहीं और चले गए। सुनने में आया है कि वनीश किसी जूतों की कंपनी में नौकरी करता है।

समय के साथ सब धुँधला पड़ चुका था, लेकिन पाखी ने कभी सोचा नहीं था कि इतने सालों बाद इस तरह से वनीश से सामने होगा। किस्मत का लिखा कौन मिटा सकता है, लेकिन फिर भी वनीश के लिए उसके मन में कहीं न कहीं सॉफ्ट कार्नर था। सबका भला हो, वो तो यही दुआ करती थी। कुछ दिनों बाद बच्चों के जूते लेने के लिए उसका फिर उसी दुकान पर जाना हुआ। सामने ही 'हैपी ! वैलेंटाइन डे' का बोर्ड लगा देखकर वो मुस्कुरा दी, क्योंकि उसे अब इसका मतलब पता था।

■

13

क्या यही प्यार है...

"देखो जी, मैं कैसी लग रही हूँ? मोहिनी ने नई साड़ी पहनकर इठलाते हुए पूछा। 'सुदंर' मोहन ने बग़ैर मोहिनी की ओर देखे ही कहा। हमेशा की तरह मोहिनी चिढ़ सी गई। वो भी कैसी बेवक़ूफ़ है, आज तीस साल हो गए शादी को, फिर भी मोहन को समझ नहीं पाई। अजीब ही बंदा है। हर समय अपने काम में मग्न। कोई खबर नहीं दीन दुनिया की। समय से पहले दफ़्तर पहुँचना और छुट्टी के बाद भी उसे कोई जल्दी नहीं होती घर पहुँचने की, और तो और कई बार तो फ़ाइलें साथ में ही उठा कर ले आता। छुट्टी वाले दिन तो ख़ास तौर पर। जब मोहिनी की शादी हुई तो वो मुश्किल से बीस बरस की रही होगी और मोहन बाईस का। मोहिनी ने ईंटर तक ही पढ़ाई की थी और मोहन ने ग्रेजुऐशन की थी। पढ़ाई में होशियार था मोहन, अच्छे नंबर आए थे तो जल्दी ही सरकारी नौकरी मिल गई थी, वैसे भी ये वो जमाना था जब शिक्षा का इतना प्रसार नहीं था। पढ़े–लिखे लोग कम थे तो नौकरी मिल जाती थी। दूसरी बात ये भी थी कि उन दिनों लड़कियां बाहर काम कम ही करती थी, अक्सर लड़के ही बाहर काम करते थे।

लेकिन मोहिनी और लोगों से हट कर थी। उसके माता–पिता कुछ खुले विचारों के थे। उसके पिताजी थोड़े आज़ाद ख़यालात के थे। वो तो चाहते थे कि मोहिनी आगे पढ़ाई करे, लेकिन वो पढ़ाई में ठीक–ठाक सी थी, मगर फ़ैशन करने में बहुत आगे। फ़िल्में देखने की बहुत शौक़ीन, माँ–बेटी एक सी थी। उन दिनों आज की तरह फ़िल्में नहीं बनती थी, थियेटर का जमाना था। अच्छी फ़िल्म तो कई हफ़्ते चलती। मोहिनी को लगने लगा कि ज़िंदगी फ़िल्मों की तरह ही हसीन होगी, लेकिन हक़ीक़त कुछ और ही होती है। जब पढ़ाई बंद हो गई तो मोहिनी के पिताजी ने उसके लिए लड़का ढूँढना शुरू कर दिया और जल्दी ही मोहन से बात पक्की हो गई। घर परिवार सब अच्छा था, ऊपर से मोहन की सरकारी नौकरी। कहीं कोई कमी नज़र नहीं आई, तो सबको रिश्ता जंच गया। मोहिनी को पहला झटका तब लगा जब उसे बिना देखे ही मोहन ने हाँ कह दी, अब वो मोहन को कैसे देखती। मोहन की माँ और दो बहनों ने उसे कहीं बाहर ही देख लिया था। बहुत ही सादे मगर संस्कारी लोग थे। कोई डिमांड नहीं। बिना किसी तामझाम के शादी हो गई।

मोहिनी को ये सब हज़म करने में बहुत समय लगा। वो तो फ़िल्मों के सतरंगी हिंडोले पर सवार थी। हीरो हीरोईन का प्यार, बगीचों में घूमना, चाँद तारों की बातें, कभी पहाड़ तो कभी समुद्र का तट। मन में बहुत कुछ था, लेकिन कहे किससे। ले–देकर एक ही ख़ास सहेली थी लता। उससे ही मन की बात करती थी, लेकिन इस मामले में लता हक़ीक़त के बहुत पास थी। उसने समझाया कि माँ–बाप जो करते हैं, वो बच्चों के भले के लिए ही करते हैं। वैसे भी मोहिनी अंदर से भले ही तेज़ थी, मगर पापा के सामने मुँह खोलने की हिम्मत नहीं थी। मँगनी से पहले उसने माँ से कहा भी था कि वो मोहन को देखना चाहती है, जब ये बात पापा तक पहुँची तो उन्होंने साफ़ मना कर दिया कि जब उन्हें लड़की पसंद है और हमने मोहन को देख–परख कर सब पता कर लिया है तो, अब देखना क्या। बहुत अच्छी सूरत, बढ़िया कद–काठी का ख़ानदानी लड़का है। अच्छा कमा रहा है, ख़ुद का पुश्तैनी घर है, और क्या चाहिए। मन मसोस कर रह गई मोहिनी। मोहन जितना सादा और मितभाषी, मोहिनी उतनी ही चंचल, बातूनी और फैशनप्रस्त।

वैसे जोड़ी खूबसूरत थी,पर विचोरों से बेमेल थी, पर मोहिनी के पास अडजस्टमैंट करने के इलावा कोई चारा भी नहीं था। एक तो उस जमाने में तलाक़ का रिवाज बहुत कम था और सभ्रांत परिवारों के लिए तो ये श्राप समान था। फिर मोहिनी से छोटे तीन भाई बहन और थे। अगर मोहिनी पर तलाक़ का कलंक लग जाता तो बाक़ियों की शादी करनी मुश्किल हो जाती, और तो और माँ–बाप का बाहर निकलना मुश्किल हो जाता। जैसे–तैसे मोहिनी ने अपने आप को सैट करने में ही भलाई समझी। वैसे उसे मोहन में कोई बुराई भी नहीं लगी। सच्चा, पक्का, इमानदार था। समय का पाबंद, सब का ध्यान रखता था। माँ–बाप के साथ–साथ ससुराल में भी सब की इज्ज़त करता था, अपना हर फ़र्ज़ निभाता। बस एक ही कमी थी, थोड़ा रूखा स्वभाव, कम बोलना और मोहिनी के अनुसार रोमांटिक तो बिल्कुल भी नहीं। मोहिनी जितनी फिल्में देखने की शौकीन थी, मोहन को वो सब बेकार लगती। एक दो बार तो वो साथ चला गया, लेकिन फिर उसने साफ़ मना कर दिया। उसको तो वहाँ जाकर नींद ही आ जाती। उसे तो क़ुदरत का साथ पसंद था। सुबह जल्दी उठकर सैर को निकल जाता, सभी व्यसनों से दूर। परंतु उसने मोहिनी को कभी किसी काम के लिए मना नहीं किया। जहाँ जाए, जो पहने, कोई पाबंदी नहीं। अब तो मोहिनी उसे साथ जाने के लिए कहती भी नहीं थी।

मोहिनी की भी मुहल्ले में बहुत सखी सहेलियां बन गई थी। उनके साथ ही किट्टी पार्टी वगैरह में मौज़–मस्ती कर लेती। लता से भी नाता था। वो किसी दूसरे शहर में रहती थी, मगर पहले चिट्ठियां और बाद में फ़ोन से हाल चाल का पता चलता रहता। लता उसको हमेशा यही समझाती की मोहन तो दिल का हीरा है। कोई ऐब नहीं, कितने अच्छे से सबका ध्यान रखता है, सारे परिवार के प्रति अपने कर्तव्यों को उसने कितने अच्छे से निभाया है, बाकी सबका अपना अपना स्वभाव होता है। लता की बातों से उसे हौंसला मिलता। वैसे उसकी भी कुछ ज़्यादा इच्छाएँ नहीं थी। बस वो यही चाहती थी कि वो भी कभी फ़िल्मी हीरो की तरह उसकी आँखों में देखे। कभी उसके रूप की प्रशंसा करे। कभी वो दोनों साथ–साथ घूमने जाए, पर मोहन अपने ही मिजाज का था। कभी कहीं गए भी तो ऐसे जैसे किसी ने ज़बरदस्ती की हो। समय के साथ तीन बच्चे हो गए, दो बेटे और एक बेटी। ससुराल परिवार में भी सबकी शादियाँ हो गई। सबकी अपनी–अपनी गृहस्थी बस गई। सास–ससुर भी चल बसे।

अब तो मोहिनी ने अपने आपको परिवार के अनुरूप ढाल लिया था। वैसे भी ये सब चोंचले कुछ समय ही चलते हैं, लेकिन कहते हैं न कि जो इच्छा पूरी न हो, उसकी कसक कहीं न कहीं मन में रह ही जाती है। बस यही हाल मोहिनी का था। अब तो बच्चे भी बड़े हो गए। पढ़–लिख गए, तीनों की शादियाँ हो गई। नौकरी के सिलसिले में एक बेटा तो विदेश चला गया, बेटी और दूसरा बेटा थे तो भारत में ही, लेकिन काफ़ी दूर। सब अपने–अपने घरों में खुश थे, इसकी बहुत तसल्ली थी दोनों को। समय की चाल तो कभी रूकती नहीं। मोहन रिटायर हो गए। घर का मकान, अच्छी पेंशन, गुजारा अच्छा हो जाता। बीच–बीच में समय मिलता तो तीज–त्यौहार पर बच्चे आ जाते तो रौनक़ हो जाती, वरना तो दोनों अब अकेले थे। रिश्तेदारी में आने–जाने का रिवाज भी अब कम ही हो गया है। कई बार मोहिनी बहुत अकेला महसूस करती। मोहन तो अब भी वैसे ही थे। बच्चों के पास जाकर भी देख लिया। सब अपने में व्यस्त। सुबह होते ही बहू, बेटा काम पर निकल जाते, पोती भी स्कूल चली जाती, शाम को सब थके होते। कुल मिलाकर मोहिनी को अपने घर पर ही रहना अच्छा लगता।

मोहन का समय तो किताबें, अखबारें पढ़ने, सुबह शाम टहलने में अच्छा व्यतीत हो जाता, लेकिन मोहिनी कई बार बहुत उदास और चिढ़चिढ़ी सी हो जाती। मुहल्ले की औरतों के साथ बैठकर बहूपुराण में उसकी रूचि नहीं थी। वो तो अब भी

सजधज कर रहती और उसका ज़्यादातर समय टीवी सीरियल देखने में ही निकलता। मोहन की सेहत तो ठीक थी, लेकिन मोहिनी कुछ–कुछ बीमार रहने लगी। शुगर और बीपी तो पहले से ही था। एक रात अचानक ही उसे अटैक आ गया और हस्पताल में भर्ती करवाना पड़ा। डॉक्टर के अनुसार बाईपास सर्जरी करने की ज़रूरत थी। बच्चों को ख़बर कर दी गई। एकदम से कोई नहीं पहुँचा, लेकिन बाद में भारत में रहने वाले बेटा, बहू आ गए। मोहिनी को तो कोई होश नहीं थी। ज़िंदगी में पहली बार मोहन इतना घबराए। दिन–रात मोहिनी के पास ही बैठे रहते। अपनी होशोहवास भूलकर हरदम भागदौड़ में लगे रहे। जो–जो हिदायतें डॉक्टरों ने दी, पूरी तरह उनका पालन करते। जब बेटा आ गया तो वो अक्सर कहता कि पापा आप थोड़ा आराम कर लो, मैं माँ का पूरा ध्यान रखूँगा, लेकिन वो वहीं आस–पास ही मँडराते रहते।

घर आकर भी हर पल उनका ध्यान मोहिनी की तरफ़ ही रहता। वह तो मोहिनी को खोने का सोच कर ही घबरा गया था। तीन चार दिन तक जब मोहिनी लगभग बेहोशी की हालत में थी तब तो मोहन की हालत देखने वाली थी। वो तो पड़ोस में रहने वाले रमाकान्त और उनकी पत्नी ने ही सारी स्थिति सँभाली, नहीं तो शायद मोहन ही बीमार पड़ जाता। दो दिन के बाद जब बच्चे पहुँच गए तो मोहन को भी सहारा मिला। मन ही मन अब मोहन को बीती बातें याद करके जैसे ग्लानि सी हो रही थी कि कैसे वो मोहिनी की हर बात टालता ही था। अगर उसके दो मीठे बोलों से ज़रा सा उसका मन खुश हो जाता तो उसका क्या बिगड़ जाता। वैसे उसने कई बार चाहा भी कि वह रोमांटिक बातें करे, पर ये उसकी फ़ितरत में नहीं था। दो चार बार तो वो हँसी का पात्र ही बन गया था, जब उसने मोहिनी की नई साड़ी को पुरानी कह दिया और पुरानी को नई कह दिया। एक बार तो उसने हद ही कर दी। मोहिनी को खुश करने की गर्ज से उसने उसके लिए सूट ख़रीदने की सोची। उसने एक ही रंग, डिज़ाईन के तीन सूटों का कपड़ा ख़रीद लिया। जब मोहिनी ने देखा तो पहले तो उसे बहुत ग़ुस्सा आया, मगर फिर वो इतना हँसी कि उसके पेट में बल पड़ गए। बाद में मोहिनी ने एक सूट अपनी ननद और एक अपनी बहन को दे दिया। सारे परिवार में ये किस्सा मशहूर हो गया। उसके बाद तो उसने मोहन से कभी कुछ नहीं कहा। अब तक वो भी समझ चुकी थी कि वो दिल का हीरा है, प्यार तो करता है पर जताना नहीं आता। जब ज़िंदगी की हक़ीक़तों से सामना हुआ तो फ़िल्मों का भूत स्वयं ही उतर चुका था।

अब मोहिनी धीरे–धीरे ठीक हो रही थी। बच्चे भी चले गए थे। काम–काज के लिए मेड थी। मुँह से भले ही कुछ न कहते, लेकिन मोहिनी को ठीक होते देखकर मोहन की आँखों में जो चमक थी, वो मोहिनी से छुपी नहीं थी। अब वो समझ चुकी थी कि ज़रूरी नहीं कि हर समय प्यार जताया जाए, प्यार तो वो है, जो दिल से निभाया जाए। एक दिन मेड नहीं थी तो मोहन ने जब उसके बालों की उल्टी–सीधी चोटी बनाई तो अपनी ही शक्ल देख कर उसकी हँसी छूट गई, लेकिन अब उसे मोहन पर ग़ुस्सा नहीं प्यार उमड़ आया। अब वो काफ़ी ठीक हो गई थी। किसी ज़रूरी काम के लिए वो उठी तो कमज़ोरी के कारण सँभल नहीं पाई, गिरने को ही थी कि मोहन ने फटाफट उसे संभाल लिया। दूर कहीं ये गीत बजने की आवाज़ आ रही थी "चल चलिए नी मुटियारे, वैसाखी वाले मेले ते"।

■

14

ऐसे कारज कीजिए...

किसी ने सच ही कहा है कि हर इन्सान को अपने कर्मों का फल भुगतना पड़ता है और यह भी सच है कि इसी धरती पर भुगतना पड़ता है। अगला जन्म, दूसरा जहान, नर्क-स्वर्ग किसने देखा है। जब कोई व्यक्ति अपनी अच्छी उम्र, अच्छा जीवन भोग कर जाए तो सब यही कहते हैं कि चलो एक दिन जाना तो सभी को है। जितना भी जीवन मिला अच्छा ही मिला। कुछ अच्छे कर्म किए होंगे जो बिना किसी बीमारी के, किसी से बग़ैर सेवा करवाए प्रभु चरणों में स्थान पाया, लेकिन जब किसी को बचपन में या जवानी में ऊपर से बुलावा आ जाए तो क्या कहे। अब उसे आख़िर ये सज़ा क्यों मिली। फिर तो यही कह कर मन को तसल्ली दी जाती है कि ये सब पिछले कर्मों का फल है। जाने वाला तो चला गया, लेकिन जो उसके प्रियजन यहां पर है, अब उनको किस जन्म की सज़ा मिल रही है। ये सब ऐसे सवाल हैं, जिनका जवाब किसी के पास नहीं। सब जानते हैं कि दुनिया रैन बसैरा है, हम सब यहाँ पर एक मुसाफ़िर की तरह हैं, जब–जब जिसका स्टेशन आएगा, सब उतरते जाएँगे, फिर भी सब डेरा जमाना चाहते हैं।

यह भी ठीक है कि दुनिया में आए हैं तो दुनियादारी भी निभानी ज़रूरी है, लेकिन हर बात की हर चीज़ की कुछ तो सीमा होती है, लेकिन इन्सान समझता कहाँ है। कितने बड़े–बड़े उदाहरण हमारे सामने हैं, याद हिटलर को भी करते हैं और मदर टेरेसा को भी। याद ज़ालिमों को भी करते हैं और भलेमानसों को भी, लेकिन सोचने वाली बात है कि कैसे याद किया जाता है। ये बातें तो बहुत बड़े लोगों की हैं, अपने परिवार, गली–मुहल्लों में भी हर प्रकार के लोग मिल जाएंगे। अच्छे से अच्छे भी और बुरे से बुरे भी। जब एक न एक दिन जाना सभी को है तो क्यों नहीं हर इन्सान अच्छे कर्म करके जाता, परंतु न जाने इंसान को ईश्वर ने कितनी प्रकार की भूख देकर इस पृथ्वी पर भेजा है, जो कभी शांत होने का नाम ही नहीं लेती। कभी पैसे की भूख तो कभी पद और सत्ता की भूख। ज़मीन, जायदाद न जाने कितने प्रकार की भूख। खाने से तो पेट भर जाता है, मगर इन चीज़ों से पेट नहीं भरता।

पार्क में बैठा करन इन्हीं विचारों में गडमड हो रहा था। करोना का वेग अब कुछ कम हो चला था तो लोग अपने–अपने घरों से निकलने लगे थे। बिना निकले

गुज़ारा भी कहाँ था। जिन लोगों ने ये समय देखा, भुगता है, वो कभी इसे भूल नहीं पाएंगे। वैसे तो कहते हैं कि समय बहुत बलवान है। धीरे–धीरे सब इतिहास में बदल जाता है। आज तपेदिक, चेचक जैसी बीमारियों से भले ही कम डर लगता हो, लेकिन एक समय था कि गाँव के गाँव इसकी चपेट में आ गए थे। करन के आसपास कई लोग करोना की चपेट में आए, कुछ जाने, बहुत से अनजाने चल बसे। कईयों के बारे में तो ख़बर ही नहीं मिली, मिली भी तो कई महीनों बाद। ख़बर मिलने पर भी कहाँ जाना संभव हुआ, लेकिन सिर्फ़ करन ही नहीं, दुख तो सभी को ही हुआ। बात फिर वही कि अच्छे और बुरे लोगों को याद करने का तरीका अलग–अलग होता है। एक दिन अचानक करन को पता चला कि पिछली गली में रहने वाले डॉक्टर प्रेम और उसकी डॉक्टर पत्नी विद्या का देहान्त भी करोना काल में हो गया।

यह सुनकर एक बार तो करन सचमुच ही चौंक गया। एक ही महीने में दोनों चले गए, यह जानकार दुःख तो होना स्वाभाविक ही है। डॉक्टर को तो धरती पर भगवान का दूसरा रूप माना जाता है। यह भी सच है कि इस दौरान कितने ही अनमोल डॉक्टर इस दुनिया में लोगों की जान बचाते हुए ख़ुद चल बसे। सारे देश को इस बात का सदमा लगा, लेकिन कुछ किया नहीं जा सकता था। धीरे–धीरे लोग बाहर निकलने लगे और बाज़ार, मंदिर, गुरूद्वारे, यहाँ वहाँ मिलने लगे। चर्चा का विषय करोना ही होता। आपस में सुख–दुःख की, रिश्तेदारों की बातें होती, जो इस बीमारी में चले गए उनकी बातें होती। माहौल गमगीन हो जाता, लेकिन जब डॉक्टर प्रेम और विद्या की बात होती तो लोग चुप से हो जाते। करन एक बैंक ऑफिसर था, किसी और शहर से बदल कर जब वो इस नए शहर में आया तो कुछ महीने बाद ही करोना का प्रकोप छा गया। अभी वो अपना परिवार साथ नहीं लाया था, क्योंकि बच्चों की पढ़ाई का सैशन चल रहा था। फिर तो वो अकेला ही यहाँ रहा। कभी मौका मिलता तो घर हो आता, वैसे भी दो घंटे का ही रास्ता था। उसकी जान–पहचान भी बहुत कम लोगों से थी, क्योंकि वो ऐसा समय था कि लोग अपनों से ही बात नहीं करते थे, बेगानों को कौन पूछता।

वैसे भी करन मितभाषी था, लेकिन हालात कुछ ठीक हुए तो उसका भी मन यहाँ–वहाँ जाने को हो जाता। अभी वो अपने परिवार को लेकर नहीं आया था। पार्कों में अक्सर शाम को लोग बैठे होते तो वो भी जाकर बैठ जाता। एक दिन इतवार को वो टहलने गया तो पार्क में हमेशा की तरह बैठे लोग गपशप कर रहे थे। बीच–बीच

में हंसी–मज़ाक वगैरह भी चल रहा था तो अचानक सभी को रमेश कुमार की याद हो आई। करोना काल में वो चल बसा था। वैसे तो काफ़ी उम्र का था, लेकिन बहुत ही प्रभावशाली और ज़िंदादिल इन्सान था। जहाँ भी बैठता अपनी शायरी से रंग जमा देता। उसकी बात हुई तो माहौल गमगीन सा हो गया। फिर तो एक–एक करके पाँच, छः लोगों की याद आ गई, जो कि उसी एरिया में रहते थे और मुए करोना की भेंट चढ़ गए थे । एक डेयरी मालिक था। सभी ने उसकी बहुत तारीफ़ की, कि हमेशा वो शुद्ध माल ही बेचता था, कभी भी उसने मिलावट नहीं की। इसी प्रकार एक रिटायर्ड अध्यापक की बात चली तो उसकी भी जम कर तारीफ़ हुई कि कैसे वो शाम को ग़रीब बच्चों को मुफ़्त तालीम देता था। दो लेडीज़ को भी याद किया गया जो कि बहुत अच्छी समाज सेविका थी।

कुछ आस–पास रहने वाले उन लोगों की भी बात चली, जिन्होंने उस दौरान अपनी जान की परवाह न करते हुए जनसेवा की और ऊपरवाले की कृपा से वो आज ठीकठाक हैं। सबसे ज़्यादा प्रशंसा मनप्रीत और सुरेश की हुई, जिन्होंने ज़रूरतमंदों को राशन, सब्ज़ी एवं ज़रूरत की अन्य वस्तुएँ पहुँचाई। राजबीर के बारे में तो सब जानते हैं कि जब भी वो दूध या सब्ज़ी लेने बाहर निकलता तो दो, चार पैकेट दूध और कुछ सब्ज़ी आसपास के घरों के बाहर रख आता ताकि लोग जितना हो सके घर के अंदर ही रहें और दूसरों के सम्पर्क में कम से कम आएं। चलते–चलते बात बीमारी पर आ गई। करोना के साथ–साथ बाकी रोज़मर्रा की बीमारियाँ भी तो थी। ज़ाहिर है कि मुहल्ले में रहने वाले डॉक्टर कपल की बात भी आनी थी। दोनों की उम्र पचपन–छप्पन के बीच रही होगी। सरकारी नौकरी छोड़कर लगभग दस वर्ष पहले वो इस मुहल्ले में आए थे। आम तौर पर वहाँ मिडिल या कुछ मध्यम मिडल क्लास लोग ही रहते थे। वैसे भी इस महंगाई के ज़माने में पैसे की क़िल्लत सभी को रहती है। उन्होंने दो प्लॉट लेकर अच्छा घर और छोटा सा क्लीनिक बनाया। आसपास के लोग बहुत खुश थे कि घर के पास ही मैडीकल सुविधा रहेगी।

वैसे भी धरती पर डॉक्टर को भगवान ही माना जाता है। कहते हैं कि एक बार किसी की सपने में भगवान से मुलाक़ात हो गई। बातों ही बातों में बात हो गई। बंदें ने पूछा, "भगवन, ये डॉक्टर कैसे होते हैं?" भगवान ने कहा, विश्वास करना इन पर, बस यूँ समझो कि कुछ–कुछ मेरे जैसे ही होते हैं, तो डॉक्टर के बारे में तो सभी की यही राय है, लेकिन इस कपल के बारे में लोगों का भ्रम जल्दी ही टूट गया। सबसे पहले तो उनकी फ़ीस ही बहुत ज़्यादा थी। फिर बर्ताव भी बहुत रूखा। जो

एक बार गया वो दोबारा शायद ही गया या फिर बहुत ही मजबूरी में। उस समय जब बातें चल रही थी तो एक बुज़ुर्ग ने बताया कि एक रात उनकी पत्नी की तबियत बहुत खराब हो गई। मुंहमांगी फ़ीस देने पर भी वो घर पर आने को राज़ी नहीं हुए। उस समय उनका बेटा भी घर पर नहीं था, पड़ोसी हस्पताल लेकर गए। तभी किसी दूसरे शख़्स ने कहा कि टैस्ट भी उसी लैब के मानते थे, जिसे वो रैफर करते थे। अब जब बात चल ही निकली तो सबने अपने मन की भड़ास निकाली। करन तो किसी को ज़्यादा जानता नहीं था, लेकिन कुछ हद तक बातें उसे भी ठीक लगी। एक आदमी ने बताया कि उसकी प्रैगनैंट बहू की तबियत एक दम से ख़राब हो गई तो इतवार होने के कारण उन्होंने दरवाज़ा ही नहीं खोला।

इसी प्रकार एक और बंदे ने बताया कि उसका बच्चा अचानक सीढ़ियों से गिर कर लहूलुहान हो गया, लेकिन उन्होंने कहा कि वो दिन में दो से पाँच के बीच कोई मरीज़ अटैंड नहीं करते। ऐसी और भी बातें सामने आईं। भले ही किसी ने मुँह से ये नहीं कहा कि अच्छा हुआ वो इस दुनिया से रूख़सत हुए, लेकिन किसी ने उनकी अच्छाई नहीं की और न ही कोई अफ़सोस ज़ाहिर किया। सबको पता था कि उनके दोनों बच्चे विदेश में रहते हैं। दोनों का अंतिम संस्कार हस्पतालों में ही हुआ। कोई रिश्तेदार नहीं आया। कुछ तो उस समय हालात ही ऐसे थे और बाकी उनके बर्ताव का सबको पता था। पिछले दस सालों में वहाँ पर किसी से भी उनका अपनापन नहीं था, बिल्कुल अपने आसपास वालों से भी कोई दुआ सलाम नहीं। एक व्यक्ति जो उनके यहाँ काम करता था, ताला लगा कर चला गया। सुनने में आया है कि कोठी सेल पर लगी है। करन पास बैठा सबकी बातें सुन रहा था। किसी की बुराई सुनना या करना उसे पसंद नहीं था, लेकिन इस समय हालात कुछ और थे।

जो कुछ नहीं बोले या जिनका उनसे राफ्ता नहीं हुआ वो सोच रहे थे, माना कि अपनी योग्यता के अनुसार सभी को कमाई करने का हक है, लेकिन इंसानियत सबसे पहले है। धीरे–धीरे शाम घिर आई तो सब उठ कर चलने को हुए। आज की महफ़िल बहुत ही उदासीपूर्ण वातावरण में समाप्त हुई थी। जितने लोगों की भी आज बातें हुई करन भले ही उनको नहीं जानता था, लेकिन सोच रहा था कि यह तो अटूट सत्य है कि सभी का अंत निश्चित है। कोई हमें याद भले ही न करे, लेकिन अगर कोई करे तो अच्छे मन से करे और दो आँसू भी बहाए तभी जीवन सफ़ल है। वरना तो दुनिया में आया न आया एक समान है, तो ऐसे कारज कीजिए...

■

15

एक मौका और

भीनी ने बाहर जाने से पहले जब अपने आप को आईने में निहारा, तो वह हल्के से बड़ी अदा से मुस्कुराई। उसे महसूस हुआ कि वो एक सैकेंड भी यहाँ और रूकी तो ख़ुद पर ही फ़िदा हो जाएगी। सिवाय थोड़े से आई मेकअप और हल्की सी क्रीम लगाने के इलावा उसने कोई कॉस्मेटिक यूज़ नहीं किया। जब सादगी में ही इतनी सुंदरता है, तो फालतू रंग लगाने की क्या ज़रूरत है और फिर नैतिक तो उस पर वैसे ही दिलो–जान से निसार है। प्यार तो उसे भी नैतिक से बहुत है, पर अभी वो कुछ डिसाईड नहीं कर पाई कि उसे भविष्य में कैसा जीवन साथी चाहिए। उसकी इच्छाएँ कोई बहुत ज़्यादा नहीं थी, तो उन्हें कम भी नहीं कह सकते। प्यार के साथ–साथ पैसा, नाम, इज्जत सब कुछ होना चाहिए। सब से ज़रूरी बात है समय, जिसकी आजकल सबसे ज़्यादा कमी है लोगों के पास। हर कोई भाग रहा है, पता नहीं सब किस मैराथन में शामिल हैं।

अगर देखा जाए तो वो ख़ुद भी तो उसी दौड़ का ही एक हिस्सा थी। बस फ़र्क़ सिर्फ़ इतना ही है कि हम दूसरों की कमियों को देखते हैं, ग़लतियाँ भी निकालते हैं, लेकिन अपने गिरेबान में कोई झाँकना ही नहीं चाहता। लड़की ज़रा सा मुस्कुरा कर, नज़ाकत से अपना काम किसी दूसरे को कह दे तो वो मना नहीं कर पाएगा, भले ही उसे दो घंटे और बैठना पड़ जाए, चाहे ये बहाने हमेशा भी नहीं चलते और सब को बेवाक़ूफ़ भी नहीं बनाया जा सकता, लेकिन भीनी कभी–कभी दूसरों की शराफ़त का फ़ायदा उठा लेती थी। मीता उसकी इकलौती सहेली थी। दोनों एक दूसरे का हर राज़ जानती थी, वैसे ऐसी कोई राज़ वाली बात अभी तक उन दोनों में नहीं थी या यूं कह सकते हैं कि बस थोड़ी मौज़–मस्ती में ज़िंदगी गुज़ारना, मस्ती करना उनकी आदत थी। मन किया तो किसी रेहड़ी पर गोलगप्पे खा लिए या फिर रंग–बिरंगी चुस्की के मज़े लिए।

भीनी अपनी माँ की इकलौती संतान थी। कहना तो नहीं चाहिए, पर उसका पिता महानिकम्मा इन्सान था, जिसका कभी किसी काम में मन नहीं लगा, आख़िर रिश्तेदार भी कहाँ तक साथ देते हैं, एक–एक करके सब ने मुँह मोड़ लिया। काफ़ी समय से भीनी के पिता की कोई ख़बर नहीं, कहीं मर–खप गया या फिर साधु–संत

बन गया, कुछ पता नहीं। माँ थोड़ी पढ़ी–लिखी थी, कभी किसी प्राईवेट स्कूल में छोटे बच्चों की आया बनी तो कभी घर में ट्यूशन पढ़ाई। सिलाई–बुनाई का काम भी किया। माँ की हालत देखकर भीनी का शादी करने का मन न करता। पढ़ाई में तो उसकी कोई ख़ास रूचि नहीं थी, लेकिन फिर भी ग्रेजुएशन करके कम्प्यूटर सीख लिया तो नौकरी मिल गई। वैसे वो नौकरी पैसों के लिए करती थी, उसे कोई दिलचस्पी नहीं थी, लेकिन सजने–संवरने का बहुत शौक और तैयार भी ऐसे होती कि कोई फूहड़पन नहीं। इंटरनेट से ऐसा–ऐसा मेकअप का सामान ढूँढ कर ऑनलाईन मँगाती कि अक्सर लड़कियों को उनके नाम तक न पता होते।

मीता से मुलाक़ात भी उसी ऑफिस में ही हुई थी, उसका डिपार्टमैंट और था, लेकिन तीन साल से उनकी दोस्ती बरक़रार थी। नैतिक से मुलाक़ात का भी क़िस्सा बहुत मज़ेदार था। सुंदरता में तो भीनी बड़ी–बड़ी ऐक्ट्रैस को भी मात देती थी, लेकिन हर कोई थोड़े ना मिस इंडिया या वर्ल्ड का ताज पहन सकता है। नैतिक बहुत अमीर ना सही, लेकिन बहुत अच्छे खाते–पीते घर का लड़का था। सी.ए. था, अपना ऑफिस था, फ़ैमिली बिज़नैस भी था, लेकिन उसका अपना ही काम था। पिता, भाई दुकान देखते थे। उसे ख़ुद याद नहीं कि कब से वो भीनी को चाहता था। उनका शहर कोई बहुत बड़ा नहीं था। तीन–चार गलियाँ छोड़ कर ही भीनी का घर था। गलियों की बनावट कुछ ऐसी थी कि नैतिक को जब भी कहीं जाना होता तो उसे भीनी के घर के आगे से ही निकलना पड़ता। कई बार वो उसे यहाँ–वहाँ दिख जाती। बाद में तो उसका रूटीन ही बन गया कि जब तक उसे वो देख न ले, चैन न पड़ता। पैसे की भले ही कमी थी, लेकिन भीनी अपने–आप को शुरू से ही साफ़–सुथरा रखती। दरअसल उसे ये गुण विरासत में अपनी माँ से ही मिला था।

वक्त के थपेड़ों ने उसकी माँ की सहनशक्ति का बहुत इम्तिहान लिया था। उसके मायके में सब मौज कर रहे थे, उस की किस्मत में जब दुःख लिखा था तो कोई क्या कर सकता है। माँ–बाप ने तो अच्छा घर–वर देखकर ही शादी की थी, पर जब अपना ही सिक्का खोटा हो तो कोई कब तक साथ दे। जब तक सास–ससुर ज़िंदा थे, कुछ ठीक रहा, मगर बाद में हर कोई अपने परिवारों में व्यस्त हो गया। अच्छी बात यह रही कि उसने एक ही बेटी को जन्म दिया। सास की इच्छा तो पोते का मुँह देखने की थी, मगर भीनी की माँ को अपने निखट्टू पति की आदतों का पता लग चुका था। वो तो अपना पूरा ध्यान भीनी पर ही लगाना चाहती थी, ताकि जिन मुश्किलों का सामना उसे करना पड़ा है, कल को भगवान न करें, भीनी पर कोई

विपत्ति आए। "मुश्किल न पड़े, ये और बात है, हम सावधानी न रखें तो ये गल्त बात है"

नैतिक की ओर पहले तो भीनी ने ध्यान नहीं दिया, लेकिन अब वो इतनी भी छोटी नहीं थी, बाईसवां साल लग चुका था। अपने पिता की हरकतों को जानकार उसका शादी से विश्वास कुछ उठ सा गया था, लेकिन आसपास के परिवार काफ़ी सुखी लगते थे। ऑफिस में भी शादीशुदा औरतें बड़े मज़े से आती थी, लंच में जब सब इकट्ठा होते तो खूब चटखारेदार बातें सुनने को मिलती। भीनी को ये बात बिल्कुल सही लगती कि शादी वाक़ई ऐसा लड्डू है जो खाए वो भी पछताए और जो न खाए वो भी पछताए, तो जब हर हाल में पछताना ही है तो क्यों न खाकर ही पछताया जाए। भीनी को भी नैतिक अच्छा ही लगा। छोटे शहरों में बस सर्विस तो होती नहीं, वैसे भी वो एक्टिवा से जाती थी, उस दिन एक्टिवा खराब था, तो वो पैदल ही घर से निकल पड़ी कि आगे चलकर ऑटो रिक्शा ले लेगी, लेकिन काफ़ी दूर तक कुछ नहीं मिला। तभी नैतिक बाईक पर वहाँ से गुज़रा तो उसने लिफ़्ट ऑफर की। भीनी चुपचाप बिना किसी ना–नुकर के बैठ गई। बिना पूछे ही उसने उसे उसके ऑफिस के आगे उतार दिया। वो भी मुस्कुरा कर उतर गई, मगर थैंक्स करना नहीं भूली।

नैतिक तो मानो निहाल हो गया। अब वो कभी–कभी मिल लेते, यहाँ–वहाँ की बातें करते, मगर प्यार–मुहब्बत जैसी कोई बात नहीं थी। प्यार की कोंपलें नैतिक के मन में तो कब से ही थी, मगर भीनी उसे दोस्त ही मानती। समझती तो वो भी थी, मगर वो ख़ुद ही नहीं जानती थी कि वो क्या चाहती है, क्योंकि घर में माँ का जो हाल देखा और पिताजी की जो तस्वीर उसको धुँधली सी याद थी, उसके बाद विवाह के लिए मन में कड़वाहट होना कोई नई बात नहीं थी। दूसरी और ऑफिस में खुश दिखने वाली कई औरतों की असली गृहस्थी की कई परतें भी अब प्याज़ के छिलकों की तरह उतर रही थी। भले ही सब दुःखी नहीं थी, लेकिन गिले–शिकवे सब की ज़ुबान पर थे। शाली का पति बहुत अच्छा था मगर बहुत पोज़ेसिव। किसी दूसरे मर्द से शाली का बात करना भी उसे पसंद नहीं था। औरतों की कमाई भी चाहिए और बेतुकी बंदिशें भी। कभी–कभी मजबूरी में किसी से लिफ़्ट लेनी पड़ जाए तो बेचारी मुँह ढक कर बैठती और दो गलियाँ पहले ही उतर जाती।

सलोनी का मिंया तो इतना शक्की कि वो ढंग से तैयार भी न हो पाती। सलोनी को भी शायद परमात्मा ने फ़ुर्सत में घड़ा था, ऊपर से लंबे घने बाल सुंदरता

में चार–चाँद लगाते। घर से तो लगभग बिना मेकअप के ही आती, लेकिन नारी तो नारी है। मन तो करता ही है, दफ़्तर में आकर थोड़ा चाव पूरा करती। एक दिन उसका पति किसी काम से दफ़्तर में आ गया। सलोनी को इस तरह देखकर तो उसके चेहरे का रंग ही बदल गया। वो वहाँ तो कुछ नहीं बोला, लेकिन सुनने में आया कि उसने घर पर बहुत हंगामा किया। फ़िरोजा तो इतनी सुंदर कि कवि की कल्पना से भी कहीं परे। अपने–आप को अप्सरा समझने वाली भीनी भी अपने–आप को उससे कमतर ही पाती। ज़रा सा भी मुस्कुराती तो गाल का डिम्पल उसकी सुंदरता में चार–चाँद लगा देता, लेकिन वो मुस्कुराती भी जैसे हफ़्तों बाद। भीनी को पता चला था कि उसका पति बहुत ही दिलफेंक क़िस्म का इन्सान है। ऐसी सुंदर बीवी के होते हुए कोई बाहर झाँक भी कैसे सकता है। भीनी को उस समय बड़ी कोफ़्त होती, जब दफ़्तर में या कहीं आते जाते पुरूष जान–बूझकर टकरा जाते या छू कर फिर ऐसे शो करते जैसे गल्ती से हाथ लग गया हो। कई तो इतनी गंदी निगाह से देखते जैसे कपड़ों के आरपार ही देख रहे हों।

ऐसे ही सबके अलग–अलग क़िस्से। किसी का पति अच्छा तो सास ननद से नहीं बनती। किसी को कम दहेज के ताने सुनने पड़ते हैं तो किसी का पति 'मॉमज़ ब्वाय' है और भी न जाने क्या क्या। उसकी बेस्ट फ्रैंड मीता की कहानी तो और ही थी। उस बेचारी के साथ तो बहुत बड़ा धोखा हुआ था। पर ग़लती उसके माँ–बाप की भी थी। काफ़ी समय बाद उसे मीता के बारे में पता चला। उसे तो ये भी नहीं पता था कि मीता शादी–शुदा है और एक पांच साल के बेटे की माँ है। उसका तो तलाक़ का केस चल रहा था। बिना किसी जाँच–पड़ताल के उसकी शादी ऑस्ट्रेलिया में तय कर दी गई थी। माँ–बाप तो इसी में खुश थे कि बेटी बाहर जाएगी। दरअसल विदेश की चकाचौंध बहुतों को गुमराह कर रही है। जब असलियत खुली तो पता चला कि वहाँ पहले से ही वो किसी के साथ रिलेशन में है। वैसे विदेशों में ये आम बात है। माँ–बाप के दवाब में आकर यहाँ पर शादी कर ली। एक महीना मौज़–मस्ती के बाद जो वापिस गया तो आज तक नहीं आया।

मीता अब न इधर की न उधर की, कोर्ट में केस चल रहा है और ये जो हमारा समाज, हर बात का दोषी लड़की को ही ठहराएगा। माना कि परिस्थितियाँ पहले वाली नहीं, लेकिन भीनी को लगता कि औरतों की स्थिति का आंकलन अगर पुराने ज़माने से किया गया तो बदलाव की प्रकिया तो पत्थर घिसने से भी धीमी है, लेकिन कुछ बातें उसने भी नोटिस की, कि हर बात पर औरत का पक्ष भी नहीं लिया

जा सकता। कुछ दिन पहले ही जिस अदिती ने ज्वाईन किया है, कैसी अजीब हरकतें करती है। जब बॉस के या किसी पुरूष कर्मचारी के कम्प्यूटर पर कुछ देखने–समझने के लिए खड़ी होती है, तो पूरी उसके ऊपर ही झुक जाती है। अगर ये मान भी लिया जाए कि ये उसकी आदत है तो महिलाओं के पास तो आराम से खड़ी होती है। भीनी को किसी के पहरावे से मतलब नहीं था, लेकिन वो ये तो समझ गई थी कि बाहर निकलते समय ढंग के कपड़े पहनना औरत और मर्द दोनों के लिए ज़रूरी है। सीमा रेखा कोई किसी दूसरे के लिए निर्धारित नहीं कर सकता, ये ते स्वयं ही देखना है।

पिछले तीन दिन से उसे नैतिक दिखाई नहीं दिया, तो उसे थोड़ी चिंता हुई कि कहीं वो बीमार तो नहीं हो गया। जब से उसने नैतिक की और ध्यान देना शुरू किया, ऐसा पहली बार हुआ कि वो उसे पूरे दिन में एक बार भी न दिखा हो और अब तीन दिन हो गए। उसके पास नंबर तो था, पर उन दोनों में फ़ोन पर बहुत कम बातें हुई। जब कभी फ़ोन आया भी तो नैतिक का ही आया। भीनी असमंजस में थी कि क्या करे। एक बार तो भीनी ने सोचा कि छोड़ो उसे क्या लेना–देना नैतिक से, और भी कई लोग यहाँ–वहाँ मिलते ही रहते हैं, मगर फिर उसके दिल ने कहा, नहीं नैतिक उनमें से नहीं है। तो फिर वो कोई स्पैशल भी कहाँ है, उनमें कहाँ कोई प्यार–मुहब्बत की बात हुई। तो फिर उसे बैचेनी किस लिए हो रही है, आख़िर क्या रिश्ता है उसका नैतिक से। उहं, मेरी बला से। पर सोचने से दिल कहाँ मानता है। कहीं दिल न लगता भीनी का। दो दिन से मीता से भी मुलाक़ात नहीं हुई। पति के साथ कोर्ट केस के चक्कर में उसे कई बार छुट्टी लेनी पड़ती थी। तीसरे दिन जब मीता आई तो उसकी बात हुई।

मीता ने तो सीधे ही कह दिया, "इतनी बैचेनी है तो फ़ोन कर ले", पर भीनी कुछ फ़ैसला नहीं कर पा रही थी। एक दिन और निकल गया। अब तो भीनी का सब्र टूट चुका था। उसके ज़हन में वो गाना चल रहा था, "क्या यही प्यार है, दिल तेरे बिन कहीं लगता नहीं, वक्त गुज़रता नहीं"। दिल से मजबूर भीनी ने फ़ोन लगा दिया, तो किसी लड़की की आवाज़ सुनाई दी। उधर से हैलो, हैलो होती रही, पर उसने काट दिया। कौन हो सकती है वो, बहन, भाभी या कोई और। माँ तो नहीं, क्योंकि औरत की आवाज़ नहीं थी। भीनी आज छुट्टी पर थी। उसने मन ही मन कुछ सोचा। मुँह को स्कार्फ़ से लपेटा जैसे अक्सर लड़कियाँ स्कूटी चलाते वक्त लपेटती हैं, हैलमेट डाली और उसके घर की और चल पड़ी। उसे घर का पक्का पता नहीं

था, कुछ आईडिया सा था। उसने गली के तीन–चार चक्कर लगा लिए। कुछ पता नहीं चला। नैतिक के नाम के सिवाय कुछ नहीं जानती थी। यहाँ तक कि सरनेम भी नहीं।

जिस गली में नैतिक का घर होने का अंदेशा था, वहाँ सब घरों के बाहर नेम प्लेट या 'कुटीर' 'विला' वगैरह लिखा हुआ था, लेकिन इससे नैतिक के बारे में पता कैसे चले और पूछे भी किससे। थक–हार कर घर आकर लेट गई। उसे माँ की बात याद आ गई। माँ जब भी परेशान होती तो एक फ़िल्मी भजन की लाईनें गुनगुनाती है 'तुझसे जो न सुलझे तेरे उलझे हुए धंधे, सब छोड़ दे मालिक की रज़ा पर तू ऐ बंदे'। उसने मन ही मन कई बार ये लाईनें दोहराई, पर चैन कहाँ। सारी रात आँखों में कटी। भीनी समझ नहीं पा रही थी कि आख़िर ये हो क्या रहा है। प्यार की कोई बात नहीं, कभी कोई इकरार, इज़हार कुछ भी तो हुआ नहीं और वैसे भी अपनी माँ या आस–पास की सहेलियों, कुलीगस में अभी तक कोई ऐसी नहीं मिली जो शादी करके खुश हो। सब जैसे विवाहित जीवन को घसीट रही हैं। कईयों के मुँह से तो ये भी सुनने को मिला कि बच्चों के कारण निभा रही हैं, वरना तो अकेले ही जीवन सुखी था। इसका मतलब शादी सिर्फ़ मातृत्व सुख के लिए ही है। तभी तो कई देशों में बच्चे पहले होते हैं और शादी बाद में। वहाँ तो और भी बहुत सी अलग बातें हैं, लेकिन हमारे देश की बात और है।

नियम तो कुछ बड़े लोगों ने यहाँ तोड़े हैं, परंतु उन्हें सब माफ़ है। भीनी की सोच कहाँ से कहाँ पहुँच जाती, ये सब सोचकर मानों नैतिक को मन से निकालने की असफ़ल कोशिश करती। विचारों के झंझावत में ही रात गुज़र गई। सिर बहुत भारी था, मगर ऑफिस तो जाना था। विचारों में खोई सी ऑफिस पहुँची । रास्ते में दो बार दुर्घटना होते–होते बची। ऑफिस में एक ज़रूरी मीटिंग थी। बैठी तो रही, पर बुत की तरह। कुछ पल्ले नहीं पड़ा। वो तो शुक्र है, किसी ने उससे कुछ पूछा नहीं। शाम को तबियत ठीक न होने का कह कर थोड़ा जल्दी निकल आई। पार्किंग से निकल ही रही थी कि सामने बाईक पर नैतिक दिखा। स्कूटी को बीच में स्टार्ट ही छोड़कर वो दीवानों की तरह नैतिक की और भागी। वो अभी बाईक रोककर हैलमेट उतार ही रहा था कि भीनी पीछे से जाकर लता की तरह उससे लिपट गई।

"कहाँ थे इतने दिन, बताया भी नहीं, एक फ़ोन तक नहीं किया" और भी न जाने क्या क्या बोले जा रही थी भीनी। आसपास का ध्यान नहीं, पार्किंग में जितने भी लोग खड़े थे, सबकी निगाहें उन दोनों पर थी। बरसात से ज़्यादा बरस रही थी भीनी

की आँखें। उसकी ये हरकतें देखकर नैतिक धीमे से बोला, बैठो पीछे और भीनी के बैठते ही वो उड़ चला। वहीं किसी भले आदमी ने भीनी की स्कूटी को साईड में लगाकर बंद कर दिया और चाबी लगी रहने दी। किसी दूसरे ने फब्ती कसी 'अरे कौन कहता है हीर-रांझा, लैला-मजनूँ, नहीं रहे। उनकी रूहें यहीं पर हैं लिबास बदल कर और इसी प्रकार के कटाक्ष करते–करते भीड़ छँट गई।

नैतिक ने पार्क के सामने बाईक खड़ी की, शर्मिंदा सी भीनी चुपचाप नीचे उतरी। झुकी सी आँखें, मानों सारे प्रश्न ख़त्म हो चुके हों। नैतिक ने सामने से एक टहनी तोड़ी और घुटनों के बल झुककर बोला, "विल यू मैरी मी?"। नैतिक की इस हरकत पर भीनी को हँसी आ गई। कुछ देर पहले जहाँ उसकी आँखों से गंगा–जमुना बरस रही थी, अब ऐसे लग रहा था मानों कई फूल एकसाथ खिल गए हों। ख़ूबसूरती तो उसकी बेमिसाल थी ही, उस पर गालों के डिम्पल के भीतर छोटा सा तिल। नैतिक को शायर की ये पंक्तियाँ याद आ गई, वो बोला, " उनके गालों पर चमकता ये छोटा सा तिल, जैसे ख़ूबसूरती पर दरबान बिठा रखा हो"। यह सुनकर तो भीनी लाज से लाल हो गई। टहनी अभी भी नैतिक के हाथों में थी। उसने फिर कहा, "क्या मुझसे शादी करोगी"?

"लेकिन अभी तो हम एक दूसरे को अच्छे से जानते भी नहीं, तो फिर इतनी बैचेनी किस लिए।" कह कर नैतिक टहनी को थोड़े ग़ुस्से से नीचे फेंक कर चल दिया। "अरे रूको बाबा, कुछ सोचने का, घर में बात करने का मौका तो दो", लेकिन नैतिक नहीं रूका। "प्यार क्या घर वालों से पूछ कर किया था?" नैतिक चलते–चलते बोला और जो चार दिनों से दीवानी हुई जा रही थी और मेरे घर के आसपास क्या मम्मी से पूछकर मँडरा रही थी। "ओह, तो ये उसकी सोची–समझी प्लॉनिंग थी, मुझे तंग करने की और मेरा इम्तिहान लेने की।" बात बिगड़ती देखकर भीनी ने पास से फूल तोड़ा और भाग कर नैतिक के सामने आकर घुटनों के बल बैठती हुई बोली, "विल यू मैरी मी?" ओह येस- येस- येस कहते हुए नैतिक ने उसे फूल समेत गोदी में उठा लिया, क्योंकि ये पार्क का पिछला गेट था और उस समय कोई वहाँ था नहीं, नहीं तो यहाँ भी सीन बन जाता। अब क्या था। भीनी की माँ का मना करने का तो प्रश्न ही नहीं था, नैतिक के घर वालों को किसी भी तरह ये बराबरी का रिश्ता नहीं लगा और जात–बिरादरी भी अलग थी, लेकिन आजकल ये बातें कोई ज़्यादा मायने नहीं रखती। बच्चों की खुशी के आगे वैसे भी माँ–बाप झुक जाते हैं।

भीनी के घर की आर्थिक स्थिति के बारे में जानते हुए बारात में तो सिर्फ़ घर वाले ही शामिल हुए, बाद में नैतिक के परिवार ने होटल में बहुत बड़ी पार्टी दी। रिश्ता होने के बाद ही भीनी को पता चला कि उसका संयुक्त और काफ़ी बड़ा परिवार है। वैसे भी उनकी ज़्यादा बातें हुई ही कहाँ थी। सब कुछ बिना सोचे–समझे अपने–आप ही होता चला गया। नैतिक के घर में मम्मी–पापा के इलावा बड़ा भाई–भाभी, उनका एक पाँच साल का बेटा शुभम्, बहन तापसी जो कि कॉलेज में पढ़ती थी और दादा–दादी भी थे। वहीं पर नैतिक के चाचा का परिवार भी साथ ही रहता था। उनकी रसोई भले अलग थी, मगर आँगन एक ही था। सभी बहुत ही मिलजुल कर रहते थे, सांझा बिज़नेस था। कुल मिलाकर घर में सोलह लोग और हैलपर अलग थे। जब इतने लोग रहेंगे तो ज़ाहिर है उनसे मिलने–जुलने वाले भी आएंगे। कुछ महीने तो मौज़–मस्ती में गुज़र गए। घूमना–फिरना भी हो गया। तभी तो इसे मधुमास कहा जाता है, लेकिन असली परीक्षा तो इसके बाद शुरू होती है। नौकरी तो वो छोड़ ही चुकी थी, क्योंकि न तो नैतिक चाहता था और वो ख़ुद भी कहाँ दिलचस्पी लेती थी। उसे तो ऐश की ज़िंदगी चाहिए थी। इसका मतलब यह भी नहीं कि उसे नैतिक से प्यार नहीं था।

अच्छा ख़ासा पैसा होने के बाद भी परिवार की औरतें घर के काम ख़ास तौर पर रसोई का काम ख़ुद देखती थी। बड़ो का सम्मान, छोटों से प्यार, आने जाने वालों की आवभगत, देन लेन, त्यौहार सब चलता था। नौकर चाकर भी थे, या यूं कह सकते हैं कि नए और पुराने रीति–रिवाजों का सुमेल था। आधुनिकता थी, मगर बेहूदा अंग प्रदर्शन नहीं था। प्रेम विवाह तो चल जाता, लेकिन लिव इन की इजाज़त नहीं थी। एक सभ्य सुसंस्कृत परिवार। एक सुनिश्चित दिनचर्या थी सबकी। ये नहीं कि सब पाँच बजे उठ जाते, सब काम के हिसाब से था, लेकिन बिना कहे ही कुछ क़ायदे कानून थे, जिसका सब पालन करते। भीनी जहाँ से आई वहाँ सिर्फ़ माँ–बेटी ही थी। छोटा सा घर, ना कोई आए ना कोई जाए। रिश्तेदारों से मेलजोल नहीं। मुश्किल से गुज़ारा होता, वो तो भीनी की नौकरी के बाद घर के हालात कुछ सुधर गए थे। भले ही भीनी की पढ़ाई में दिलचस्पी कम थी और हालात भी ठीक नहीं थे, लेकिन कुछ विशेष गुण तो थे, जैसे कि उसे फ़ैशन की बहुत समझ थी, शॉपिंग बहुत बढ़िया करती। चीज़ों को सजाना–संवारना, थोड़ा बहुत इंट्रस्ट पेंटिंग में भी था, लेकिन उसको एक्सपोज़र नहीं मिला।

परिवार भले ही बड़ा था, लेकिन कोई टोका–टोकी नहीं। कुछ तो भीनी पहले ही आरामप्रस्त थी, अब तो ऐश ही ऐश थी। घर का काम–काज करना उसे पसंद नहीं था और न ही उसे आता था। फ़ैशन तो करती पर सलीक़े से। जब से उसने कमाना शुरू किया तब से उसका पार्लर का खर्च काफ़ी बढ़ गया था और अब तो कोई कमी नहीं। उसे ज़्यादा लोगों से घुलना–मिलना पसंद नहीं था। परिवार के लोग नाश्ता, लंच वगैरह डाईनिंग टेबल पर ही करते, लेकिन उसे अलग से कमरे में पसंदीदा सीरियल देखते हुए ही खाना पसंद था। बहुत कम वो सबके बीच बैठती। कभी किसी मेहमान के सामने आना भी पड़ता तो जल्दी से वहाँ से किसी न किसी बहाने से उठ जाती। परिवार वालों में ख़ासतौर पर इकलौती ननद तापसी ने घुलने–मिलने की बहुत कोशिश की, लेकिन जब सामने वाले का रिस्पांस न हो तो हर कोई पीछे हट जाता है। भीनी का ज़्यादातर समय अपने कमरे में ही गुज़रता या फिर माँ के पास चली जाती। मीता से मुलाक़ातों का सिलसिला जारी थी। वो घर भी आ जाती तो दोनों घंटों कमरे में बंद रहती।

वैसे मीता लड़की बहुत अच्छी और मिलनसार थी। आते–जाते कोई सामने से मिल जाता तो अच्छे से बात करती। भीनी के ऐसे रूखे व्यवहार से परिवार का दुखी होना लाज़मी था, लेकिन कोई कुछ न कहता। नैतिक और भीनी में प्यार था, परिवार के लिए यही खुशी बहुत थी। समय तो अपनी गति से चलता ही रहता है। दो साल बीत गए । भीनी बोर होने लगी। दोनों अभी बच्चा नहीं चाहते थे। नैतिक ने उसे अपने साथ या कुछ मनपसंद काम करने का सुझाव दिया। कम्प्यूटर का ज्ञान उसे काफ़ी था। उसने नैतिक के ऑफिस जाना शुरू कर दिया। गाड़ी चलानी तो उसने शादी के बाद तुरंत ही सीख ली थी, शादी की पहली सालगिरह पर ही नैतिक ने उसे बढ़िया गाड़ी गिफ़्ट की थी। उसे लाँग ड्राईव पर जाना बहुत पसंद था। काम के कारण नैतिक के पास समय की कमी रहती तो वो अपनी माँ या मीता के साथ घूम फिर लेती। नैतिक के माँ–बाप को कई बातें बुरी लगती और वो ठीक भी थी, लेकिन उन्होंने चुप रहना ही ठीक समझा। वो नहीं चाहते थे कि उनके कारण दोनों में लड़ाई हो।

भीनी की माँ की तबियत कुछ ठीक नहीं रहती थी, मजबूरन उसे काम छोड़ना पड़ा। दोनों घुटनों का ऑपरेशन हुआ। आमदन का कोई साधन तो था नहीं, भीनी ही घर ख़र्च चलाती। नैतिक के पास पैसों की कोई कमी नहीं थी, कमी थी तो समय की। चूंकि भीनी ख़ुद ऐश करती थी तो उसे अब मायका अच्छा नहीं लगता।

पुराना सा घर, कोई सुख–सुविधा नहीं। घर्र–घर्र करते दो पंखे, पुराना सा कूलर। उसे तो जैसे एक काम मिल गया। ससुराल की परवाह उसे थी नहीं। वैसे अब वो भी उसकी और ध्यान नहीं देते थे। हर एक की अपनी ज़िंदगी होती है। बुज़ुर्ग दादी कभी–कभार उसे बच्चे के लिए टोकती थी, पिछले साल वो भी चल बसी। नैतिक मस्त तबियत का था और वो भीनी से बहुत प्यार करता था। एक दो बार माँ ने कुछ कहना चाहा, लेकिन उसका उखड़ा मूड़ देखकर वो चुप रही। कभी–कभार भीनी ऑफिस चली जाती या घर से भी ऑनलाइन कुछ काम कर देती।

नैतिक समझ चुका था कि उसकी काम में कोई दिलचस्पी नहीं है। भीनी का सारा ध्यान अपनी माँ की तरफ़ ही रहता। धीरे–धीरे करके भीनी ने अपने घर की कायापलट दी। सब कुछ नया। फ्रिज से लेकर परदे, ए.सी., टी.वी., यानि कि हर सुख–सुविधा। माँ की ज़िंदगी बहुत तंगी में गुज़री थी तो भीनी ने तो माँ को नए कपड़े और कुछ ज़ेवर भी ख़रीद दिए और वो भी हीरे के। पैसे तो नैतिक से ही निकल रहे थे। भीनी का पार्लर का ख़र्च भी कम नहीं था। नैतिक को कोई एतराज़ नहीं था, लेकिन वो ये भी चाहता था कि वो उसके परिवार का भी ध्यान रखे, ख़ास तौर पर माँ का। कुछ समय पहले माँ की आँख का ऑपरेशन हुआ, चाची का घुटने का। तापसी की शादी हुई, दादी की मौत हो गई।

लेकिन भीनी को कुछ मतलब नहीं। एक दो बार हालचाल पूछ लिया और काम ख़त्म। माना कि हैल्पर थे, पर घर वालों सा अपनापन नहीं मिलता।

हमारे देश में शादी सिर्फ़ लड़के–लड़की का मेल नहीं, दो परिवारों का मिलन भी होता है और अब तो वो नैतिक की परवाह भी नहीं करती थी। कई बार नैतिक कड़वा घूँट पी कर रह जाता। उसकी इच्छा होती कि जब वो घर पर आए तो भीनी उसे घर पर मिले, उसके लिए चाय बनाए, मिल कर चाय पिएं। कभी इकट्ठे घूमने जाएँ, मगर अब तो एक कमरे में रहना भी जैसे मजबूरी हो। पहले नैतिक के पास भीनी के लिए समय नहीं था और अब भीनी के पास नैतिक के लिए समय नहीं। वो या माँ के पास होती या सहेलियों के साथ। जेब में पैसे और हाथ में गाड़ी तो सहेलियों की क्या कमी। पता नहीं किस में कमी थी, बच्चा भी नहीं हुआ। एक दो बार डॉक्टर के पास गए तो उसने कुछ लंबा इलाज बताया। कभी एक नहीं फरी तो कभी दूसरा नहीं। दस साल बीत गए। परिवार बढ़ गए तो बँटवारे भी हो गए। भीनी नैतिक अलग घर में रहने लगे। मम्मी–पापा बड़े बेटे के साथ थे। भीनी ने अगर किसी के साथ बुरा व्यवहार नहीं किया तो कुछ अच्छा भी नहीं किया था। इसी बीच

मीता की अपने पति से सुलह हो गई और वो विदेश चली गई। नैतिक और भीनी के प्यार में न जाने कब कैसे दराड़ें पड़ गई, कुछ पता न चला। नैतिक ने कई बार कोशिश की कि भीनी कोई पसंदीदा काम करे, पैसों के लिए न सही, दिल ही लगा रहेगा, लेकिन वो समझ चुका था कि भीनी काम करना ही नहीं चाहती। उसने पार्लर खोलने का सुझाव भी दिया, लेकिन उसके लिए सीखना भी तो ज़रूरी है। कुछ दिन जाकर बंद कर दिया। पेंटिंग के लिए लाए रंग मुँह चिढ़ा रहे हैं।

और भी तीन चार काम शुरू किए लेकिन सब अधूरा । नैतिक ने नोटिस किया कि एक–दो हफ़्ते के बाद ही भीनी उब जाती है किसी भी काम से। सबसे ज़्यादा उसे अपने–आप से प्यार था। महीने में दस दिन तो या वो पार्लर में होती या ब्यूटिशियन घर पर होती। उसे नैतिक के खाने–पीने की, उसके कपड़ों की कोई चिंता नहीं थी। सब काम मेड कर रही थी। कभी किसी कपड़े पर मशीन में धोते हुए दाग लगे पड़े होते तो कभी बटन ग़ायब होते। नैतिक सोचता कि शायद घर में बच्चा होता तो स्थिति कुछ और होती, लेकिन ग़लतियाँ तो दोनों और से हुई। करोना में नैतिक का काम भी कम हो गया था। दोनों ने ही ध्यान नहीं दिया। अब जा कर देखा तो जमा पूंजी भी कुछ ख़ास नहीं थी। दोनों हाथों से लुटाए पैसे, जब भी नैतिक काम से विदेश गया तो भीनी साथ गई। दो बार तो अपनी मम्मी को भी ले गई, जबकि सास बेचारी मन मसोस कर रह गई। पैसा होते हुए भी नैतिक की माँ का विदेश घूमने का सपना पूरा नहीं हुआ। पिता जी तो पहले ही चल बसे थे। कई बार नैतिक की माँ उसके घर रहने आई, लेकिन भीनी का शुष्क व्यवहार देखकर वापिस बड़े बेटे के पास चली गई। बड़ी बहू का व्यवहार बहुत अच्छा था और दो प्यारे बच्चे हर समय दादी के आगे–पीछे।

सास से कहती तो कुछ नहीं थी भीनी, पर करती भी कुछ नहीं थी। देर तक सोए रहना। भले ही सास के आजकल पाँव दबाने का जमाना नहीं रहा, सास को माँ भी न समझो, एक मेहमान की तरह, एक बुज़ुर्ग की तरह ही उसका ध्यान रखो, पर भीनी से इतना भी न होता। नैतिक का स्वभाव भी अजीब हो गया। चिड़चिड़ापन उसमें आ गया था। सुबह उठ कर तो उसका मूड़ बिगड़ा ही होता। माँ तो माँ होती है, बच्चे के लिए कई बार कह चुकी थी। कुछ भी न हो प्यार तो रहे, वो भी न जाने कब का उड़न छू हो चुका था। भीनी तो अपनी ही दुनिया में अब भी मस्त थी। नैतिक के साथ बिस्तर पर भी एक सामान की तरह होती। दोनों एक घर में रहते हुए अपनी–अपनी ज़िंदगी जी रहे थे, लेकिन कब तक, साथ तो हर किसी को चाहिए।

नैतिक के पास जो स्टाफ़ था, उसमें माही नाम की एक लड़की थी। ठीक सी थी मगर आकर्षक और बहुत एक्टिव। शादीशुदा एक बच्चे की माँ। पहले तो नैतिक की उससे सिर्फ़ काम की ही बातें होती थी, लेकिन अब किसी न किसी बहाने से उसे बाहर भी मिला।

पता नहीं माही पति से खुश नहीं थी या बॉस को खुश रखना चाहती थी वो भी कभी मिलने से मना न करती। भीनी को इस बात की कहीं से भनक लग चुकी थी। बताने वाले ने शायद बात को कुछ ज़्यादा ही बढ़ा–चढ़ा कर बताया था। मनोज नामक ये वो शख़्स था जो कभी नैतिक के ऑफिस में काम करता था, लेकिन किसी कारणवश उसे फ़ायर कर दिया गया था। उसे भीनी और नैतिक के बिगड़ते संबंधों के बारे में कुछ पता चल चुका था तो उसे भी बदला लेने का मौका मिल गया। भीनी ने उसकी बातों पर यक़ीन कर लिया और दोनों को इकट्ठा देखा भी। कहते हैं न जब एक बार दराड़ पड़ जाए तो रिश्तों की डोर टूटते देर नहीं लगती। अब तो जैसे आमने–सामने की लड़ाई। भीनी ने माही को लेकर इल्ज़ाम लगाए, जबकि रिश्ता सिर्फ़ दोस्ती तक ही सीमित था। नैतिक के मन में कहीं न कहीं भीनी के लिए अभी भी सॉफ्ट कार्नर था। उसे भीनी की आर्थिक स्थिति का पता था। शादी के बाद उसने दोनों हाथों से पैसा लुटाया। जो शौक़ पहले नहीं पूरे हुए सब पूरे किए। माँ को हर दम साथ रखा। कपड़े, गहने, घूमना, फिरना, पार्लर, जिम, विदेश यात्रा। नैतिक अपने काम में व्यस्त रहा।

भीनी की माँ ने भी उसे नहीं समझाया। कहती भी कैसे, उसका घर भी तो वही चला रही थी। वैसे भी स्वभाव से वो इतनी डोमिनेटिंग और उच्श्रृंखल हो चुकी थी कि किसी की भी नहीं सुनती थी। नैतिक की हरकतों को देखते हुए उसके परिवार वाले भी पीछे हट गए। दोनों में हर रोज़ लड़ाई, कलह–क्लेश रहता। बारह साल की प्यार भरी शादी का ये अंजाम। कहते हैं जब एक बार परतें खुलनी शुरू हो जाएँ तो खुलती ही चली जाती हैं। नौबत यहाँ तक आ गई कि दोनों ने अलग होने की सोची। ज़्यादा लोगों को तो पता नहीं था, लेकिन दोस्तों, मित्रों तक तो बात पहुँच ही चुकी थी। कईयों ने समझाने की कोशिश की, मगर वो दोनों समझना ही नहीं चाहते थे। एक बार तो तलाक़ के लिए वक़ील से बात भी कर ली। वक़ील जानपहचान वाला भला आदमी था। उसने समझाया और सुझाया कि तुम कुछ समय अलग रहो और किसी अच्छे परामर्शदाता की सलाह लो।

पता नहीं क्यों दोनों में ही जैसे इगो आ गई हो। बीच–बीच में कुछ ठीक भी होते, मगर फिर लड़ पड़ते। बाकी सब तो अपने में मस्त थे, लेकिन दोनों की माएँ बहुत दुखी थी। माँ तो माँ ही होती है, हर हाल में औलाद का भला ही सोचती है, लेकिन कोई सुने तब ना। दोनों ही नाती–पोते का मुँह देखने को तरस रही थी, लेकिन यहाँ तो रिश्ता ही टूटने की कगार पर था। अभी तक ये बात अंदर ही अंदर थी। नैतिक भी जैसे ले–देकर भीनी से छुटकारा पाना चाहता था और भीनी भी अब पुरानी वाली षोडशी नहीं थी। कमाई करना तो उसके बस में नहीं था, वो तो नैतिक से पैसा लेकर ही बाकी जीवन ऐश करना चाहती थी। उसके पास न तो कुछ ख़ास पढ़ाई थी और मेहनत करना उसे भाता नहीं था। माँ के घर रहना उसे पसंद नहीं था।

सब मिलने–जुलने वालों ने अब समझाना बंद कर दिया। लड़–झगड़ कर, एक दूसरे पर इल्ज़ाम लगा कर दोनों थक चुके थे। वक़ील के समझाने पर एक दिन शांतिपूर्वक दोनों ने फ़ैसला किया कि बिना कोई तमाशा खड़ा किए अपनी–अपनी राह पर चलते हैं। "वो अफ़साना जिसे अंजाम तक लाना न हो मुमकिन, उसे इक ख़ूबसूरत मोड़ देकर छोड़ना अच्छा" का सोचकर दोनों ने कुछ समय अलग रहने का फ़ैसला किया। भीनी ने नौकरी तलाशनी शुरू कर दी। पास में ही किसी दूसरे शहर में बीस हज़ार की नौकरी और अच्छा पी जी मिल गया। इसमें भी नैतिक ने ही मदद की। नैतिक ने उसे हर महीने काफ़ी अच्छी रकम देने का वायदा भी किया ताकि वो और उसकी माँ भी अच्छे से रह सकें। चार–छः महीने बिना मिले–जुले रहने का फ़ैसला हुआ। कोई फ़ोन नहीं। कुछ बहुत ही ज़रूरी हुआ तो मैसेज। घर छोड़ते वक्त भीनी की आँखों में आँसू थे, जिन्हें वो छुपाने का असफ़ल प्रयास कर रही थी। नैतिक ने भी उसे पैकिंग में वो हर चीज़ रखवाई जिसकी वो आदी थी। भीनी ने घर को पूरी तरह संवारा, मेड को अनगिनत हिदायतें दी, नैतिक का सारा सामान ख़ुद व्यवस्थित किया। उसे पता था कि नैतिक को सब कुछ बिखेरने की आदत है।

दोनों का मन अंदर से बहुत उदास था, लेकिन किसी ने पहल नहीं की। पिछले कई महीनों से उनकी तकरार लड़ाइयाँ, थम ही नहीं रही थी। अब किसी को पता लगे तो लगे, लेकिन उन्होंने अपनी और से सभी को यही बताया कि भीनी अपने ख़ुद के काम से पहचान बनाना चाहती है। वैसे घर में जो भी हो बाहर उसकी इमेज बहुत अच्छी थी। नैतिक का परिवार इतना संस्कारी था कि उन्होंने तो भीनी को सिर आँखों पर रखा। कभी किसी से उसकी कोई कमी उजागर नहीं की। वो यही सोच कर एक तरफ़ हो गए कि सबका अपना–अपना स्वभाव है। वो दोनों खुश थे, इसी

में वो भी खुश थे, लेकिन जब मिंया–बीवी में ही न बने तो कोई क्या करे। अब लोगों का मुँह तो बंद हो नहीं सकता और ज़्यादा परवाह करने की ज़रूरत भी नहीं होती। जब अपने ही रिश्ते दाँव पर लगे हों तो दूसरों के बारे में क्या सोचना।

दोनों का ये विचार था कि अलग रहकर ही एक दूसरे की कीमत पता चलेगी। दोनों को स्पेस की ज़रूरत थी। कुछ दिन सब ठीक रहा। अलग रह कर दोनों को सुकून मिला। भीनी भी नए ऑफिस में मन लगाने का प्रयास करती। बारह साल घर के ऐशो–आराम के बाद ये सब बहुत मुश्किल था। सुबह जल्दी उठकर नाश्ता बनाना, तैयार होना, ऑफिस में काम करना, सबसे बड़ी बात लोगों की गंदी नज़रों का समान करना। शादी से पहले की बात और थी।

काफ़ी समय उसने नैतिक के ऑफिस में काम किया, वहाँ तो वो मालकिन थी। वहाँ तो उसे पता ही नहीं चला कि ख़र्च क्या होता है। काम कैसे किया जाता है। घर में हर सुख–सुविधा थी। कुछ भी खराब होता तुरंत ठीक करवा दिया जाता। चार दिन से ए.सी. बंद पड़ा है, कितनी बार पी जी ऑनर को बोल चुकी है। वैसे भी वो कितनी आवाज़ करता है। उसके पास पैसे अब भी पड़े थे, लेकिन उसका न कुछ ख़रीदने को मन करता न पहनने को। अब तो वो माँ को भी बहुत कम फ़ोन करती। जब करती माँ ही करती। दो महीने में ही उसे अपनी गल्तियों का अहसास होने लगा। अगर नैतिक व्यस्त रहा तो उसी की कमाई पर उसने ऐश की। परिवार वालों की एक–एक बात उसे याद आती। अपने कमरे में मेड से वो सारे घर के काम छुड़वाकर कभी मालिश करवाती तो कभी अपनी अलमारी ठीक करवाती तो कभी सिर पर तेल लगवाती। बिना किसी रोकटोक के घूमती। किसी की मजाल नहीं कि उसकी और आँख उठाकर देखे। उसके ससुराल के परिवार का समाज में उच्च स्थान है, रूतबा है, नैतिक का नाम ही बहुत था उसके लिए।

जैसा कि उसने सोचा था, वो दूसरी शादी कर लेगी, क्या इतना आसान है सब कुछ। इतने साल बच्चा न होना भी बहुत बड़ा कारण है। अब उसे नैतिक और उसके परिवार की ख़ूबियाँ और अपनी कमियाँ नज़र आ रही थी। अब पैंतीस साल की उम्र में दूसरी शादी करना। न भी करे तो नैतिक से उसे बहुत कुछ मिल जाएगा, लेकिन अकेली क्या करेगी। उसने मीता से बात की जो कि अब विदेश में थी। वो अब बहुत खुश थी और उसने तो यही सलाह दी कि पहला प्यार पहला ही होता है। उसे भुलाया नहीं जा सकता। कोई भी एक आदमी दूसरे के मन मुताबिक नहीं हो सकता, सगे बहन–भाई नहीं, पति–पत्नी तो आते ही अलग परिवेश से, लेकिन जब

इकट्ठे रह रहे हैं तो कुछ तो एडजस्टमैंट करनी ही होती है। माना कि अब वो पुराना घूँघट वाला जमाना नहीं रहा, औरतें अपने हक़ों के प्रति जागरूक हो रही हैं, वगैरह वगैरह, लेकिन भारतीय परिवेश की, हमारी संस्कृति की कुछ ऐसी अच्छी बाते हैं जो कि विदेशी मानते हैं और हम उनसे दूर जा रहे हैं।

भीनी की समझ में ख़ुद ही नहीं आ रहा था कि ये स्थिति आई कैसी। "प्यार की राह के हमसफ़र, क्यूं बन गए अजनबी"। इधर नैतिक का भी यही हाल। अब उसे भी अपनी ग़लतियाँ नज़र आने लगी। अपने कामों में इतना खो गया कि वो भूल ही गया कि कोई है घर में जो उसका इंतज़ार कर रहा है। कोई ऐसा भी है जो अपना सब कुछ छोड़कर उसके साथ चला आया। कभी ज़िंदगी की हर खुशी ही उसके साथ थी। अकेला घर खाने को दौड़ता। माँ भी वहाँ नहीं रहना चाहती थी। पहले–पहल भीनी उसका कितना ध्यान रखती थी। उसको याद आया, एक बार जब रात को उसकी तबियत खराब हो गई थी तो अकेले ही कितनी तेज़ गाड़ी चलाकर हस्पताल पहुँची। उसके घर वाले भी बाद में पहुँचे। माना कि कुछ कमियाँ थी, लेकिन कमियाँ किस में नहीं होती। अगर भीनी उसके घर वालों के साथ ज़्यादा मिक्सअप नहीं हुई तो वो भी उसके घर कितनी बार गया। भीनी के कई बार चाहने पर भी वो कभी वहाँ रात को नहीं रहा। गया ही बहुत कम।

वैसे तो भीनी के मायके में किसी का ज़्यादा आना नहीं था, फिर भी रिश्तेदारी में दो तीन बार शादी में भीनी ने उसकी कितनी मिन्नतें की थी चलने के लिए, लेकिन वो नहीं गया। उदास सी भीनी अपनी माँ के साथ ही गई। ऐसी बहुत सी बातें जो अब उसे याद आ रही थी। हर समय बिख़रा घर, अल्मारी, सूखे पौधे उसे भीनी की याद दिलाते। मेड भी कितना काम करती। वैसे भी अकेले घर में कोई औरत तो काम करने को तैयार न होती और अगर आदमी रखता तो और मुसीबत खड़ी हो जाती। वो जो धनी राम था, शराब पीकर ही पड़ा रहता और वो जो बंसी लाल था, उसे तो लड़कियाँ छेड़ने के चक्कर में हवालात ही जाना पड़ा। बदनामी अलग से हुई। भीनी के होते उसे घर–गृहस्थी की कोई चिंता ही नहीं थी। सब बिल समय पर ऑनलाईन कर देती। अब उसे समझ में आया कि औरत का बाहर जाकर नौकरी करना ही काफ़ी नहीं, घर संभालना भी फ़ुल टाईम जॉब है।

ग़लतियाँ तो दोनों को दिखाई दी, लेकिन दोनों को एक ग़लती कॉमन लगी और वो थी घर में बच्चा न होना। पहली बात तो दोनों की ही दिलचस्पी नहीं थी, शायद क़ुदरत की भी यही मर्ज़ी थी। दोनों को ही अब ये कमी लग रही थी। कितनी

बार घर वालों ने समझाया कि बच्चे तो माँ–बाप के बीच पुल होते हैं। अपना न हो तो गोद भी तो लिया जा सकता है। भीनी को अपनी एक और ग़लती नजर आई और वो थी बचत न करने की आदत। ख़र्च की तो कोई सीमा ही नहीं होती, लेकिन बुरा वक्त भी कहाँ बता कर आता है और उसने अब ये भी महसूस किया कि माँ की देखभाल उसकी जिम्मेदारी है न कि नैतिक की या उसके ससुराल वालों की । भले ही कोई कुछ न कहे, लेकिन अपना फ़र्ज़ तो अपना ही है और वो कौनसा नहीं कमा सकती थी। उसे यह भी अहसास हो गया था कि भले ही पैसा बहुत कुछ है, मगर सब कुछ नहीं। थोड़े कम पैसों से तो काम चल सकता है, लेकिन प्यार, विश्वास के बिना नहीं। किसी दूसरे के सिर पर ज़रूरतें तो पूरी हो जाती हैं, मगर शौंक तो अपने पैसे से ही पूरे करने चाहिए। माँ ने कितना समझाया पर वो समझे तब ना।

पछता अब दोनों रहे थे, परंतु पहल कौन करे। एक–एक दिन काटना मुश्किल हो रहा था। चार महीने बाद दोनों ने वक़ील से मिलना था। अनमने से दोनों पहुँचे, वकील ने क्या बातें की, कुछ समझ नहीं आ रहा था। वकील ने भी चुपचाप उनके आगे साईन करने के लिए काग़ज़ कर दिया। दोनों के मुँह से इकट्ठे ही निकला "एक मौका और" और दोनों ज़ोर से हंस पड़े। वक़ील भी उनकी हँसी में शामिल होते हुए बोला, आप दोनों एक दूसरे में इतने खोए हुए थे कि किसी ने भी ये नहीं देखा कि मैंने कौनसा काग़ज़ आपके सामने रखा है। 'अरे, ये तो अख़बार का टुकड़ा है' और दोनों हंसते हुए हाथों में हाथ डाले निकल पड़े बी बर्थ, डी डैथ के बीच सी यानि की चुआईस को थामे।

■

16

बेटी, बहन, बुआ...

'डोली आ गई, माँ जल्दी करो, भाभी भैया कार से उतर चुके हैं, अभी तक आरती की थाल तैयार नहीं हुई, चलो हटो, तुमसे न होगा'

पूनम लगातार बोले जा रही थी। उसने फटाफट माचिस से दिए को जगाया। माँ को माचिस ही नहीं मिल रही थी, बारात में जाते समय मेड संतोष को बोल के गए थे कि जब वो फ़ोन करे तो सब सामान तैयार रखे, लेकिन संतोष बेचारी भी क्या करे, शादी वाला घर, इतने सारे काम। कोई उसे यहाँ आवाज़ लगा रहा है तो कोई वहाँ। किसी को कुछ नहीं मिल रहा तो किसी को कुछ। काम वालियां तो दो और भी हैं, पर संतोष घर की पुरानी नौकरानी है। उसे सब पता है, किसी की क्या ज़रूरत है, कौनसी चीज़ कहाँ पर रखी है, फिर भी कहीं न कहीं गड़बड़ हो ही रही है।

नई बहू रिनी का गृह प्रवेश हो गया। सब अच्छे से निपट गया। धीरे–धीरे सब मेहमान भी चले गए। वैसे तो शादी के लिए तीन दिन कहीं बाहर बुकिंग थी, सभी रस्में वहीं पर हुई। घरों में इतनी जगह भी नहीं होती और आजकल यही चलन में है। कांता प्रसाद के इकलौते बेटे वैभव की शादी बहुत धूमधाम से हुई। शादी में उनके भाई और दो बहनों के परिवार के इलावा बहुत से रिश्तेदार और मित्र भी शामिल हुए। माँ भावना के तो पाँव ही ज़मीन पर नहीं पड़ते थे और वैभव की दोनों छोटी बहनें पूनम और पल्लवी भी बेहद खुश थी। भाभी के रूप में एक सहेली जो मिल गई थी। दोनों बहनें हर समय भाभी के आगे–पीछे घूमती, उसकी हर ज़रूरत का ध्यान रखती। जल्दी ही घर में पीहू और साहिल का जन्म हो गया। दादा–दादी की झोली तो जैसे ख़ुशियों से भर गई।

समय अपनी गति से चलता रहा। अगले कुछ सालों में पूनम और पल्लवी की भी शादी हो गई। पूनम तो उसी शहर में थी, जबकि पल्लवी के ससुराल दूसरे शहर में थे। शादी के कुछ साल बाद तो पूनम और पल्लवी मायके काफ़ी आती रहती, लेकिन फिर कुछ कम हो गया और बाद में तो जैसे छूट ही गया। कुछ तो घर–गृहस्थी की व्यस्तता और कुछ रिश्तों में दूरियाँ। समय के साथ–साथ कांता प्रसाद और भावना बूढ़े हो चले थे। रिटायर तो कब के हो चुके थे। उनकी पैंशन नहीं थी। एक–मुश्त पैसा मिला तो छोटी बेटी की शादी में ख़र्च हो गया। वैभव और पूनम

की शादी तो उनकी नौकरी में ही हो गई थी, मगर पल्लवी की शादी बाद में हुई। एफ. डी. का ब्याज आ जाता था। भगवान का शुक्र था कि ख़ुद का अच्छा, बड़ा और खुला मकान था। बढ़िया मान–सम्मान वाला मध्यम वर्गीय परिवार था।

बात करते हैं बहू रिनी की। अच्छे घर की सुंदर, पढ़ी–लिखी लड़की थी। तीन बहनें और दो भाईयों में मंझली थी। मायका उसी शहर में था। ससुराल में उसे भरपूर प्यार मिला। कहीं कोई कमी नहीं। दोनों बच्चों के जन्म के समय हर तरह से उसका पूरा ख़्याल रखा गया था। शादी से पहले और कुछ समय बाद भी उसने प्राईवेट नौकरी की थी, लेकिन बच्चों के बाद सब छूट गया। वैभव की अच्छी तनख़्वाह थी। रिनी का सारा परिवार उसी शहर में ही था यानि की दोनों बहनें और दोनों भाई । एक भाई अलग रहता था और एक माँ–बाप के साथ । पहले–पहल तो सब ठीक रहा, लेकिन अब रिनी के स्वभाव में परिवर्तन होने लगा। चूँकि सास–ससुर अब बूढ़े हो चले थे और ससुर की आमदन भी बहुत कम थी। उम्र के साथ–साथ दवाइयों का ख़र्च भी बढ़ जाता है और शरीर में ताकत कम हो जाती है।

अब उसे नन्दों का आना भी नहीं सुहाता था। दोनों के दो–दो बच्चे थे। पूनम तो लोकल ही थी तो अक्सर आना–जाना लगा रहता। भाभी के बदलते तेवर देखकर उसने अब आना बहुत कम कर दिया था, बेटियों का मायके से मोह होना स्वाभाविक ही है। जहाँ उम्र के इतने साल गुज़ारे हों, वहाँ जाने का मन तो होता ही है और फिर माँ–बाप को मिलने का मोह छूटे भी तो कैसे। पहले तो वो सपरिवार जाती थी, कई बार तो माँ उसके सास–ससुर को भी खाने पर बुलावा भेजती, पर बदलते हुए हालात को देखकर वो अकेली ही एक दो घंटों के लिए आती । बच्चे जब नाना–नानी से मिलने की बहुत ही जिद्द करते तो लेकर आती और जल्दी ही चली जाती। पीहू और साहिल बुआ के बच्चों के साथ मिलकर बहुत खुश होते, खूब खेलते, मगर वो खुशी थोड़ी देर की होती। अब चार बच्चे इकटठे होंगे तो धमाचौकड़ी मचाना, सामान इधर–उधर फैलना, थोड़ी बहुत गंदगी मचाना भी होगा, मगर रिनी से यह सब सहन न होता। वो पूनम के बच्चों को तो कुछ न कहती, सारा ग़ुस्सा अपने बच्चों पर निकालती। यहाँ तक कि पिटाई भी कर देती। पूनम सब समझती थी, इसलिए उसने आना–जाना लगभग बंद ही कर दिया था। कई बार मम्मी–पापा को कहा कि वो उसके घर कुछ दिन चल कर रहें, लेकिन इस बात के लिए वो कभी तैयार न होते।

पूनम की मम्मी तो कभी–कभार बेटे के साथ जा आई, लेकिन पापा तो कभी दिन–त्यौहार देने ही गए होंगे। रिनी भी बहुत कम जाती थी। बस यूँ समझो कि किसी के जन्मदिन या फिर राखी, दीवाली पर ही रिश्ते निभाने की रस्म अदा होती। ज़रूरी काम के लिए मोबाईल होता ही है। पल्लवी चूँकि दूसरे शहर में थी तो बच्चों की छुट्टियों में आठ–दस दिन के लिए आ जाती थी। रिनी से जब मेहमान नवाज़ी बर्दाश्त न होती तो वो किसी बहाने से बच्चों को लेकर मायके चली जाती। एक–दो बार जब ऐसा हुआ तो पल्लवी सब समझ गई। पहले तो जब पल्लवी आती तो पूनम भी आ जाती। सब बच्चे–बड़े कितने खुश होते थे। मम्मी–पापा के चेहरे तो नाती–पोतों को देखकर जैसे अपनी बीमारी ही भूल जाते। अब बच्चें है तो फ़रमाइशें भी होंगी, घूमना–फिरना भी होगा। बच्चों का मामा–मामी से भी बहुत लगाव था। रिनी पहले करती भी बहुत थी। पूनम, पल्लवी भी घर के काम में पूरा हाथ बँटाती थी। पूनम को घर के कामों का बहुत शौक़ था, सिलाई–कढ़ाई भी जानती थी। रिनी को ऐसा कुछ नहीं आता था। भले ही बाज़ार से सब कुछ मिलता है, लेकिन हाथ से बनी चीज़ों की बात ही और होती है।

दूसरी तरफ़ पल्लवी को पार्लर का काम आता था। वो ख़ाली समय में पूनम, रिनी का फेशियल, बालों की मसाज, नेल पेंट आदि करती। यहाँ तक कि माँ के मना करने पर भी उसके बालों में कलर, मेहंदी, पेडीक्योर भी कर देती। आठ–दस दिन खुशी–खुशी बीतते, फिर पल्लवी के पति लेने आ जाते तो दो दिन ज़रूर रूकते और भी रौनक़ बढ़ जाती। सब खुशी–खुशी चल रहा था, लेकिन पिछले साल से वैभव की माँ की तबियत खराब रहने लगी तो घर का माहौल कुछ बदल सा गया। जब वैभव, पूनम और पल्लवी की शादी नहीं हुई थी तो उनकी दोनों बुआ भी भाई के घर आती–जाती थी, लेकिन दादा–दादी के मरने के बाद कम हो गया, फिर धीरे–धीरे बंद हो गया। वैभव की शादी के बाद वो कभी नहीं आई। कोरियर से राखी आ जाती और मनीऑर्डर से पैसे भेज दिए जाते। उस जमाने में मनीऑर्डर का ही चलन था। धीरे–धीरे पैसे भेजने भी बंद हो गए, मगर दोनों बुआ की राखी ज़रूर आती थी। वैभव का कई बार मन होता कि बुआ को मिले, वो आएं, पर बेटियाँ तभी आती हैं जब उनकी क़दर हो। यह ठीक है कि समय के साथ–साथ हर कोई अपनी घर–गृहस्थी में रम जाता है, मगर यादें तो मन में रहती ही हैं और औरतों के मन से तो पीहर की यादें कभी जाती ही नहीं।

रिनी के बदले हुए व्यवहार को देखते हुए पूनम और पल्लवी का आना भी बहुत कम हो गया था और कुछ उनके बच्चे भी अब बड़े हो रहे थे, घर की ज़िम्मेदारी, बच्चों की पढ़ाई, समय ही कहाँ था। पूनम आती भी तो कुछ घंटों के लिए। दूसरी तरफ़ अब रिनी के मायके वालों का आना–जाना बहुत बढ़ गया था। ख़ास तौर पर रिनी की बहनों का। हर हफ़्ते ही उनका मिलना–जुलना चलता रहता। कभी शॉपिंग, तो कभी किट्टी, या फिर किसी का जन्मदिन, वर्षगांठ। वैभव को इन सब से कोई एतराज़ नहीं था, लेकिन बहनों के साथ रिनी का व्यवहार उसे अच्छा नहीं लगता था। उसने कई बार राखी पर पल्लवी को बुलाना चाहा, परंतु वो टाल जाती। माँ–बाबूजी की बीमारी पर ही वो दो–चार बार आई। राखी पर भी पूनम के घर वैभव ही जा आता, वहीं पर ही वो अपनी और पल्लवी की और से भी राखी बाँध देती। रिनी से बात करने का कोई लाभ नहीं था, क्योंकि जब भी उसने बात की, घर में क्लेश ही हो गया। माँ–पापा मन मसोस कर रह जाते, परंतु उन्होंने वैभव को समझा दिया था। इसी बीच पल्लवी के सास–ससुर के देहांत होने पर सबको जाना पड़ा। न चाहते हुए जग दिखावे के लिए रिनी भी गई। इसी बीच पूनम के घर भी साल में एक–दो बार दिखावे के लिए जाना पड़ता।

तीनों सगे बहन–भाईयों में नाम–मात्र के रिश्ते ही बचे थे। समय के साथ–साथ पीहू और साहिल बड़े हो गए थे। वैभव की माता जी भी भगवान के घर चली गई। पापा की उम्र भी काफ़ी हो चली थी, लेकिन उनकी सेहत काफ़ी अच्छी थी। वो किसी से कम ही बात करते थे, बहुत मन होता कि बेटियों, नातियों से मिलें, लेकिन जा नहीं पाते थे। अकेले में कई बार बहन–भाईयों की याद आती, मगर किससे कहते। इस बीच एक बहन भी चल बसी थी। एक भाई–बहन थे, जिनसे कभी–कभार फ़ोन पर बात हो जाती। उनके बच्चे भी अपनी ज़िंदगी में व्यस्त थे। बाईस साल की उम्र में ही पीहू की शादी तय हो गई। उन्हीं दिनों करोना का प्रकोप छा गया। बहुत ही सादे ढंग से शादी हुई। बहुत कम लोग आए, पूनम और पल्लवी दोनों ही नहीं गई। रिनी को अब मन ही मन महसूस हुआ कि परिवार क्या होता है। असली ख़ुशियों का मज़ा तो अपनों के साथ ही मिलता है। अब उसे लगा कि काश पीहू की शादी धूमधाम से होती और सबसे मिलना होता। दो साल बीत गए। करोना लगभग ख़त्म हो गया। फिर से चहल–पहल शुरू हो गई। राखी का त्यौहार आया तो रिनी ने साहिल को कहा कि पीहू को लिवा लाए। पीहू मुंबई रहती थी, उसका फ़ोन आ गया कि वो अपने पति के संग ख़ुद ही आ जाएगी। राखी से दो दिन पहले वैभव

ने कहा कि उसे किसी ज़रूरी ऑफिस के काम से जाना है, राखी वाले दिन आ जाएगा।

पीहू के आने की खुशी में रिनी ने न जाने क्या–क्या तैयारियाँ कर रखी थी। करोना के चलते वो सिर्फ़ दो बार ही आई थी। रिनी बार–बार वैभव को फ़ोन लगा रही थी कि वो कब आ रहा है, लेकिन उसका फ़ोन ही नहीं लग रहा था। साहिल भी घर पर नहीं था। पीहू शहर में पहुँच चुकी थी। घंटी बजी तो भागकर रिनी ने दरवाज़ा खोला, पीहू और दामाद जी को देखकर खिल गई, तभी पीछे से वैभव दिखा और साथ में पल्लवी और उसका पति। रिनी उन सबको अंदर लिवा लाई तो इतने में ही साहिल के साथ पूनम और उसका पति भी आ गए। वैभव अभी बाहर ही था, जब वो आया तो साथ में हाथ थामे हुए बुआ और चाचा भी थे। इतना सुंदर नज़ारा देखकर पापा जी की आँखों से तो गंगा–जमुना बह चली। अभी बच्चों की टोली पीछे थी। रिनी ने किसी की सेवा में कसर नहीं छोड़ी। उसे पता चल गया था कि जैसे उसे अपनी बेटी प्यारी है, वैसे बहनें, बुआ भी उसी घर का हिस्सा हैं। सभी को बनता सम्मान तो मिलना ही चाहिए। असली खुशी तभी है। इस बार वो मायके नहीं गई, भाईयों को बुला भेजा। राखी का असली मतलब उसे आज समझ में आया था।

■

17

वसीयत

वृंदा को नए शहर के इस मुहल्ले में आए दो महीने होने को आए, परंतु अभी तक किसी से भी उसकी ठीक से जान–पहचान नहीं हुई थी। कुछ समय तो वो भी व्यस्त रही, बच्चों की स्कूल, कॉलेज की एडमिशन और घर सैट करने में। पति की बैंक की नौकरी के कारण हर तीन–चार साल बाद उनकी ट्रांस्फर हो ही जाती थी। उन्हें तो पहले दिन से ही काम से फ़ुर्सत नहीं मिलती थी, बल्कि पहले से भी ज़्यादा व्यस्त हो जाते। नई ब्रांच में जाकर काम भी तो समझना होता है। वृंदा की शादी के बाद यह चौथी या पाँचवी बार शहर बदलना हुआ। बड़ी बेटी मान्या कॉलेज पहुँच गई और बेटा अंबर बारहवीं में। दोनों बच्चे पढ़ाई में बहुत लायक थे, इसलिए एडमिशन की ज़्यादा दिक्क़त नहीं आती थी और घर मिलने में भी कोई मुश्किल नहीं आई, क्योंकि जो बैंक ऑफिसर पहले जिस घर में रहते थे, अक्सर वही घर उन्हें मिल जाता था। हाँ, एक बार उन्हें पहले वाले मैनेजर का घर पसंद नहीं आया था तो उन्हें और घर ढूंढना पड़ा। वृंदा को इन सब की आदत पड़ चुकी थी। शादी से पहले वो नौकरी करती थी, लेकिन बाद में सब छूट गया। उसे पढ़ाने का बहुत शौक़ था, तो कई बार उसने बीच–बीच में प्राईवेट स्कूलों में मौका मिला तो पढ़ाया भी। खाली समय में वो तीन–चार ट्यूशन ले लेती थी, मगर अभी यहाँ तो उसकी कोई जान–पहचान ही नहीं थी। उसके पति कबीर ने अपने तीन–चार कुलीगस को ट्यूशन के बारे में बता दिया था।

दो महीने में सब सैट हो गया, तो अब वृंदा ने सोचा कि आसपास कुछ जान–पहचान बनाई जाए, ताकि खाली समय अच्छा निकले। आज के जमाने में सब व्यस्त हैं, हर कोई जैसे बस भाग रहा है। शाम को वो पास वाले पार्क में कईं बार सैर करने जाने लगी थी। वहाँ हर उम्र के लोग तो होते थे, पर अधिकांश मोबाईल पर ही लगे रहते। कुछ औरतें टोलियों में भी बैठी नज़र आती, मगर वृंदा को अपने मुताबिक अभी कोई नहीं मिली। ऐसे ही एक शाम या यूँ कहो कि रात सी होने वाली थी, वो सैर करने के बाद बैंच पर बैठी थी कि मोबाईल बज उठा। मगर ये उसके मोबाईल की आवाज़ नहीं थी, देखा तो नीचे घास पर पड़ा मोबाईल बज रहा था। उसने उठा तो लिया, मगर सोच में पड़ गई कि बात करे या न करे। मोबाईल बज

कर बंद हो गया। समझ नहीं आ रहा था कि वो क्या करे। शाम गहरा गई थी तो लोग कुछ कम हो गए थे। काफ़ी महंगा मोबाईल लग रहा था। उसने वापिस कॉल करने की सोची तो देखा कि मोबाईल तो लॉक था, बिना पासवर्ड के खुल नहीं सकता था। किससे पूछे, पुलिस को दे, यही सोचते–सोचते वो घर आ गई। घर में भी बताया, तो कबीर ने कहा कि देखते हैं, शायद कोई कॉल करे, नहीं तो कल थाने में जमा करवा देंगे।

जब सभी खाना खा रहे थे तो वही मोबाईल बज उठा। अब तो वृंदा ने लपक कर उठाया और हैलो बोल दिया। उधर से कोई औरत बोल रही थी, जिसका फ़ोन न जाने कैसे पार्क में गिर गया था। थोड़ी दूरी पर ही उनका घर था। वृंदा से इजाज़त लेकर वो अपने पति के साथ उसके घर आ गई। रात हो चुकी थी तो वो धन्यवाद कहकर जल्दी ही चले गए, लेकिन दस मिन्ट में ही उनकी अच्छी जान–पहचान हो चुकी थी। अगले दिन उनका पार्क में फिर मिलना हुआ। उसका नाम नीति था और उम्र में भी लगभग वृंदा जितनी ही थी। जल्दी ही वो उनकी किट्टी मैंबर बन गई। किट्टी मैंबर बनना जान–पहचान का बहुत बढ़िया ज़रिया है। वृंदा को ट्यूशन का काम भी मिल गया, ज़िंदगी अपनी पटड़ी पर आ चुकी थी। वृंदा काफ़ी प्रतिभावान थी, उसे आसपास के क्रियाकलापों में रूचि रहती थी। कह सकते हैं कि निंदा–चुग़लियों से दूर सभी का भला चाहने वाली, मददगार नेक औरत थी। जल्दी ही वो काफ़ी लोगों से घुलमिल गई। एक दिन वो सुबह पास वाले मंदिर जा रही थी तो उसने देखा कि एक घर के बाहर लॉन में एक लड़का पौधों को पानी दे रहा था। देखने में लड़का या आदमी कुछ अजीब सा लग रहा था, यानि कि उसमें कुछ तो अलग था।

वैसे वो पागल भी नहीं लग रहा था, लेकिन नार्मल तो नहीं था। सोचते–सोचते वृंदा आगे बढ़ गई। दो–तीन बार वो फिर उसे उसी लॉन में ही दिखा। जिज्ञासा तो थी, उसके बारे में जानने की, लेकिन किससे पूछे। अगली किट्टी कृष्णा के घर पर थी। उम्र में वो सब किट्टी मैंबर से काफ़ी बड़ी थी, बाकी सभी तो लगभग पैंतालीस से कम ही रही होंगी, सिर्फ़ कृष्णा ही साठ पार थी, मगर अपने हंसमुख स्वभाव के कारण वो सबमें प्रिय थी। लंच के समय जब एक दो मैंबर कृष्णा की मदद करने को उठी तो वो भी साथ हो ली, ताकि सामान वगैरह लाने में मदद हो जाए। जब वो किचन से ट्रे ला रही थी, तो उसे सामने वाले कमरे में पर्दे की ओट से वही लड़का दिखा। तभी उसे ध्यान आया कि उसने इसे ही तो बाहर लॉन में दो–

तीन बार देखा है। पहले तो उसने सोचा कि इसके बारे में पूछूँ, पर कुछ सोचकर चुप रह गई। दो–चार दिन के बाद उसकी नीति से मुलाक़ात हुई तो उसने उस लड़के के बारे में पूछा। वैसे तो उसकी कृष्णा से भी अच्छी दोस्ती थी, इतना तो वो जान गई थी कि वो उसके ही घर का कोई सदस्य है, लेकिन उससे पूछना उसे उचित नहीं लगा। अब जब नीति से बात चली तो उसने बताया कि वो कृष्णा का सबसे छोटा बेटा है, दो बड़े बेटे तो बिल्कुल ठीक हैं, अपनी बढ़िया फ़ैक्टरी चला रहे हैं, परंतु ये छोटा रोमी न जाने क्यूँ ऐसा ही पैदा हुआ।

क्योंकि नीति उस मुहल्ले में शुरू से ही रहती थी, तो उसे सब पता था। उसने आगे बताया कि जब वो पैदा हुआ तो वज़न बहुत कम था। इलाज चलता रहा, धीरे–धीरे डॉक्टरों ने कहा कि उसके दिमाग़ का विकास बहुत धीरे हो रहा है। शरीर तो बढ़ता गया, मगर दिमाग़ चार–पाँच साल के बच्चे की उम्र जितना ही विकसित हुआ। इलाज पर बहुत पैसा लगा, लेकिन भगवान की मर्ज़ी के आगे किसी का वश नहीं चलता। सब्र करने के इलावा कोई चारा नहीं था। देखने में उसकी उम्र पंद्रह–सोलह साल ही लगती है, लेकिन पैंतीस साल का है। ध्यान से देखो तो चेहरे से पता चलता है। दाढ़ी मूँछ भी है, पर ग्रोथ बहुत कम है। सभी को उससे बहुत सहानुभूति है, पर कुछ कर नहीं सकते। घर वालों ने पढ़ाने की कोशिश की, घर पर भी ट्यूटर लगाया, लेकिन कुछ हासिल नहीं हुआ। वो नहीं पढ़ पाया। बाद में पता चला कि उसकी नज़र भी कमज़ोर है, सुनता भी कम है और ठीक से बोल भी नहीं पाता। उफ़्फ़, कितनी बेइन्साफी की उसके साथ क़ुदरत ने। वृंदा का मन बहुत खराब सा हो गया यह सब सुनकर। उदास मन से उसने नीति से विदा ली। वहाँ रहने वालों को तो ये सब पता था, लेकिन वृंदा ने यह सब पहली बार जाना था। वैसे तो दुनिया में न जाने कैसी–कैसी क़ुदरत की माया है, लेकिन जो हम सामने देखते हैं, इंसानियत के नाते उसे हज़म कर पाना इतना आसान नहीं होता और फिर एक औरत का मन तो वैसे भी करूणापूर्ण बनाया है ईश्वर ने।

अब वृंदा की नीति के इलावा बाकी किट्टी मैंबरों से भी अच्छी दोस्ती हो गई थी, ख़ास तौर पर कृष्णा से। जब दिल मिल जाएं तो उम्र कोई मायने नहीं रखती। परिवारिक बातें भी होने लगी। कृष्णा वैसे तो बहुत हँसमुख थी, मगर बेटे रोमी की चिंता उसे अंदर ही अंदर खाए जा रही थी जो कि स्वाभाविक ही था। उसके दोनों बड़े बेटे, बहुएँ, बच्चे सब इकटठे मिलजुल कर बड़े प्यार से रहते थे। आजकल के जमाने में इस प्रकार के संयुक्त परिवार कम ही देखने को मिलते हैं। कृष्णा हमेशा

ही अपने बच्चों की बहुत प्रशंसा करती रहती थी। कहती थी कि दोनों बेटे, बहुएँ हमारा और ख़ास तौर पर रोमी का बहुत ध्यान रखते हैं। वृंदा ने कहा कि आजकल कई ऐसी संस्थाएं भी हैं, जो रोमी जैसे 'स्पैशल बच्चों' का ध्यान रखती हैं और उन्हें उनकी क्षमता मुताबिक काम करना भी सिखाती हैं, जैसे कि कुर्सियाँ बुनना, पेंट करना या ऐसे ही कुछ हाथ के काम। कृष्णा ने उत्तर दिया कि उनके पास प्रभु का दिया सब कुछ है, अपने बेटे का ऐसे काम करना उन्हें गवारा नहीं । चूंकि दोनों में अच्छी दोस्ती थी, इसलिए वृंदा ने कहा कि बात पैसों की नहीं, बाहर निकलने से, औरों से मिलने–जुलने से, काम करने से आत्मविश्वास पैदा होता है।

ऐसे ही एक दिन बातों ही बातों में कृष्णा ने बताया कि उसके पति बहुत ही दूरदर्शी और समझदार हैं। कल को बच्चों में कोई लड़ाई–झगड़ा न हो इसलिए उन्होंने वसीयत तैयार करवा कर रजिस्टर्ड भी करवाई हुई है। बस यूँ समझो कि हमारे बाद सब कुछ दोनों भाईयों का आधा–आधा है। वैसे तो वसीयत एक फारमेलिटी है, राम लक्ष्मण जैसे हैं मेरे दोनों बेटे। 'और जो तीसरा भरत है, उसका क्या, उसके बारे में नहीं सोचा' वृंदा ने कहा। अरे उसका क्या सोचना, दोनों भाई, भतीजे जान छिड़कते हैं उस पर। उसकी हर ज़रूरत का ध्यान रखते हैं। तभी तो वो इतना ज़िद्दी हो गया है। भाभियों से अपने लिए अलग–अलग तरह का नाश्ता बनवाता है। जब सब परौंठे खा रहे होंगे तो उसे इडली खानी होती है। ऐन मौक़े पर मनचाही सब्ज़ी की फ़रमाईश कर देगा। खाना भले ही लेट हो जाए मगर उस हीरो की फरमाईश ज़रूर पूरी होती है, परंतु वृंदा के दिल में कुछ खटक रहा था, उसने हिम्मत करके कह ही दिया कि जो भी हो, रोमी के लिए कुछ अलग से इंतज़ाम करना ज़रूरी है। माँ–बाप के सामने और पीछे की बात और होती है। तभी तो कहते हैं दूध के फटते और बुद्धि के भ्रष्ट होते देर नहीं लगती।

उस समय तो कृष्णा चुप रही, लेकिन वृंदा ने उसे सोचने पर मजबूर कर दिया। उसने सोचा कि बहुएँ खाना तो खिला देती हैं, लेकिन बाकी सारा ध्यान तो वो उसका पति या फिर नौकर बिरजू रखता है। चूंकि कृष्णा के रिटायर पति की भी अच्छी पैंशन आती थी और मकान भी उन्होंने नौकरी में ही बनवा लिया था। दोनों बेटों ने पढ़ाई तो ठीक–ठाक की थी, मगर फ़ैक्टरी का काम अच्छा चल निकला था। लोन लेना था तो फ़ैक्टरी दोनों बेटों के नाम थी और मकान कृष्णा के पति अनिल के नाम पर था। एक दिन मौका देखकर कृष्णा ने पति से वृंदा वाली बात कही। उस समय तो उन्होंने हंस कर टाल दिया, पर मन ही मन विचार उन्हें भी करना पड़ा। वो

अपनी पत्नी से उम्र में दस साल बड़े भी थे। हम हमेशा वही सोचते हैं, जो हम चाहते हैं, मगर दूसरा पहलू भी देखना ज़रूरी है। एक बार तो बात ख़त्म हो गई थी, परंतु अब अनिल विचार में ज़रूर पड़ गए थे। समय की गति कहाँ रूकती है। वृंदा के पति की चार साल बाद ट्रांस्फर हो गई तो उसे जाना ही था, परंतु वो कृष्णा के टच में रही। वृंदा के जाने के कुछ महीनों बाद ही अनिल का हार्ट अटैक से निधन हो गया। रात को सोए तो सुबह उठे ही नहीं। आदमी बीमार हो तो कुछ बात करे, बताए, लेकिन वो तो जाते समय किसी को कुछ न बता सके। दुनिया की रीत है, सब रस्में हो गई, हर कोई अपने काम में व्यस्त हो गया। घर का माहौल धीरे–धीरे बदलने लगा। कृष्णा की सेहत भी ठीक नहीं रहती थी।

रोमी को अब कोई नहीं पूछता था, कुछ खाया, खाया न खाया तो न सही। सब से बड़ी समस्या उसके नहाने की थी। पहले बिरजू ही साथ लगकर उसे नहलाता था, लेकिन अब उसे फ़ुर्सत ही नहीं मिलती थी, बेचारा चाह कर भी कुछ न कर पाता और लोगों के काम ही ख़त्म नहीं होते थे। बिरजू को तनख़्वाह अनिल बाबू दिया करते थे, वो सारा दिन वहीं पर रहता था, कई बार फ़ैक्टरी भी जाना पड़ता था, उसका अपना परिवार गाँव में था। कृष्णा को फ़ैमिली पेंशन तो लग गई थी, मगर उसे कुछ नहीं पता कि कितनी है। अनिल के निधन के बाद जहाँ बेटों ने कहा उसने साईन कर दिए। ऑनलाइन और ए टी एम के जमाने में बार–बार साईनों की ज़रूरत भी कहाँ पड़ती है। कृष्णा और रोमी की दवाइयों का खर्च भी था। यूँ समझो कि माँ–बेटा दोनों मुहताज हो गए। कृष्णा भी दसवीं पास थी, लेकिन उसने कभी बैंक वगैरह के कामों की और ध्यान नहीं दिया। सब काम पति अनिल ही कर देते थे। कृष्णा के दोनों बेटों के आगे दो–दो बच्चे थे, बड़े बेटे के एक बेटा, बेटी और छोटे के दो बेटे ही थे। सब कॉलेज पढ़ने वाली उम्र में थे। पहले–पहल तो वो दादी के पास आते–जाते रहते, रोमी के साथ थोड़ा बहुत खेल लेते, कुछ बाहर से खाने को ला देते, वो खुश हो जाता, लेकिन अब सब ख़त्म हो गया। पोती कभी–कभार दादी से मिलने आ जाती।

कृष्णा समझ नहीं पा रही थी कि आख़िर ये सब क्या हो रहा है। कोई मुँह से तो कुछ न कहता, मगर जिस तरह रूखाई से बात करते, दोबारा कृष्णा की कुछ कहने की हिम्मत ही नहीं होती थी। छः महीनों में हालात ये हो गए थे कि माँ–बेटे को खाना तो मिल रहा था, लेकिन समय का कुछ ठिकाना नहीं। बेचारा बिरजू जब फ्री होता तो दे देता। सुबह की चाय नौ बजे तो शाम की छः–सात बजे। कई बार

चाय बनी पड़ी है, किसी और ने आवाज़ लगा दी तो ठंडी भी हो गई। आजकल कृष्णा को अपने मायके वालों की बहुत याद आ रही थी, लेकिन इस उम्र में मायके भी कैसे। उससे छोटे एक भाई और बहन और थे, लेकिन सबकी अपनी गृहस्थी थी और उम्र भी हो ली। वैसे तीनों में बहुत प्यार था, लेकिन समय के साथ सब अपने–अपने परिवार में व्यस्त थे। पहले उसका भाई कई बार उसे अपने पास बुलाता था, लेकिन रोमी की वजह से वो बहुत कम जा पाती थी। जाती भी तो रोमी को साथ ले जाती। अनिल तो कम ही जाते थे, गए भी तो एक दो दिन में ही वापिस आ जाते।

कृष्णा का अपना दो मंज़िला अच्छा मकान था। नीचे दो बेडरूम, नौकर बिरजू का कमरा और रसोई, दो बाथरूम, बरामदा और लॉन थे, जबकि ऊपर चार कमरे और रसोई के इलावा अटैचड बाथरूम थे। कुछ दिन पहले नीचे वाले एक बेडरूम को बहाने से खाली करवा कर रोमी को कृष्णा के साथ यह कह कर शिफ़्ट कर दिया गया कि अकेले न रहे, जबकि रोमी आराम से अकेले सो जाता था, अब उसे दूसरे कमरे में नींद ही नहीं आती थी, लेकिन सुनता कौन। नीचे वाले कमरे को गैस्ट रूम बना दिया, जबकि पहले किसी के आने पर उसे ऊपर ठहराया जाता था।

उस दिन कृष्णा बहुत उदास थी। वो अनिल की अल्मारी खोलकर देखने लगी। ऐसा कई बार हो चुका था। लगभग अनिल का सारा सामान ज़रूरतमंदों में बँट चुका था। कुछ कपड़े, काग़ज़, फाईलें पड़ी थी। एक दो बार बेटों ने बैंक पासबुक मांगी थी, परंतु कृष्णा दे नहीं पाई। सिर्फ़ अनिल की पेंशन वाली पासबुक ही उसने दी थी। तब उसके मन में कुछ नहीं था, लेकिन अब बच्चों के बदले व्यवहार से उसे बहुत आघात लगा। उसने कई बार पूछा कि उसे कितनी पेंशन लगी है, उसे ए. टी. एम से पैसे निकालना सिखा दो, लेकिन वो सुनते कहां थे। "छोड़ो माँ, तुम कहाँ बैंको के चक्कर काटोगी, जो चाहिए बता दिया करो"। कहने और करने में बहुत अन्तर होता है। दो–दो दिन दवाईयां ख़त्म रहती। एक दो हज़ार रूपए हर महीने उसके हाथ पर रख देते। आज के समय में इतने कम पैसों से क्या होता है। जबकि उसे पक्का पता तो नहीं था, लेकिन उसे विश्वास था कि उसकी फ़ैमिली पेंशन पच्चीस–तीस हज़ार तो होनी ही चाहिए। कई बार अनिल जब कुछ मरने–वरने की बात करते तो वो मुँह पर हाथ रखते हुए कहती, ऐसी बातें न करो, मरें आपके दुश्मन। रोमी का तो विशेष ध्यान रखना पड़ता था। जब अनिल ज़िंदा थे तो हर तीन महीने बाद उसके चैकअप के लिए डॉक्टर घर पर आता, टैस्ट करवाए जाते, ताकि वो बीमार न पड़े। उसकी इम्यूनिटी बहुत कम थी। जब अनिल थे तो

सबके जन्मदिन पर पूरा परिवार बाहर जाकर खाना खाते, कई बार कहीं दूर एक दो दिन के लिए घूम भी आते। कृष्णा कई बार मना भी करती, लेकिन बच्चे मनुहार करके भी ले जाते। गिफ़्ट भी दिए जाते। मगर अब कुछ पता नहीं क्या हो रहा है। पहले पहल तो उसे लगा कि पिता की मौत का शोक मना रहे हैं, लेकिन ऐसा कुछ नहीं था। सब अपने–अपने तरीके से बाहर जा कर खुशियाँ मना रहे थे। सिर्फ़ वो माँ–बेटा ही घर से बाहर नहीं निकले।

अनिल की अल्मारी खोलकर वो सफ़ाई करने लगी और सोचा कि क्यूँ ना अख़बार बदल दूँ। ऐसा करते हुए उसे अख़बारों के नीचे से एक फ़ाईल मिली। उसने अच्छे से देखा तो 20-25 लाख की एफ़डीज थी, जो कि दोनों के नाम से थी और साथ में ही वसीयत के काग़ज़। खोल कर देखा तो वो कुछ समय पहले की हुई वसीयत थी। ओह, तो इसका मतलब कि अनिल जी ने अपनी वसीयत बदल दी। पहली वसीयत में तो उनके बाद घर दोनों बेटों का था। अनिल तो चाहते थे कि वो घर कृष्णा के नाम पर करें, मगर उसने मना कर दिया था, परंतु इस बदली हुई वसीयत में सारा घर कृष्णा के नाम पर था। इसका मतलब तो पुरानी वसीयत ख़ारिज मानी जाएगी। अनिल जी के देहांत को साल होने वाला था। गिने–चुने लोगों की उपस्थिती में पहली बरसी हुई। कृष्णा के मायके वाले भी आए। भाई ने साथ चलने को कहा तो वो तैयार हो गई। रिवाज़ के मुताबिक भी ऐसे शोक के बाद एक बार मायके जाने का चलन है। रोमी को भी साथ ही जाना था, वैसे भी किसी ने मना ही नहीं किया। जाते–जाते भाई के सामने कृष्णा ने यह कर बेटे से अपना ए टी एम मांग लिया कि उसे पैसों की ज़रूरत पड़ेगी। मामा के सामने मना करने का तो सवाल ही नहीं था।

मायके से पाँच–सात लोग आए थे, दोनों माँ–बेटा उनके साथ गाड़ी में बैठकर चल दिए। कृष्णा की उदासी को सबने स्वाभाविक ही लिया। किसी को अंदेशा भी नहीं था कि परिस्थितियाँ कैसी प्रतिकूल हो चुकी हैं। रात को खाने के बाद सब सो गए तो कृष्णा ने रोते–रोते भाई को सारी बात बताई। उम्र में वो उससे काफ़ी छोटा था, पर भाई तो भाई होता है। संयोग से बहन भी उसी शहर में रहती थी। अगले दिन वो मिलने आई तो उसे भी सब बताया गया। कृष्णा के दोनों भतीजे तो सब सुनकर आग–बबूला हो रहे थे, परंतु समय शांति से काम लेने का था। फिर वैसे भी माँ तो आख़िर माँ ही होती है। जैसे भी हो, दोनों बेटे उसकी आँखों के तारे थे। वो तो चाहती थी कि सब को अपना–अपना हक मिले। तभी तो कहते हैं, पूत

भले ही कुपूत निकले मगर माता कभी कुमाता नहीं होती। दस दिन कृष्णा वहाँ रही, उसने भतीजों की मदद से ए टी एम चलाना और कुछ बैंक जानकारियाँ ले ली। अब उसके पास पैसे थे। वापिस आकर उसने वक़ील को बुलाया और वसीयत दिखाई। बेटों की हैरानी की सीमा न रही, वो पुरानी वसीयत लिए बैठे थे, जिसकी अब कोई वैल्यू नहीं थी।

पैसों के आते ही कृष्णा में न जाने कहां से ताकत और विश्वास भी आ गया। कुछ समय बाद ही उसने दोनों बेटों की रसोई ऊपर करवा दी। बिरजू को नीचे रख लिया, अब वो उसकी सैलरी देने में सक्षम थी। पहले ऊपर के लिए सीढ़ियाँ अंदर से थी, उसने बाहर से ही करवा दी। अब सब ठीक हो गया। रोमी का भविष्य सुरक्षित करने के लिए अब वसीयत करने की उसे ज़रूरत थी। सच ही कहते हैं कि जैसे मृत्यु एक अटल सत्य है, उसी प्रकार इस संसार में धन सब कुछ न होते हुए भी बहुत कुछ है, मगर इमानदारी से अर्जित किया गया हो और वसीयत की कीमत भी वो जान चुकी थी। पति की दूरदर्शिता के आगे उसका सर झुक गया। आज उसे रह–रह कर वृंदा की भी याद आ रही थी तो उसने मोबाईल पर उसका नं. लगाया, उसका धन्यवाद करने के लिए।

■

18

और दीप जल उठे!

सुधीर आज बहुत खुश थे, गाँव से बचपन का दोस्त रणजीत जो आ रहा था। दस बार यहाँ से वहाँ चक्कर लगा चुका था। दूर तक बाहर जाकर भी देख आया। उसकी पत्नी रीति मन ही मन मुस्कुरा रही थी। वह अपने पति की बैचेनी अनुभव कर सकती थी। दोनों दोस्तों का प्यार ही ऐसा था, सगे भाईयों से भी बढ़कर। भाईयों में तो फिर भी पारिवारिक कारणों से या फिर जायदाद को लेकर कभी–कभी मनमुटाव हो सकता है, मगर दोस्ती तो कुछ अलग भावना से ही होती है। पति की ऐसी हालत देखकर रीति ने तो हंस कर कह भी दिया था कि बैठ जाओ आराम से। चाय बना कर लाती हूँ, रणजीत भाईसाहब जब आएंगे तो घर पर ही आएंगे, मगर सुधीर को चैन कहाँ। पत्नी के कहने पर एक बार तो बैठ गया और चाय के लिए मना कर दिया, "नहीं चाय तो रणजीत के साथ ही पीऊँगा"। फिर उठकर जाकर बालकनी में खड़ा हो गया।

रणजीत का फ़ोन भी तो नहीं लग रहा था, शायद फ़्लाइट कुछ लेट हो गई है। तभी उसे मैसेज मिला कि वो अभी एयरपोर्ट से निकला है, बैग लेते–लेते कुछ समय लग गया और फ़ोन की बैटरी भी डैड होने को है। सुधीर चैन की साँस लेते हुए वहीं कुर्सी पर बैठ गया और आँखें मूँद ली। पहुँच गया पुराने दिनों में। कैसे दोनों दोस्त गाँव में खेतों में घूमते रहते थे। बारहवीं दोनों ने गाँव के सरकारी स्कूल से ही पास की। वो दिन भी कितने बढ़िया थे। स्कूल ज़्यादा दूर नहीं था, पहले तो वो दोनों पैदल ही जाते थे, बाद में साईकल तो दोनों ने ख़रीद ली, लेकिन जाते एक पर ही थे। यूँ तो दोनों के घर आगे–पीछे थे, यानि कि एक के घर का दरवाज़ा एक गली में खुलता तो दूसरे का उसके पीछे की गली में, लेकिन बीच की दीवार एक ही थी, तो ज़ाहिर है कि छतें मिलती थी, वैसे भी गाँवों में पहले घर बिना नक्शे के ही बने होते थे। जैसे जी चाहा, जितना बजट हुआ बना लिया। पूरी गली घूमकर आने की अपेक्षा छतों से ही नीचे आते या ऊपर बने चौबारों पर ही बैठ कर पढ़ते, बतियाते। सुधीर अकेले ही थे, दो बहनें थी, शादी के बाद अपने घरों को चली गईं। सुधीर की अपनी एक ही बेटी थी शालू, जो कि शादी के दस साल बाद पैदा हुई ।

रणजीत का एक छोटा भाई और तीन बहनें थी। बहनों को तो विदा होना ही था, दोनों भाई एक ही घर में रहते थे। रणजीत के अपने एक बेटा और दो बेटियाँ थी, दोनों बेटियों की शादी हो चुकी थी, बेटा रंजन अभी कुँवारा ही था। सुधीर पढ़ाई में काफ़ी होशियार था, उसके पिताजी तो उसे बचपन से ही शहर में पढ़ाने के इच्छुक थे, मगर उसकी माँ अपने इकलौते बेटे को होस्टल में नहीं भेजना चाहती थी। रणजीत भी पढ़ाई में ठीक था, मगर सुधीर जितना नहीं। बारहवीं के बाद सुधीर को आगे की पढ़ाई के लिए शहर जाना ही पड़ा, जहाँ पर उसने हायर स्टडीज़ की और अच्छी कंपनी में नौकरी भी मिल गई। वहीं पर साथ में काम करने वाली रीति से शादी भी हो गई। कई कंपनियाँ चेंज की और आजकल वो बैंगलूर में रह रहा था। बाईस वर्षीय इकलौती बेटी शालू खूब पढ़ी–लिखी और होशियार थी।

पहले–पहल तो गाँव आना–जाना लगा रहता था, परंतु धीरे–धीरे कम होता गया। माँ–बाप के देहांत के बाद तो जैसे वहाँ जाना छूट ही गया। वैसे भी उसकी नियुक्ति साऊथ में ही रही, पंजाब आना आसान भी नहीं रहा। फ़्लाइट भी अक्सर देहली तक ही होती, आगे का सफ़र करना मुश्किल लगता, जीवनशैली ही कुछ ऐसी बन चुकी थी। रिश्तेदारी में जाना–आना कभी–कभार रहता था, लेकिन माँ–बाप के बाद सब कम ही हो गया । एक बात ज़रूर थी, उसने अपना पुश्तैनी घर बेचा नहीं, काफ़ी बड़ा घर था, कुछ हिस्सा किराए पर देकर बाकी बंद किया हुआ था। रणजीत, उसका बचपन का साथी, प्यारा दोस्त तो वहीं पर था। उसका पुश्तैनी कारोबार था, सब्जियों, फलों के थोक विक्रेता थे। बारहवीं के बाद उसकी भी इच्छा तो आगे पढ़ने की थी, परंतु उसके पिताजी की तबियत ज़्यादा ठीक नहीं रहती थी, घर में सबसे बड़ा था, तो उसे कारोबार संभालना पड़ा।

अपने–अपने कामों में व्यस्त होने के बावजूद भी दोनों में बातचीत होती रहती। सुधीर के घर की देखभाल भी उसी के ज़िम्मे थी। उसकी एक बेटी की शादी पर सुधीर आया था, दूसरी पर नहीं आ सका। सुधीर भले ही कभी–कभार आया, परंतु उसके दिल में गाँव में बिताया एक–एक पल सदैव जिंदा रहा। पत्नी रीति से उसकी मुलाक़ात मुंबई में हुई थी, माता–पिता ने विजातीय होने के बावजूद भी दिल से इस रिश्ते को स्वीकार कर लिया था, रीति गांव चार–पाँच बार गई थी, रणजीत के घर भी जाना हुआ। सुधीर की शादी रणजीत की शादी के चार साल बाद हुई थी। गाँव भी अब गाँव नहीं रहा, क़स्बा बन चुका था। रणजीत सुधीर के घर एक बार आया था, जब उसकी पोस्टिंग देहली में थी और दूसरी बार अब किसी काम के

सिलसिले में वो बैंगलोर आ रहा था। वह फलों सब्जियों का क्षेत्रीय प्रधान था, किसी मीटिंग के सिलसिले में पंजाब की और से उसे जाने के लिए कहा गया था। पहले तो उसने मना ही कर दिया था, परंतु उनकी एसोसिएशन के अनुरोध पर और सुधीर से मिलने की चाह मन में लिए वह मान गया। जब से दोनों में ये बात हुई दोनों ही गले मिलने को बेक़रार थे।

रीति को सामने पानी का गिलास लिए खड़ा देखकर सुधीर सपनों की दुनिया से बाहर आया। पानी का गिलास मुँह को लगाने ही वाला था कि डोरबैल बज उठी। पानी वहीं छोड़कर खड़ा हुआ, तब तक उसकी बेटी शालू ने दरवाज़ा खोल दिया। दोनों हाथ जोड़ कर उसने रणजीत को नमस्ते की और आदरपूर्वक अंदर आने का अनुरोध किया। तब तक सुधीर और रीति भी बालकनी से डराईंग रूम में आ चुके थे। दोनों दोस्त गले मिले और बातों का लंबा सिलसिला चालू हो गया। थोड़ी देर के बाद दोनों माँ–बेटी वहाँ से चली गईं। रीति लंच की तैयारी में लग गई और शालू अपना ऑनलाईन काम करने लगी। कुछ महीने पहले ही उसने एम. बी. ऐ. की पढ़ाई पूरी की और नौकरी भी लग गई। हफ्ते में दो बार ऑफिस जाती है और बाकी दिन घर से ही काम करना होता है। करोना काल के बाद अक्सर ही ऑनलाईन काम का ट्रेंड हो गया है। रणजीत ने शालू को बहुत समय बाद देखा था। एक बार जब सुधीर परिवार सहित गाँव आया था तो वो छोटी सी थी, लेकिन अब जवान होने के साथ–साथ बहुत खूबसूरत भी लग रही थी।

रीति भले ही मुंबई में पली बड़ी थी, मगर उसका परिवार भी महाराष्ट्र के एक गाँव में ही था, उसे भी वहाँ जाना प्रिय था। आजकल वैसे भी प्रदूषण से जूझते लोग क़ुदरत का साथ पाने के लिए समय मिलते ही शहरों से दूर शांति की तलाश में निकलते हैं। रीति के पापा नहीं थे, मगर माता अभी भी गाँव में थी, रीति के दो भाई और कई रिश्तेदार उधर ही थे, तो कई बार जाना–आना लगा रहता, जबकि सुधीर की बहनें और क़रीबी रिश्तेदार देहली और उसके आसपास ही थे, इसलिए गाँव जाना बहुत कम हो गया। पुराना घर और यादों के इलावा रणजीत की दोस्ती का ख़ज़ाना ही था अब उसके पास। शहर में रहने के बावजूद भी शालू बहुत ही सादा और समझदार लड़की थी। अत्यंत मर्यादित और मृदभाषी थी। अपने बेटे रंजन के लिए पहली नज़र में ही वो रणजीत को भा गई। दो दिन वहाँ रहा, अपनी मीटिंग अटैंड भी की और कुछ घूमने–फिरने के इलावा खूब सारी बातें, पूरे परिवार का हाल–चाल जाना। वापसी का समय भी आ गया। सुधीर अपनी गाड़ी में रणजीत को

एयरपोर्ट छोड़ने गया। मौका देखकर रणजीत ने सुधीर से बिना किसी लाग–लपेट के शालू का रिश्ता अपने बेटे रंजन के लिए माँग लिया।

एकदम से तो सुधीर अचकचा सा गया। उसे कोई जवाब नहीं सूझा, कार का बैलेंस भी बिगड़ते–बिगड़ते बचा। रणजीत ने बताया था कि उसका बेटा बी. टेक करने के बाद उसके काम में ही हाथ बँटाता है। सुधीर को पता था कि उसका काम बहुत बढ़िया है और उसका बेटा अच्छी पर्सनेलिटी वाला है। इससे ज़्यादा उसे कुछ पता नहीं था। रणजीत ने फिर कहा कि कोई जल्दी नहीं। घर पर सलाह कर ले और वो भी अपने परिवार से बात करेगा। उसने भी अपनी और से ही कह दिया। अब तक सुधीर भी सँभल चुका था। रणजीत तो चला गया, परंतु सुधीर को दुविधा में डाल गया। उसने रीति से बात की, दोनों ने सोच–विचार किया। रिश्ता करने में किसी तरह की कोई बुराई नहीं थी, वापिस अपनी जड़ों से जुड़ने का मौका मिलेगा। शालू की सहमति भी तो ज़रूरी है और सबसे बड़ी बात, महानगरों में पली लड़की क्या उस छोटे से कस्बेनुमा गाँव में रहना पसंद करेगी। दूसरी बात क्या पता उसने किसी को पसंद ही कर रखा हो।

बरहाल शालू से पूछा गया तो उसने सोचने के लिए दो दिन का समय माँगा। आजकल कम्प्यूटर से सब मिल जाता है। उधर रणजीत ने भी अपने घर पर बात की। बिना किसी अड़चन के खुशी–खुशी रिश्ता तय हो गया। दोनों पक्ष अत्यंत प्रसन्न थे। छोटे–मोटे फंक्शन अपने–अपने स्थान पर करने के पश्चात लगभग पचास क़रीबी रिश्तेदारों, मित्रों के साथ डेस्टीनेशन मैरिज हुई। सब बढ़िया रहा। शालू अपने गांव वाले घर भी जाती रहती। शादी के समय घर को भी ठीक करवा दिया गया था। सब ठीक चल रहा था, नेट वगैरह की सब सुविधाएँ थी, शालू अपना ऑनलाईन काम भी करने लगी। रणजीत तो जैसे निहाल ही हो गया। अक्सर वो अपनी और सुधीर के बचपन के क़िस्से सुनाता। शालू को भी पुरानी बातें सुनकर बड़ा मज़ा आता। उसे कभी कोई कमी महसूस नहीं हुई। बड़े शहरों में रह कर भी वो 'पार्टी गर्ल टाईप' तो कभी थी ही नहीं। मगर कभी–कभी शालू को रंजन का व्यवहार कुछ अजीब सा लगता। कई बार तो वो खूब बातें करता और कभी–कभी चुपचाप रहता। दो–चार बार तो काम का कहकर रात को भी घर नहीं आया। एक दिन रंजन की अल्मारी की सफ़ाई करते समय उसे कुछ पुड़िया सी मिली। एक–दो डिब्बियों में भी कुछ अजीब सा पदार्थ मिला। उस समय तो उसने सब कुछ वैसे ही रख दिया, मगर रात को रंजन से पूछा तो उसने रोष से कहा कि फ़ालतू में उसकी चीज़ें मत

छेड़ा करे। शालू को रंजन का इस तरह बोलना बहुत अजीब लगा। रंजन के चाचा का घर भी साथ में ही था। पहले तो दोनों भाई इकटठे रहते थे, मगर समय के साथ–साथ चूल्हे अलग हो चुके थे, काम अभी भी इकट्ठा ही था। चाचा के एक बेटी और दो बेटे थे। बेटी की शादी हो चुकी थी, जबकि छोटा बेटा अभी पढ़ रहा था और बड़ा अपने पुश्तैनी काम में लग गया। कारोबार काफ़ी फैला हुआ था। थोक में ही सब्जियों, फ़लों के ट्रक ख़रीद कर आगे वितरण होता था।

चाची का शालू पर अपूर्व स्नेह था। दोनों घरों में आना–जाना लगा ही रहता था। शालू ने पढ़ा था कि पंजाब में नशे का बहुत प्रकोप है, अक्सर नौजवान पीढ़ी इसकी गिरफ़्त में आ चुकी है, बार्डर एरिया होने के कारण अवैध कारोबार चलता ही रहता है। शालू की समझ में सब आ गया, उफ़्फ़ ये कहाँ फँस गई, इस और तो उसने कभी ध्यान ही नहीं दिया था। सास से पूछने की तो हिम्मत नहीं हुई, मगर एक दिन मौका देखकर उसने चचिया सास से ज़िक्र किया। पहले तो उसने कुछ नहीं बताया, मगर शालू के आँसूओं से उसका दिल पसीज गया। डरते–डरते उसने बताया कि रंजन को तो नशे की लत है। काफ़ी इलाज करवाया पर ऐसी आदतें छूटती नहीं। शालू को काटो तो ख़ून नहीं। दोस्ती की आड़ में इतना बड़ा धोखा। उसने तो पूरे घर में हंगामा खड़ा कर दिया। पिता को बताया तो उसके माता–पिता दौड़े चले आए। रंजन तो घर से ग़ायब ही हो गया। प्यार की हदें टूट गई। सुधीर अपनी इकलौती नाज़ों से पाली बेटी को रोता बिलख़ता लेकर वापिस आ गए। छः महीने में ही जैसे सब ख़त्म हो गया।

रणजीत ने तो बिस्तर पकड़ लिया। चाचा का बेटा मिलन, रंजन से उम्र में दो साल छोटा था, परंतु दोनों में मित्रता थी। शालू तो ससुराल से किसी का फ़ोन ही नहीं उठाती थी। सास, ननद जो भी हो। गुमसुम सी रहती, काम करना भी छोड़ दिया। हँसती–खेलती फूल सी बच्ची को न जाने किसकी नज़र लग गई। दोनों घरों में जैसे मातम छा गया। मिलन ने रंजन को समझाया, परंतु नशा तो नशा है। दुःखी तो रंजन भी बहुत था, परंतु वो आदत से मजबूर था। वहाँ पर भी और सिर्फ़ पंजाब ही नहीं और भी बहुत से स्थानों पर नशे का ज़हर फैल चुका है, जो कि आज की नौजवान पीढ़ी को बरबाद कर रहा है। लड़के तो लड़के, लड़कियाँ भी इसकी चपेट में हैं।

पिताजी तो पहले ही बीमार थे, अब माँ की तबियत भी खराब रहने लगी। रंजन भी बहुत दुःखी था। उसने अपने–आप को सुधारने का फैसला कर लिया, जो

भी हो वो अब इस ज़हर से दूरी बना कर रहेगा। अफ़ीम, चिट्टा गांजा, सबकी लत थी उसे, इंजैक्शन भी लगा लेता था। शालू की बहुत याद आती उसे। कितना भरोसा किया था उसने रंजन और सारे परिवार पर। अपने गांव का मोह ही उन्हें ले डूबा, वरना तो इतना पढ़ने–लिखने के बाद कौनसी शहर की लड़की यहाँ आती। मिलन के आगे रंजन खूब रोता। आख़िर मिलन ने रंजन को इलाज के लिए तैयार कर लिया। छः महीने में काफ़ी फ़र्क आ चुका था। शालू सिर्फ़ मिलन का फ़ोन ही उठाती थी। मिलन से उसे सारी स्थिति पता चलती। उसने तो तलाक़ तक लेने की भी सोच ली थी, मगर मिलन के अनुरोध पर अभी वो चुप थे।

प्यार तो शालू को भी रंजन से बहुत था, घर तोड़ना बहुत आसान है, मगर जोड़ना उतना ही मुश्किल।

दीवाली को अभी दो दिन बाकी थे। बिना किसी पूर्व सूचना के रंजन और मिलन को सामने देखकर शालू सकपका गई। सुधीर के माथे पर त्यौरियाँ चढ़ गईं। रीति भी कुछ नहीं बोली। कैसा स्वागत है ये दामाद का, रंजन को अपने पर ग्लानि हो आई। उसने आगे बढ़कर सुधीर के पाँव पकड़कर क्षमा याचना की। मिलन ने बताया कि रंजन अब पहले वाला रंजन नहीं रहा, सब छोड़ चुका है, बस उसे एक मौका दे दीजिए। बहुत सोच विचार के बाद शालू ने एक बार वापिस ससुराल जाने का फैसला कर लिया। अगली फ़्लाइट से ही तीनों वापिस आ गए।

बहू के स्वागत की पूरी तैयारियाँ थी। दीवाली का दिन था। मिलन ने फ़ोन पर सबको बता दिया था। रणजीत और मिलन का पूरा परिवार एकत्रित था। आरती के थाल से एक बार फिर से बहू, बेटे का स्वागत हुआ और आरती के दीपक के साथ–साथ दीवाली के दीप भी जल उठे। सिर्फ़ इतना ही नहीं, रणजीत और मिलन ने ये भी प्रण किया कि अपने गांव और आसपास के नौजवानों की नशे की लत छुड़वाने के भी संभवतः प्रयास की मुहिम चलाई जाएगी और शालू ने भी इस काम में हिस्सा लेने का वचन दिया, ताकि हर घर के चिराग़ जलते रहें।

■

19

जस्सी और प्रीति

'ट्रिंग- ट्रिंग' की तीन बार आवाज़ सुनकर भी जब जस्सी बाहर नहीं आई तो प्रीती का मन हुआ कि वो आज अकेली ही स्कूल के लिए चल दे। जस्सी के कारण रोज़ ही देर हो जाती है और फिर साईकल कितनी तेज़ चलानी पड़ती है। कल तो खेतों की मुँडेर पर साईकल चलाते समय दोनों सहेलियाँ गिरते–गिरते बची। अगर खेतों की तरफ़ से थोड़ा सा बहते पानी में साईकल का पहिया फँस जाता तो मुसीबत ही आ जानी थी। वर्दी पर कीचड़ के कुछ छींटे तो पड़ ही गए थे। सारा दिन वो चुन्नी से क़मीज़ छुपाती रही। गिरने को तो जस्सी भी थी, पर कद लंबा होने से उसका पैर साईकल से नीचे लग जाता है, जबकि उसका कद थोड़ा छोटा था, तो उसका पैर पानी में चला गया। दूसरी बात वो उसके पीछे थी तो उसको सँभलने का मौका भी मिल गया। वरना तो दोनों के कपड़े बुरी तरह से कीचड़ में सने होते। अभी वो कल की घटना के बारे में सोच ही रही थी कि जस्सी बस्ता गले में लटकाए जल्दी–जल्दी बाहर आ गई और दोनों सहेलियाँ फटाफट तेज़–तेज़ साईकल के पैडल मारती स्कूल की और चल पड़ी।

स्कूल पहुँचने की जल्दी में दोनों की कोई बात नहीं हुई। जस्सी और प्रीति दोनों ही गाँव के सरकारी सीनियर सैकेंडरी स्कूल की विद्यार्थी थी। जस्सी तो शुरू से ही गाँव में अपने मामा–मामी के पास रहती थी। पहले तो उसकी नानी ज़िंदा थी, लेकिन दो साल पहले जब वो चल बसी तो उसका मन उखड़ सा गया। वो अपने गाँव माता–पिता के पास जाना चाहती थी, परंतु उसकी माँ ने उसे समझाया कि वहीं पर रह कर बाहरवीं कर ले, क्योंकि उनके गाँव में तो सिर्फ़ आठवीं तक ही स्कूल था। अगर वो अपने गांव वापिस आ गई तो उसे दसवीं करने के लिए भी सात–आठ किलोमीटर दूर जाना पड़ेगा और फिर घर में तीन बहनें और भी तो हैं। शराबी, नशेड़ी बाप का वैसे ही कोई ठिकाना नहीं था। चार बहनों में वो तीसरे नं. पर थी। बेटे की चाह में उसके बाद भी एक और लड़की पैदा हो गई थी। जस्सी की माँ हरभजन को उसका पति हर समय दिन–रात बेटा न जनने के ताने ही मारता रहता। तभी तो जस्सी की नानी पैदा होने के कुछ महीने बाद ही उसे ले गई थी। मामा के

तीन बेटे थे, मामी बड़ी ठसक से रहती, जैसे बेटे पैदा करके उसने कितना बड़ा अहसान कर दिया हो।

नानी के जीते–जी तो मामी कुछ कह न सकी, मगर अब तो उसका ही राज था। जस्सी को सुनाने का कोई मौका नहीं छोड़ती थी। जस्सी की दो मासियाँ भी थी, एक के दो बेटे थे और दूसरी के दो बेटे और एक बेटी थी। सिर्फ़ जस्सी के ही सगा भाई नहीं था। मामा इकलौता था, ऊपर से तीन–तीन बेटे, वखरी ही टोअर थी। हर समय मूँछों पर ताव देकर रखता, परंतु जस्सी से भी वो बहुत प्यार करता। अच्छी ज़मीन–जायदाद, अपने खेत–खलिहान, पशु, कुआँ सब था। नानी के बाद मामी को जस्सी का रहना नहीं भाता था। वो उसको वापिस अपने गाँव तो नहीं भेज सकी, मगर बहाने बना–बना कर उससे घर के बहुत से काम करवाती। जबकि घर में काम करने वालों की कमी नहीं थी। मुँह की मीठी बनी रहती। "जस्सी जैसे मूली के परांठे, भला कौन बना सकता है", अमन, रमन, दिलप्रीत को तो अपनी बहन के बने परौंठे ही पसंद हैं। घर का मक्खन और जस्सी के बने परौंठे और ऊपर से लस्सी का गिलास, बंदा तीन से कम तो खा के उठता ही नहीं। ऐसे ही पलोस–पलोस कर कभी उससे साग कटवाती और कभी चुल्हे पर मक्की की रोटियाँ सिंकवाती। "जो बात चूल्हे पर बनी रोटी में है, भला वो गैस पर कहाँ"। ऐसी ही चाशनी भरी बातों से सारी रसोई उसी के सिर पर डाल दी।

बेचारी जस्सी हर समय घर के कामों में ही फँसी रहती। होमवर्क करने का समय भी मुश्किल से निकाल पाती। रात को देर तक वो अपना स्कूल का काम निपटाती। मामी घर का काम बस दिखावे के लिए ही करती वरना तो पूरे गाँव में चौधरानी बन के घूमती। कभी वैसाखी तो कभी तीज और किट्टियां तो न जाने कितनी थी। आजकल कहने को गाँव है, वरना तो हर सुविधा है। मोबाईल फ़ोन और इंटरनेट ने सबको अक्ल सिखा दी है। गांव में माडल स्कूल भी हर जगह खुले हुए हैं, जस्सी के मामा के तीनों बेटे तो उसी में ही पढ़ते हैं। सबसे बड़ा रमन तो इस साल दसवीं कर लेगा। उसे तो मामा आगे किसी बड़े शहर में पढ़ाने की सोच रहे हैं। अमन और दिलप्रीत तो अभी चौथी और सातवीं में ही थे। पढ़ाई में तीनों ही ऐवरेज से भी कम ही थे। छोटा तो फिर भी कुछ ठीक था। माँ–बाप न तो ज़्यादा पढ़े–लिखे थे और न ही कभी उन्होंने ध्यान दिया। ट्यूशनें रख कर अपना फ़र्ज़ निभा दिया था। जस्सी से जितना बन पड़ता या कोई पूछता तो बता देती। मामा को कामों से फ़ुर्सत नहीं थी और मामी को गाँव की पंचायती करने से। नए से नए सूट, फुलकारियां,

झूमके, कंगन, गोखड़ू पहनती। अपनी किट्टी पार्टी को समाज सेवा का नाम दिया हुआ था। समय–समय पर जब प्रोग्राम करती तो अपनी पुरातन संस्कृति, पहनावे, रीति–रिवाजों का प्रदर्शन ज़रूर होता। गिद्दा, भांगड़ा, बोलियाँ, टप्पे, कई प्रकार के खेलों का भी आयोजन होता। ये सब तो चलो ठीक है, मगर घर परिवार की और भी तो ध्यान देना ज़रूरी होता है। जस्सी अगर ज़रा सा भी डीप गले का क़मीज़ पहनती, तो फट उसे टोक देती, लेकिन दसवीं में पढ़ने वाला रमन स्कूल के बाद कहाँ जाता है, रात को कितने बजे घर आता है, किसी को पता नहीं।

लड़कों के बारे में तो यही कहा जाता है "पुत मिठे मेवे, रब सबना नूं देवे" और लड़कियां तो जैसे नीम की निमोलियां हैं। बात करते हैं प्रीति की। प्रीति दो साल पहले ही इस गाँव में आई थी। उसके पिता गाँव की डिस्पैंसरी में डॉक्टर के पद पर थे। चाहती तो वो गाँव में माडल स्कूल में एडमिशन ले लेती, लेकिन जब वो लोग वहाँ आए थे तो उसने दसवीं की परीक्षा दी हुई थी। वहीं पर उसकी दोस्ती जस्सी से हो गई। उन्हें तो वही डिस्पैंसरी में ही सरकारी क्वार्टर मिला हुआ था। जस्सी का घर थोड़ी दूरी पर था। प्रीति को पहली बार गाँव में रहने का मौका मिला था। वो तो शहरों में ही पल–बढ़ी थी। वो और उसका भाई माँ और दादी के साथ शहर में ही रहते थे और पिताजी की पोस्टिंग आसपास ही रहती तो वो रोज़ या बीच–बीच में आते रहते। कुछ समय पहले दादी के स्वर्गवास के बाद माँ को बहुत अकेलापन लगता तो इस बार उन्होंने गाँव में ही रहने का फैसला कर लिया। प्रीति को तो गाँव में खेतों में घूमना बहुत अच्छा लगता। एक दिन जब वो यूँ ही शाम को खेतों में घूम रही थी तो उसकी मुलाक़ात जस्सी से हुई, जो कि भैंस का दूध निकालकर घर वापिस जा रही थी। तभी से उनकी दोस्ती हो गई। जस्सी ने भी दसवीं के पेपर दे रखे थे। दोनों को ही रिज़ल्ट का इंतज़ार था। रिज़ल्ट आने पर दोनों ही प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुई।

प्रीति को तो पापा की तरह डॉक्टर बनना था, इसलिए उसे आगे की पढ़ाई मैडीकल में ही करनी थी, लेकिन जस्सी ने तो आर्टस ही लिया। उसे अपने भविष्य का कुछ पता नहीं था। प्रीति के पापा चाहते थे कि प्रीति प्राईवेट स्कूल में पढ़े, लेकिन उसने जस्सी के साथ ही गाँव के सरकारी स्कूल में एडमिशन लिया। दोनों की खूब दोस्ती थी। गाँव की गलियाँ तो टेढ़ी–मेढ़ी सी थी, माहौल भी शहरों से अलग ही था, लेकिन उनका दिल वहाँ लग गया। भाई ने भी आठवीं में माडल स्कूल में एडमिशन ले ली। डॉक्टरों की तो वैसे भी बहुत इज्ज़त होती है और गाँव में तो

और भी ज़्यादा। प्रीति के पापा वैसे भी अपने काम के प्रति बहुत समर्पित थे। सिर्फ़ उसी गाँव के नहीं, बल्कि आसपास के चार गांवों के मरीज़ वहीं पर आते थे। एक और डॉक्टर और दो–तीन का स्टाफ़ और भी था। प्रीति अक्सर शाम को खेतों की और निकल जाती। आजकल सरसों पर दूर–दूर तक पीले फूल दिखाई देते तो कहीं गेहूँ की फ़सल लहलहा रही होती। आमों के पेड़ भी खूब थे वहाँ पर, बूर पड़ा हुआ था, छोटे–छोटे आम भी कहीं–कहीं दिख रहे थे। पिछले साल उसने देखा था कि यहाँ पर अक्सर कच्चे आम ही मंडी में जाते थे। उसकी मम्मी ने भी कच्चे आमों से कई व्यंजन तैयार किए थे।

कुछ दिनों से जस्सी नोट कर रही थी कि रमन कुछ अजीब सी हरकतें करता। कई बार तो रात को काफ़ी देर से लौटता। जस्सी ने पूछा तो कह देता कि हम तीन–चार दोस्त मिल कर पढ़ाई करते हैं। जस्सी चुप रही, लेकिन उसे कुछ खटका सा रहा। उनके घर में शराब वगैरह तो चलती रहती। मामा रात को अक्सर पैग लगाकर ही सोते। कोई घर में आ जाए, खुशी हो, गमी हो शराब, नानवैज तो आम सी बात थी, जबकि उसका ख़ुद का बाप तो पक्का शराबी और नशेड़ी था। मामा के घर में ऐसे हालात नहीं थे। बाहरवीं के रिज़ल्ट में जस्सी और प्रीति दोनों ही अव्वल रही। किस्मत देखिए, उसी साल गाँव में कॉलेज खुल गया। प्रीति को तो आगे की पढ़ाई के लिए दिल्ली में एडमिशन मिल गई। जस्सी की तो अब अपने गाँव वापसी की तैयारी थी और इसी बीच दोनों बहनों की शादी भी हो गई, जिसमें मामा ने बहुत आर्थिक सहायता की थी। बाकी रिश्तेदारों ने भी जितना बन पड़ा किया। अब शादी की बारी जस्सी की थी, लेकिन जब गाँव में कॉलेज खुल गया तो जस्सी के मन में आगे पढ़ने की तमन्ना हो आई। उसने मामा से जब दिल की बात कही तो वो तो खुशी–खुशी राज़ी हो गए। मामी ने भी कोई एतराज़ नहीं किया। वह भी मुफ़्त की नौकरानी खोना नहीं चाहती थी, ऊपर से उसकी नेकी भी हो रही थी।

जस्सी के लिए वैसे तो सब ठीक था, मगर प्रीति के जाने से अकेली पड़ गई थी। प्रीति को भी सखी से बिछुड़ने का मलाल तो था, लेकिन डॉक्टर बनने का सपना भी तो पूरा करना था। इसी बीच दुःख भरी बात ये हुई कि रमन दसवीं में फ़ेल हो गया। माता–पिता के लिए यह बहुत बड़ा झटका था। दोनों ने जस्सी से विनती की कि वो रमन की पढ़ाई का ध्यान रखे। चाहती तो जस्सी भी यही थी, लेकिन वो उसके हाथ कम ही आता। कोई न कोई बहाना बना कर निकल लेता। एक दिन जब रात को खाने के बाद दो–चार किताबें लेकर बाहर निकल गया तो, जस्सी उसके

कमरे में गई, ताकि उसकी कापियाँ देख सके। अक्सर उसने होमवर्क नहीं किया हुआ था। टीचर ने कई बार नोट लिखे हुए थे। मैथस की कापी का तो हर पन्ना ही लाल था। अभी वो ये सब देख ही रही थी कि जमैटरी बॉक्स से एक पुड़िया सी गिरी जिसमें कुछ सफ़ेद पदार्थ था। जस्सी ने उलट–पलट कर देखा, शायद नमक है, पर रमन नमक क्यों साथ रखेगा। पहले तो उसने वापिस रख दिया, फिर न जाने क्या सोचकर उठा लिया।

अगले दिन कॉलेज में उसने अपनी इतिहास की मैडम जिससे उसकी बहुत बनती थी, उसे दिखाया, तो वह चौंक उठी। "अरे ये तुझे कहाँ से मिला, ये तो नशा है, दूसरे शब्दों में इसे 'चिटा' कहते हैं। इसने ही तो आज के नौजवानों का बेड़ा गर्क कर रखा है। टीचर ने उसे नशे के बारे में और भी बहुत कुछ बताया। कैसे पोस्त, भुक्की और न जाने कैसे–कैसे इंजैक्शन भी नशे के लिए ख़ुद को लगाते हैं। इसकी अगर एक बार लत पड़ जाए तो छूटनी बहुत मुश्किल है। जस्सी तो सकते में आ गई। सोच में पड़ गई । शराब के बारे में तो उसे पता था, घरों में रोज़ ही देखती थी, मगर इन सब का उसे पता नहीं था। दुविधा में थी कि मामा–मामी को बताए या ना। एक बार फिर उसे उसका बैग देखने का मौका मिल गया, लेकिन अबकी उसे कुछ नहीं मिला। कुछ दिनों से वह उससे पढ़ भी रहा था। एक दिन वो धोने वाले कपड़े मशीन में डालने लगी। उसकी आदत थी कि सब कपड़ों की जेबें ज़रूर चैक करती थी, कई बार उनमें से पैसे, चाबियां, पैन और रूमाल तो हमेशा ही निकलते थे। जेबें टटोलते समय उसे रमन की जैकेट की जेब से एक खाली इंजैक्शन मिला। अब तो उसका शक पक्का हो गया। अगले दिन उसने टीचर से फिर बात की।

उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वो क्या करे। तभी उसे प्रीति के डॉक्टर पिता का ध्यान आया, तो शाम को वो उनसे मिलने के बहाने चली गई। अकेले में जब उसने उन्हें सब दिखाया तो वो बिल्कुल हैरान नहीं हुए। बोले 'बेटा, ये बात तो यहाँ आम है, मेरे पास तो ऐसे कितने ही लोग हैं, जो हर रोज़ आते हैं, इसी ने तो युवकों को बर्बाद किया हुआ है। कुछ लोग अपनी कमाई करने के लिए देश के यूथ से खेल रहे हैं'। पुलिस दिन रात इसको बेचने और समगलिंग करने वालों की तलाश में रहती है। बहुत शातिर हैं ये लोग। गिरोह बने हुए हैं इनके। स्कूलों कॉलेजों के आस–पास ही घूमते रहते हैं। इनके ऐजेंट पहले फ्री में इसकी आदत डालते हैं और जब उनको आदत पड़ जाती है तो खूब पैसे ऐंठते हैं। जब इन नशेड़ियों को पैसे नहीं मिलते तो ये चोरी–चकारी, मार–पीट यहाँ तक कि हत्या तक करने से भी नहीं

चूकते। अभी कुछ नहीं बिगड़ा। रमन को रास्ते पर लाया जा सकता है। सरकार की और से बहुत से 'नशा मुक्ति केंद्र' भी खुले हुए हैं। कितने नौजवान तो इसी नशे से बर्बाद हो चुके हैं और कुछ तो अपनी जान तक गँवा चुके हैं। यह नशा देश के लिए बहुत बड़ी समस्या बन चुका है।

यह सब सुनकर जस्सी के तो हाथ–पाँव फूल गए। घर में यह बात बताने की उसकी हिम्मत नहीं हो रही थी। कहीं मामी ये न समझे कि वो उसके बेटे पर खामखाह इल्ज़ाम लगा रही है। उसे अपने बाप की खबर नहीं कि वो क्या–क्या करता है और चली है हमारे बेटे पर इल्ज़ाम लगाने। पर जो भी हो, घर में बताना तो है। वो हर समय रमन पर नज़र रखती। उसके दोस्त कौनसे हैं, वो कहाँ जाता है। एक शाम जब उसने उसे पढ़ाने के लिए तो बुलाया तो वो बोला कि आज उसके दोस्त का जन्मदिन है, तो उसे वहाँ जाना है। जस्सी ने उसे जाने दिया। वो तैयार होकर पैदल ही चल दिया, नहीं तो कई बार साईकल ले जाता था। वो तो कई बार मोटरसाईकल के लिए जिद्द कर चुका था, पर मामाजी ने स्पष्ट कह दिया था कि अठारह की उम्र होने पर ही मिलेगी। वैसे दोस्तों की मोटरसाईकल वो कई बार चला चुका था। कई लड़के तो बाईकस, एक्टिवा इतनी तेज़ चलाते थे कि अक्सर सामने वाला डर ही जाता। साईलेंसर निकाल कर तेज़ आवाज़ और बेमतलब हार्न बजाना और टेढ़ी–मेढ़ी चलाना लड़कों का आम शुगल था। कोई मना करने वाला नहीं और वो किसी की सुनते भी नहीं थे। उनके लिए कोई कानून नहीं थे। लाईसैंस हो या न हो उन्हें कोई फ़र्क नहीं पड़ता। वैसे भी पैसे देकर लाईसैंस बनवाना आम सी बात थी।

रमन जब बाहर निकल गया तो न जाने जस्सी को क्या सूझी, कि चुपके से वो उसके पीछे चल दी। थोड़ी दूरी पर ही एक पुराना मंदिर था, पास ही कुछ पुराने खण्डहर से भी थे। उस तरफ़ गाँव के लोग कम ही जाते थे। जस्सी छुपते–छुपाते उसके पीछे चल दी। घर में शरीफ़ सा दिखने वाला रमन इस समय बड़ी अजीब सी चाल चलता हुआ, सीटी बजाता हुआ गुंडा टाईप लग रहा था। जस्सी ने देखा कि वहाँ पर पाँच–छह लड़के और भी बैठे हुए हैं, सब जैसे रमन का ही इंतज़ार कर रहे थे। जस्सी थोड़ी दूरी पर ही रूक गई, एक पिलर की ओट से उसे सब दिख रहा था। पुड़िया से निकाल-निकाल कर कुछ खा रहे थे। कुछ पी भी रहे थे। एक ने तो टीका टाईप भी कुछ लगाया। जस्सी की जेब में मोबाईल फ़ोन था, उसने दूर से ही ज़ूम करके कुछ फ़ोटोग्राफ लिए, वीडियो बनाई और घर वापिस आ गई। रात को मौका

पाकर उसने मामा से बात की। तभी मामी भी आ गई। सुनकर वही हुआ जिसका जस्सी को डर था। न जाने उसने जस्सी क्या–क्या सुनाया। जस्सी चुपचाप सुनती रही। जब मामी ने अपने दिल का सारा ग़ुबार निकाल लिया को जस्सी ने फ़ोटो और वीडियो दिखाया। अब तो मामी का रंग उड़ गया। मामा ने तभी रमन को बुलाया जो अपने कमरे में बैठा पढ़ रहा था या फिर पढ़ने की एक्टिंग कर रहा था। सब हालात जानकर उसके तो तोते उड़ गए। मुकरने का तो सवाल ही नहीं था।

अगले दिन मामा ने स्कूल जाकर सारी बात प्रिंसिपल साहब को बताई। तस्वीर में दिखने वाले सब बच्चों और उनके माँ–बाप को बुलाया गया। पुलिस को भी खबर करनी ज़रूरी थी। सब बच्चों को प्यार से समझाया। बच्चों से बहुत सी और भी कई जानकारियाँ मिली। धंधा करने वाले कुछ लोग पकड़ में भी आए। पी टी ए की मीटिंग बुला कर माँ–बाप को भी हिदायत की गई कि बच्चों का ध्यान रखना कितना ज़रूरी है। सब तरफ़ जस्सी की वाह–वाह हो रही थी कि उसने इस छोटी सी उम्र में कितना बड़ा काम किया। एक समारोह में जब जस्सी को सम्मानित किया गया तो प्रीती भी आई हुई थी। उसे मान था अपनी सखी पर। गाँव के सरपंच ने भी विश्वास दिलाया कि वो बच्चों को इन बुरी आदतों से बचाने का हर भरसक प्रयास करेंगे और आस–पास के गाँवों में भी ये मुहिम चलाएँगे। गाँव के डॉक्टर तो साथ थे ही और भी बहुत से पंतवते सज्जनों ने सहयोग का वादा किया। आख़िर अपने बच्चों के भविष्य का सवाल थे। यह समस्या घुन की तरह लगी हुई है, ज़रूरत है इसका जड़ से ख़ात्मा करने की।

दोनों सहेलियाँ जस्सी और प्रीति खुश थी। प्रीति ने अपनी पढ़ाई के बारे में बताया। उसने ये भी इच्छा ज़ाहिर कि की डॉक्टर बन कर वो भी पापा की तरह गाँवों में रहकर सेवा करेगी। जस्सी मुँह से कुछ नहीं बोली, मगर उसका सपना आगे चलकर टीचर बनने का था। एक दूसरे का हाथ पकड़े दोनों सखियाँ सरसों के लहलहाते खेतों के बीच तितलियों की तरह उड़ती, चुनरी लहराती और ये गीत गाती "मेरे देश में पवन चले पुरवाई, हो मेरे देश में" चली आ रही थी।

■

20

होली के रंग

हर रोज की तरह सुहाना का मूड आज फिर बिगड़ा हुआ था। चिराग़ तो सीटी बजाता हुआ आफिस को रवाना हो गया, लेकिन घर की हालत ऐसी जैसे दंगल हुआ हो। मजाल है एक भी चीज अपनी जगह पर रखी मिले। बैड रूम और ड्राईंग रूम बुरी तरह बिखरे पड़े । एक सोफ़े का मुँह इधर तो दूसरे का उधर। डाईनिगं टेबल की कुर्सिया कहीं की कहीं।अखबारों के नीचे दबी किताबें तो नजर ही नहीं आ रही थी । हर तरफ से मुड़े कालीन के कोने अपनी कहानी अलग से बयान कर रहे थे। थोड़ा बहुत ठीक करके जब बैड रूम में गई तो दिल किया कि अपना माथा पीट ले। चादर के लटके कोनें , उपर पड़ा गीला तौलिया। बदबू फैलाती एक जुराब इस कोनें में तो दूसरी न जाने कहाँ । मैले कपड़े उठाते समय अचानक सुहाना की नजर कल उतारी चिराग़ की टँगी हुई क्रीम कलर की नई क़मीज़ पर गई। पूरी जेब नीली हुई पड़ी थी, शायद पायलट पैन का कमाल था। कितनी बार उसने कहा कि बाल पैन का प्रयोग करो ठीक रहते है, वैसे भी सारे काम तो कम्प्यूटर पर होते है, और फिर भला जेब पर पैन आजकल कौन टाँगता है, हैंड बैग में भी तो रखा जा सकता है, लेकिन चिराग़ सुने तब ना।

कुछ दिन पहले ही एनवरसरी पर इतनी बढ़िया ब्रांडेंड शर्ट ख़रीदी थी, लेकिन उसकी ऐसी हालात देख कर सुहाना रोने को हो गई। लेकिन यहाँ रोने का वक्त भी किसके पास था। एक तो समय से दफ़्तर पहुंचना है और दूसरा कौन बैठा है यहाँ जो उसके आसूं पोंछेगा। सात वर्षीय बेटी तीरा स्कूल जा चुकी है, और मेड मालती भी आती ही होगी। उसके सामने थोड़े ना दुखड़ा रोना है। तीरा का कमरा बिलकुल साफ सुथरा, कितनी प्यारी बच्ची है, बिलकुल माँ पर गई है, शुक्र है बाप पर नहीं गई। एक बारगी तो सुहाना को अपने पर गर्व हो आया, लेकिन बिखरे हुए घर को देख कर बुझ सी गई। मेड मालती वैसे तो बहुत अच्छी है, मगर किच किच बहुत करती है। साहब ऐसा क्यूँ करते है, इतना सामान क्यूँ फैलाते है, एक कपड़ा निकालते है तो दस नीचे गिरा देते है। अब सुहाना उसे कैसे समझाए कि वो इन सब आदतों से कितनी परेशान है, लेकिन उसके सामने तो चिराग़ का पक्ष ही लेना पड़ता है। मुस्करा कर कहती है, कोई बात नहीं, मर्द जात ऐसी ही होती है। तुझे तेरे काम

के पैसे मिलते है। सुहाना डरती है , कहीं मुहँ से उल्टा सीधा निकल गया तो काम ही न छोड़ दे और और न जाने कितने घरों में जाकर बात का बतगंड़ बनाएगी ।

लंच टाईम में दिल के सब ज़ख़्म नीरू के सामने खुलते है। लेकिन उसे नीरू की बातें सुन कर बहुत ताज्जुब भी होता है और एक तरह की जलन सी भी होती है। साधारण सी शक्ल सूरत वाले उसके पति रोहित की आदतों के बारे में तो वो ज्यादा कुछ नहीं जानती लेकिन इतना पता है कि कमाई भी कुछ ख़ास नहीं, उपर से पैग भी लगाता है और सिगरेट से भी कोई परहेज़ नहीं।किराए का घर है।नीरू साधारण से कपड़े पहनती है, मेकअप भी बहुत कम, उसकी तनख़्वाह भी सुहानी से कम है। एक बेटा है लगभग तीरा की उम्र का, बस उसकी बातें करती है। रोहित की कोई अच्छी बात चाहे बता दे, बुरी तो कभी नहीं । हमेशा खुश रहती है। चिराग़ की कुछ लापरवाहियों को दरकिनार कर दिया जाए तो उसमें गुण ही गुण है। दिलकश पर्सनैलिटी ,बढ़िया नौकरी, अपना फ़्लैट, सब से बड़ी बात कि वो सुहानी को दिल से प्यार करता है, उसकी पूरी केयर करता है। बहुत कम ग़ुस्सा होता है। सुहानी की बातें सुनकर नीरू मुस्करा भर देती और उसे समझाती।

सुहानी कई बार उसे कहती कि उसका दिल करता है कि चिराग़ को छोड़ दे, इतना लापरवाह बंदा कभी उसने जिंदगी में नहीं देखा। दूसरी तरफ मिस्टर चिराग़, वैसे तो सब अच्छा था, लेकिन एक ऐसी बुराई जो सब अच्छाईयों पर भारी । सुहानी भी नहीं जानती थी कि चिराग़ को शक की भी बीमारी है। उसने कभी ऐसा जाहिर ही नहीं होने दिया। चुपके चुपके वो सुहानी पर निगाह रखता, उसका मोबाईल चैक कर लेता। कुछ दिन पहले सुहानी की प्रमोशन हुई। खूब खुशी मनाई गई। लेकिन ओहदा बढता है, तो ज़िम्मेदारियाँ बढ़नी भी स्वाभाविक ही है। पहले तो सुहानी शाम को छः बजे तक घर पहुँच जाती थी, और आते आते तीरा को भी डे केयर से पिक कर लेती, मगर अब उसे देर हो जाती । ये काम अब चिराग़ के जिम्मे था। सुहानी को अक्सर आठ बज जाते। सुहानी ने कोशिश तो की लेकिन उसे कार चलानी नहीं आई, वो स्कूटर पर कम्फर्टेबल फ़ील करती या फिर कैब ले लेती।

उस दिन ज़ोरों की बारिश , सुहानी ऐक्टिवा अॉफिस में ही छोड़कर कैब बुक करने जा रही थी कि उसके कुलीग जंयत ने उसे अपनी गाड़ी में छोड़ने की पेशकश की। सुहानी को इसमें कोई बुराई नहीं लगी, क्यूँकि जंयत का घर भी उसी तरफ था।सुहानी को जंयत की गाड़ी से उतरते चिराग़ ने उपर बालकनी से देख लिया था उसे मन ही मन बुरा तो बहुत लगा, मगर वो चुप रहा।एक दो बार फिर

उसे किसी कारणवश जंयत के साथ आना पड़ा। एक बार तीरा बीमार हो गई तो सुहानी को दो दिन की छुट्टी लेनी पड़ गई। कुछ जरूरी काग़ज़ात पर दसख्वत करवाने दफ़्तर का एक आदमी घर पर आ गया। चिराग़ को पता चला तो वो ख़ून के घूँट पी कर रह गया, पर मुँह से कुछ नहीं बोला। नीरू के समझाने पर अब सुहानी ने भी चिराग़ की आदतों पर चिढ़ना छोड़ दिया था, उसने मालती के पैसे बढ़ा दिए ताकि वो बिखरा घर समेटने में आनाकानी न करें। सब ठीक चल रहा था, कि अचानक एक दिन सुहानी का पैर आफिस की सीढ़ियों से अचानक फिसल गया, शायद किसी ने पानी गिरा दिया था। सात आठ सीढ़ियों से वह नीचे गिर गई। फटाफट हस्पताल पहुँचा दिया, परतुं उसके पैर पर प्लास्टर लग गया। इसी बीच चिराग़ को कई बार फ़ोन किया पर उसका मोबाईल स्वीच आफ जा रहा था।मैसेज छोड़ दिया गया। जंयत उसे अपनी गाड़ी में घर छोडने गया। सुहानी से तो गाड़ी से उतरा भी नहीं जा रहा था, मजबूरन जंयत को सहारा देकर उतारना पड़ा। सुहानी का घर पहली मंजिल पर था, लिफ़्ट नहीं थी, एक दो कदम चलकर ही सुहानी गिरने को हुई तो तो जयंत उसे बाजू से पकड़ने ही वाला था कि चिराग़ ने पीछे से आकर उसे ज़ोर का झटका दिया और सुहानी को गोद में उठाकर ले गया।

सोसायटी के कुछ लोग भी वहां आ चुके थे, जंयत को बहुत बुरा लगा। सुहानी ने सब देखा पर कुछ कर ना सकी। उपर जाकर सुहानी का हालचाल पूछने की बजाए उसने जंयत को बहुत बुरा भला कहा। और तो और न जाने कितनी पुरानी भड़ास निकाली। उसकी बातों से सुहानी हक्का बक्का रह गई। इतने सालों से उसके साथ रह कर भी वो जान नहीं पाई कि उसके मन में कितना जहर घुला पड़ा है। तीन चार दिन के बाद सुहानी कुछ ठीक तो हो गई, लेकिन पलस्तर खुलने में अभी काफी दिन लगने थे। बीच बीच में उसका हालचाल पूछने लोग आते रहे, आफिस के लोग भी आए। चिराग़ आफिस के किसी भी पुरूष से ढ़ग से बात न करता, यहाँ तक कि जब बास अपनी बीबी समेत आया तो उसने बास से भी अच्छे से बात न की। सुहानी को चिराग़ का नया रूप ही देखने को मिल रहा था। उस शाम जब नीरू आई तो वो उसके सामने रो पड़ी , और पहले दिन घटी जंयत वाली घटना का वर्णन किया। सुहानी ने दो बार चिराग़ के दुर्व्यवहार के लिए फ़ोन पर जंयत से माफ़ी भी माँग ली थी पर वह मन से बहुत शर्मिंदा थी। सब मायके वाले आ कर चले गए , पर सुहानी की माँ उसकी देखभाल के लिए रूक गई थी।

दामाद की उल्टी सीधी हरकतों से वह भी दंग थी। बात बात पर वो सुहानी को ताना मारता।पुरानी बातों को लेकर कभी घर देर से आने पर व्यंग् करता तो कभी उसके पहनावे पर टिकाटिप्पनी। एक दिन तो हद ही हो गई, जब उसने सुहानी को कहा कि वो गिरी ही इसलिए थी कि उसका ध्यान ही कहीं और रहा होगा। जब वो घर पर होता तो सुहानी का मोबाईल अपने आसपास रखता, पहले ख़ुद बात करता। सुहानी आफिस में उच्च पद पर थी, बहुत सी काम की बातें भी करनी होती थी। आजकल तो वैसे भी कितने काम आनलाइन हो जाते है।चिराग़ के ऐसे व्यवहार से सुहानी का दम घुटने लग गया। माँ भी हैरान थी। सुहानी ने माँ से कहा कि वो कुछ दिनों के लिए मायके जाना चाहती है, वो भी चिराग़ को बिना बताए। अब माँ अंसमज में। वो नहीं चाहती थी कि बेटी का बसा बसाया घर उजड़े । पर बेटी की जिद के आगे उसके झुकना पड़ा, वैसे भी बेटी के दुख से वो परेशान थी। अगली सुबह जब चिराग़ डयूटी पर गया तो टैक्सी बुला कर तीरा को लेकर सुहानी अपनी माँ के साथ चली गई। चाबी पड़ौस में दे गई। दो घंटे का सफ़र था। वहाँ जाकर सुहानी को ऐसा महसूस हुआ जैसे किसी जेल से मुक्ति मिली हो।

इधर चिराग़ को पहले तो झटका लगा, मगर फिर उसने सोचा, जाएगी कहाँ , आ जाएगी। दो तीन दिन में सारी अकड़ ढीली पड़ गई। मालती पीछे से चाबी लेकर थोड़ा बहुत काम कर जाती, कभी छुट्टी भी कर लेती। चिराग़ के मन में आया कि किसी भाई बहन को बुला लूँ, मगर हर कोई व्यस्त , यहाँ तक कि मां ने भी आने से मना कर दिया। वो दूसरे शहर में भाई के पास रहती थी, और भाभी टीचर थी तो बच्चों को कौन देखता। हद तो तब हो गई, जब सुहानी ने चिराग़ का फ़ोन तक भी नहीं उठाया। जब उसके भाई के फ़ोन पर चिराग़ ने काल की तो भी उसने बात करने से मना कर दिया। चिराग़ की सारी हेकड़ी निकल गई। बेटी तीरा के बिना उसका मन न लगता।पंद्रह दिन में सारा घर उल्ट पल्ट। जुराबों के जोड़े ही न बनते।अलग अलग तरह की जुराबें पहन कर जाता।नई भी ख़रीद ली मगर कितनी, छुपाने की कोशिश तो बहुत करता , मगर फिर भी दिख जाती। टाई की गाँठ भी ठीक से न लगा पाता, कभी क़मीज़ का बटन टूटा होता तो कभी बंद भी नीचे उपर किया होता। कुछ कुलीग मुँह बंद कर हँसते तो कुछ मुहं लगे मज़ाक भी उड़ाते। आख़िर सारी अकड़ छोड़ कर वो एक शुक्रवार की शाम ससुराल पहुँच गया। दो दिन बाद सुहानी का पलस्तर निकलना था, उसने यही बहाना बनाया कि वो इसीलिए आया है। सभी ने अच्छे से बात की मगर सुहानी ने मिलने से इंकार कर दिया। अगले दिन चिराग़ ने

सुहानी की भाभी से अकेले में बात की। वो सब जानती थी। सुहानी की भाभी से बहुत बनती थी, इधर चिराग़ से भी भाभी की अच्छी दोस्ती थी। बहुत मुशकिल से वो दोनों को समझा पाई। वैसे तो सुहानी भी अपने घर को बहुत मिस कर रही थी। रास्ते भर मन ही मन दोनों अपनी अच्छी बुरी आदतों का मनन करते आए । सोसायटी में पहुँच कर जब चिराग़ ने गाड़ी खड़ी की तो देखा कि चारों और होली के रंग बिखरे पड़े है। उसने भी जब मुट्ठी भर गुलाल सुहानी के चेहरे पर लगाया तो वो मुस्करा दी, और चिराग़ की बाँहों का सहारा लेकर धीरे धीरे गाड़ी से नीचे उतर आई। उसकी जिंदगी में भी होली के रंग फिर से घुल आए थे।

■

21

क्या करे पूर्वी?

रोहित अभी थोड़ी देर पहले ही घर आया था। फ्रेश होकर दो कप चाय बनाई और ट्रे में कुछ बिस्कुट और नमकीन रख कर पत्नी रोमा के पास आकर मेज़ पर चाय रखी। तकिये का सहारा देकर पहले रोमा को अच्छे से बिठाया और फिर चाय का कप उसके हाथ में पकड़ाया। रोमा ने चुपचाप चाय पकड़ी और धीरे–धीरे पीने लगी। जब बात करने का कोई भी सिरा हाथ न लगा तो रोहित ने चुप्पी तोड़ते हुए यहाँ–वहाँ की बातें शुरू कर दी, जैसे कि किसी का फ़ोन आया था क्या, या फिर कामवाली मालती ने ढंग से काम किया या नहीं। रोमा ने हर बात का उत्तर सिर्फ़ सिर हिला कर ही दिया। चाय ख़त्म होते ही रोहित उसके पास आकर पलंग पर बैठ गया और उसका हाथ अपने हाथ में लेकर सहलाने लगा।

बड़ी मुश्किल से रोमा ने अपनी चुप्पी तोड़ी और कातिल निगाहों से उसकी और देखते हुए बोली, "आख़िर कब तक तुम मेरी सेवा करते रहोगे, जबकि ये सब तो मुझे करना चाहिए"। "क्यों भई ये किस किताब में लिखा है कि पति घर का काम नहीं कर सकता", बात पूरी भी नहीं हुई थी कि डोर बैल बजी। दरवाज़ा खोला तो उनकी इकलौती बेटी पूर्वी अपने पति जतिन के साथ बैग उठाए खड़ी थी। रोहित का मन आशंकाओं से भर उठा, लेकिन बेटी और दामाद का मुस्कुरा कर स्वागत करना भी ज़रूरी था। दोनों अंदर आकर माँ के पास बैठ गए। रोहित दोनों के लिए पानी लाया। चाय बनाने के लिए जाने लगा तो पूर्वी ने उसे मना कर दिया और स्वयं ही चाय बनाने के लिए उठ गई। तभी जतिन का मोबाईल बजा तो वो भी उठकर बाहर बरामदे में चला गया। रोहित और रोमा ने एक दूसरे की और देखा। दोनों की आँखों में एक ही सवाल था और परेशानी भी थी।

बेटी और दामाद घर पर आए तो खुशी होती है और वो भी इकलौती बेटी, लेकिन जिस तरह वो अटैची लेकर आए थे तो मन में खटका होना ज़रूरी था। पूर्वी, रोहित और रोमा की इकलौती बेटी थी। सुंदर, सुशील, संस्कारी और सुशिक्षित। बड़ी अच्छी ऑनलाईन पचास हज़ार रूपए महीने की नौकरी मिली हुई थी। सिर्फ़ थोड़ा सा जन्मजात पाँव में नुक्स था। थोड़ा लँगड़ाकर चलती थी। बहुत इलाज करवाया, लेकिन कमी दूर नहीं हुई। चार साल पहले घर में कितनी रौनक़ थी। रोहित की माँ

बाबूजी दोनों थे और रोमा भी बिल्कुल स्वस्थ थी। दोनों बहनों की शादी पहले ही हो चुकी थी और छोटा भाई अपने परिवार के साथ आगरा में नौकरी करता था। दो साल के अंतराल में ही माँ–बाबूजी चल बसे और बीमारी ने रोमा को ऐसा जकड़ा कि बिस्तर ही पकड़ लिया। रोहित की आर्थिक स्थिति पहले से ही ठीक नहीं रही। जब तक बाबूजी ज़िंदा रहे, उनकी पेंशन से ही काम चल जाता था, थोड़ा बहुत गाँव के मकान और दुकान का किराया आ जाता था।

बाद में गाँव की जायदाद बेचकर शहर में एक घर बना लिया और छोटे भाई को भी कुछ पैसे दे दिए। उसने कुछ बैंक से लोन लेकर आगरा में ही एक फ़्लैट ख़रीद लिया था। रोहित की आमदनी बहुत कम थी, काम तो कई किए, लेकिन किस्मत ने साथ नहीं दिया। आजकल वो बीमे का काम करता था। गुज़ारा मुश्किल से हो पाता, लेकिन चलो मकान अपना था। जब पूर्वी को नौकरी मिली तो उसने नई गाड़ी ख़रीदने की ज़िद्द की। यों तो पुरानी गाड़ी थी, पर अक्सर खराब ही रहती थी। यहाँ–वहाँ जाने में दिक्क़त होती थी और फिर फ़रीदाबाद जैसा शहर। सबसे ज़्यादा मुश्किल तो रोमा को डॉक्टर के पास ले जाने की होती थी। भले ही कैब का जमाना है, लेकिन अपनी गाड़ी का अलग ही मज़ा है। जहाँ जी चाहे रोक लो, सामान रख लो। वैसे रोहित अपने काम के लिए तो बाईक पर ही जाता था। पूर्वी बहुत ही समझदार लड़की थी। वह अपने माँ–बाप का पूरा ख़्याल रखती थी। हमारे देश में अच्छी भली लड़कियों की शादी में सौ अड़चनें आती हैं और पूर्वी की टाँग में नुक्स के साथ–साथ क़द भी काफ़ी छोटा था। शादी होने की उम्मीद तो थी नहीं, इसलिए उसने अपना पूरा ध्यान अपनी नौकरी और माँ–बाप की सेवा में ही लगाया हुआ था।

काफ़ी पहले से ही उनका सात, आठ दोस्तों का एक गरूप था, जो कि पहले तो इकट्ठे स्कूल, कॉलेज में थे और बाद में नौकरी या अपने कामों से जब भी फ़ुर्सत मिलती अक्सर मिलते रहते। दो की शादी भी हो गई थी, लेकिन मिलने का सिलसिला चलता ही रहा। यहाँ तक कि साल में एक बार तो वो सभी इकटठे कभी, गोवा, मनाली, ऊँटी आदि भी ज़रूर जाते थे। गरूप में लड़के, लड़कियां दोनों ही थे। सबका पूर्वी पर विशेष स्नेह रहता। सात साल से जतिन भी उन्हीं के गरूप से था। बहुत ही अच्छे घर का लड़का। जतिन के पिता और चाचा का अपना होलसेल का काम था। दोनों परिवार इकट्ठा ही रहते थे। बदक़िस्मती से दो साल पहले जतिन की मम्मी की मृत्यु हो गई थी। चाची ने उनका बहुत साथ दिया। जतिन का एक भाई और एक बहन थी, दोनों की शादी हो चुकी थी। चाचा का एक बेटा और दो बेटियाँ

भी शादीशुदा थी, अब जतिन की शादी की बारी थी। माँ की मौत के सदमे से अभी परिवार उबरा नहीं था, लेकिन समय की गति तो चलती ही रहती है। जतिन की बहन ने शादी की बात चलाई। अच्छा घर–बार और पढ़ा– लिखा लड़का हो तो रिश्तों की क्या कमी होती है। घर वालों के कहने पर कई लड़कियां देखी, लेकिन जतिन को कोई पसंद नहीं आई। दरअसल जतिन बहुत ही सादा और उच्च विचारों वाला मितभाषी लड़का था। सबसे छोटा होने के नाते उसका माँ से बहुत जुड़ाव था। माँ के बाद वह अपने आप को बहुत अकेला महसूस करने लगा था। पिता काम में और बाकी सब अपने–अपने परिवार में व्यस्त थे। आजकल के जमाने में लोगों के पास समय के इलावा सब कुछ है। घर से ज़्यादा उसका मन दोस्तो में लगता था। एम. बी. ए. की पढ़ाई के बाद उसका मन तो नौकरी करने को था, लेकिन फ़ैमिली बिज़नेस ही इतना फैला हुआ था कि उसे भी उसी में ही लगना पड़ा।

जब भी समय मिलता, सभी दोस्त ज़रूर मिलते। कम से कम महीने में एक बार तो मिल ही लेते। सब आसपास दिल्ली, गुड़गाँव, फ़रीदाबाद, नोएडा में ही थे। कुछ समय से जतिन के मन में पूर्वी के लिए कुछ ज़्यादा ही सॉफ्ट कॉर्नर बनने लग गया था। दोस्त तो वो बहुत पुराने थे। बहुत बार अकेले भी मिल चुके थे, लेकिन आजकल जतिन पूर्वी से मिलने के लिए ज़्यादा ही उत्सुक रहता। जबकि पूर्वी में कोई बदलाव नहीं, वो तो उससे पहले की तरह ही मिलती। वैसे भी पूर्वी को पता था कि ढंग का लड़का उसे मिलेगा नहीं और समझौता करना वो चाहती नहीं थी। वो बड़ी दृढ़ निश्चय वाली और अपने कैरियर को समर्पित थी। जिस कंपनी में वो काम करती थी, वहां उसकी बहुत इज़्ज़त थी। कंपनी का ऑफिस तो हैदराबाद में था। वो तो घर से ही काम करती थी, लेकिन साल में दो बार उसे वहाँ एक–एक हफ़्ते के लिए जाना होता था। ज़ाहिर है कि सब ख़र्चा कंपनी ही उठाती थी। समय अपनी गति से चलता जा रहा था। जतिन का पूर्वी के घर भी आना–जाना होता था। आजकल के जमाने में लड़के, लड़कियाँ मिलते रहते हैं और उनकी दोस्ती पर पढ़े–लिखे लोगों के घरों में कम ही आपत्ति होती है।

जतिन का अपनी और खिंचाव कुछ दिनों से पूर्वी भी महसूस कर रही थी, लेकिन फिर उसे ये अपना वहम ही लगा। उसने महसूस किया कि जैसे जतिन कुछ कहना चाहता हो, लेकिन कह नहीं पा रहा। उसे लगा कि शायद उसके घर में कोई प्रोब्लम न चल रही हो। दरअसल जतिन भी अपने आप से उलझ रहा था। पूर्वी के बारे में उसके परिवार के बारे में वो अच्छे से जानता था। पूर्वी को प्रपोज़ करने से

पहले वो अपने मन की थाह लेना चाहता था। क्या सचमुच ही वो पूर्वी से प्रेम करने लगा था या फिर उसे सहानुभूति थी। कहीं ऐसा तो नहीं कि बाद में उसे अपने निर्णय पर पछताना पड़े। पैर में नुक्स है तो क्या हुआ, बोलती कितना मधुर है, घने बाल, गोरे मुखड़े पर जब अठखेलियाँ करते हैं तो वह अपनी नज़र ही नहीं हटा पाता। ग़ुस्सा करना तो जैसे वो जानती ही नहीं। सबसे बड़ी बात कि अपने आप को हर स्थिति में कितनी आसानी से एडजस्ट कर लेती है। पिछली बार जब उनका गरूप घूमने गया था, तो एक जगह जंगल में रास्ते में उनकी गाड़ी खराब हो गई और उन्हें काफ़ी मुश्किल हुई। सब लोगों का मूड खराब और पैकेज कम्पनी को फ़ोन पर उलटा–सीधा बोल रहे थे। सिर्फ़ पूर्वी ही शांत मन से सबका मूड ठीक करने में लगी हुई थी। बहुत बार ऐसा होता था कि कठिन से कठिन परिस्थिति में भी उसके होंठों पर स्वाभाविक मुस्कान तैरती।

जतिन को लगता कि माँ की मृत्यु के बाद वो पूर्वी के ज़्यादा क़रीब हो गया है। दरअसल छोटा होने के कारण वो अपनी माँ के बहुत क़रीब था। कुछ तो पिताजी का स्वभाव गरम था और कुछ वो बिज़नस में व्यस्त रहते। कई बार तो वो अपने आप को बिल्कुल ही अकेला महसूस करता। आख़िर एक दिन हिम्मत करके उसने पूर्वी को कह दिया कि वो उसे प्यार करता है और शादी करना चाहता है। एकबारगी तो पूर्वी को अपने कानों पर यक़ीन नहीं हुआ। वो इस स्थिति के लिए बिल्कुल तैयार नहीं थी। बिना उसकी बात का जवाब दिए उसने जतिन को घर छोड़ने के लिए कहा। मन की बात तो कह दी, लेकिन हड़बड़ा वो भी गया। चुपचाप उसने बाईक स्टार्ट की और पूर्वी को घर छोड़ दिया। रास्ते में दोनों ही चुप रहे। घर के आगे उतर कर पूर्वी ने 'बाए बाए' कहने की बजाए सिर्फ़ इतना ही कहा कि अपनी बात पर अच्छी तरह ग़ौर कर ले। जल्दबाज़ी में निर्णय लेना ठीक नहीं और अपने घर के अंदर चली गई। शायद पहली बार उसने जतिन को घर के अंदर आने के लिए नहीं कहा था। वरना तो हमेशा ही वो उसे अंदर आकर चाय कॉफ़ी पीने के लिए ज़रूर कहती थी और कई बार वो आ भी जाता था, लेकिन आज परिस्थितियाँ कुछ और थी।

हर लड़की की तरह शादी के सुनहरी सपने तो पूर्वी ने भी देखे थे, लेकिन धीरे–धीरे उसे वास्तविकता भी समझ आ गई थी। अब तो उसकी उम्र तीस की होने वाली थी। ये नहीं कि उसकी शादी की किसी को चिंता नहीं थी। उसके परिवार वाले सभी बहुत अच्छे थे। कई बार उसकी सहेलियाँ अपने परिवार की लड़ाई–झगड़े की

बातें बताती तो उसे बड़ी हैरानी होती, क्योंकि उसके परिवार में ये बातें न के बराबर थे। दूर–दूर के रिश्तेदारों का उनके घर आना–जाना लगा रहता था और वो भी जाते थे। रिश्ते की बात तो कई जगह चली, लेकिन कहीं न कहीं अटक गई। आज जब जतिन ने अपने मन की बात कही तो वह सोचने को मजबूर हो गई। वो कोई अठारह - बीस साल की अल्हड़ यौवना तो थी नहीं, वो तो अपनी उम्र से भी ज़्यादा परिपक्व मन की थी। मन के किसी एक कोने में खुश तो वो भी थी, लेकिन उसे धरातल पर पैर रखकर फैसला लेना था। जतिन और उसके परिवार में किसी प्रकार की कोई कमी नहीं थी, तो क्या वो उसे बहू के रूप में स्वीकार कर पाएंगे ? दूसरी तरफ़ वो माँ–बाप की इकलौती संतान थी, माँ भी अक्सर बीमार रहती है। इलाज पर काफ़ी ख़र्चा हो जाता था। पापा की कमाई से तो घर भी नहीं चल पाता। पहले उसके दादा जी की पेंशन आती रहती थी। बाद में उनके गुज़र जाने के बाद ननिहाल से बहुत सहारा मिला और अब तो वो भी कमाने लग गई, लेकिन इस महंगाई के जमाने में गुज़ारा करना आसान नहीं है, अभी तो गाड़ी की भी कितनी किश्तें बाकी हैं। शुक्र है कि फ़्लैट की सारी किश्तें दादा जी ने चुकता कर दी थी।

इसी उहापोह में दो दिन निकल गए। न उसका काम में मन लगता और जतिन को फ़ोन करने की हिम्मत भी नहीं थी। आख़िर बात करती भी तो क्या। तीसरे दिन जतिन का फ़ोन आया कि वो उसकी बिल्डिंग के नीचे ही खड़ा है और वो उससे मिलना चाहता है। मिलना तो पूर्वी भी चाहती थी, लेकिन पहल करने से सकुचा रही थी। दस मिन्ट में ही वो नीचे पहुँच गई, मगर जतिन से नज़रें नहीं मिला पाई। "हाय" कह कर चुपचाप बाईक के पीछे बैठ गई। उसे ख़ुद पर ही हैरानी हो रही थी। माना कि वो बहुत बातूनी नहीं थी, लेकिन फिर भी काफ़ी बातें होती थी। दो दिन में ही जैसे सब बदल गया। जतिन ने कॉफ़ी हाऊस के सामने जा कर बाईक खड़ी कर दी। दोनों चुपचाप एक कोने वाली टेबल पर बैठ गए। कुछ देर तक यों ही चुप्पी पसरी रही। फिर जतिन ने हिम्मत करके धीरे से उसके हाथ पर अपना हाथ रखते हुए पूछ ही लिया "कुछ सोचा"।

पूर्वी कुछ बोल नहीं पा रही थी, शब्द जैसे मुँह में अटक कर रह गए। कुछ देर मौन पसरा रहा। बात बदलते हुए जतिन ने पूछा, "क्या खाओगी"? कोई जवाब न पाकर जतिन ने साऊथ इंडियन ऑर्डर कर दिया। उसे मालूम था कि पूर्वी को डोसा, इडली बहुत पसंद है। थोड़ी देर में खाना आ गया तो दोनों चुपचाप धीरे–धीरे खाने लगे। ऐसे चुपचाप तो वो कभी खाते ही नहीं थे। जब भी मिलते थे तो न जाने

कितनी ही बातें दोनों के बीच होती थी शेयर करने के लिए। समय बीत जाता, लेकिन बातें ख़त्म ही नहीं होती थी। तभी खाते–खाते अचानक ही पूर्वी ने सीधे शब्दों में पूछा, "क्या तुम्हारे घर वाले इस रिश्ते के लिए राज़ी होंगे"? उनसे बात करने से पहले मैं तुम्हारे विचार जानना चाहता हूँ? अगर तुम तैयार हो तो मैं घर वालों को मना लूँगा। वैसे सब अपनी–अपनी गृहस्थी में मस्त हैं, किसी को मेरे बारे में सोचने की फ़ुर्सत नहीं है। पिताजी को काम और शराब के अलावा कुछ सूझता नहीं, माँ होती तो और बात थी, जतिन का स्पष्ट उत्तर था। जानती तो पूर्वी पहले भी थी, लेकिन आज उसके मुँह से सुनकर साफ़ था कि माँ की मौत के बाद जतिन अपने आप को कितना अकेला महसूस करता है।

"वैसे तो तुम मेरे बारे में काफ़ी कुछ जानते हो, लेकिन फिर भी मैं बहुत सी बातें स्पष्ट करना चाहूँगी। मेरी विकलांगता के बारे में तो तुम्हें पता ही है। इसके इलावा मुझे अपने माँ–बाप की आर्थिक सहायता भी करनी होगी। उनकी सेवा मेरी ज़िम्मेदारी है। किसी प्रकार के दहेज की उम्मीद न रखना। शादी बिल्कुल सादा तरीके से होगी। "पूर्वी ने बिना किसी लाग–लपेट के एक ही बार में सारी बातें कह दी। जतिन तो इस सब के लिए पहले से ही तैयार था। उसके उदास चेहरे पर जैसे रौनक़ लौट आई, खुशी के मारे मुँह से जब कोई शब्द न सूझे तो उसने धीरे से पूर्वी का हाथ दबा दिया और उसकी आँखों में झाँकने लगा। उसकी नज़र में न जाने क्या था कि पूर्वी के गाल सुर्ख़ हो उठे, जैसे किसी ने मुट्ठी भर गुलाल मल दिया हो। खाना तो लगभग ख़त्म हो गया था और बातों के चक्कर में कॉफ़ी ने तो ठंडा होना ही था, लेकिन किसे परवाह थी। जतिन ने जल्दी से बिल से कहीं ज़्यादा पैसे प्लेट में रखे और अधिकार से पूर्वी का हाथ पकड़कर बाहर आ गया। जतिन ने बाईक को किक मारी तो पूर्वी पहले की तरह पीछे बैठ गई, लेकिन थोड़ा सा सटकर। अब जतिन का हौंसला भी बढ़ गया था। वो मुस्कुरा कर थोड़ा पीछे को हो गया। पूर्वी ने भी हल्के से अपनी बाहें जतिन की कमर में डाल दी। दोनों मानों हवा में उड़ते जा रहे थे। जतिन ने पूर्वी को घर के बाहर छोड़ दिया।

जतिन के तो पाँव मानो ज़मीन पर नहीं पड़ रहे थे, लेकिन आने वाली मुश्किलों से वो भी अनजान नहीं था। दो, तीन बार पूर्वी भी जतिन के घर जा चुकी थी, लेकिन अकेले नहीं। उसकी बहन की शादी पर और मम्मी की मृत्यु पर उनका सारा गरूप ही गया था। दोनों बार ही काफ़ी भीड़ थी, इसलिए किसी को कुछ याद नहीं होगा, लेकिन बहन की शादी के वक्त सब लोग उसकी माँ और भाभी से विशेष

तौर पर मिले थे। माँ तो अब रही नहीं, तो जतिन ने सोचा कि भाभी से ही बात की जाए। वैसे तो देवर–भाभी के रिश्ते में बहुत अपनापन और चुहलबाजी होती है, लेकिन जतिन थोड़ा शर्मीला था। मज़ाक़–वज़ाक करना उसे नहीं आता था। उसकी भाभी से सिर्फ़ काम की बात ही होती थी। चाचाजी की बहू भी थी, लेकिन उससे भी वो कम ही बोलता था। चाची और पिताजी से बात करने की हिम्मत ही नहीं हो रही थी। उसकी अपनी बहन और चाचा की दोनों बेटियाँ अपने अपने घरों में थी। उसने अपनी बहन से ही बात करने का मन बनाया। बहन का घर दूसरे शहर में था और बिना किसी काम के वो वहाँ जाए कैसे। यूँ तो उसकी शादी को चार साल हो गए थे, लेकिन जीजाजी से भी काम की बात होती थी।

जतिन समझ नहीं पा रहा था कि आख़िर अपने मन की बात किससे कहे। रह–रह कर माँ की याद आती। काश अगर आज माँ ज़िंदा होती तो सब कुछ संभाल लेती। इसी ऊहापोह में चार दिन निकल गए। इस बीच वो पूर्वी से मिला तो नहीं, अलबत्ता फ़ोन पर रोज़ बात होती। दोनों का समय इधर–उधर की बातों में निकल जाता। पूर्वी ने कुछ पूछा नहीं और जतिन के पास बताने को कुछ था नहीं। दोस्तों की मदद भी नहीं ली जा सकती थी। अगले दिन जब वो शाम को घर पहुँचा तो अपनी बहन को देखकर उसकी खुशी की सीमा न रही। दरअसल उसके जीजाजी को साथ वाले शहर में एक दिन के लिए कुछ काम था तो बहन भी साथ ही चली आई। वो उसे छोड़कर चले गए थे। जतिन बात करने का मौका ढूँढ रहा था, लेकिन संयुक्त परिवार में एकांत मिलना इतना आसान नहीं होता। चाची, दोनों भाभियाँ, ऊपर से बच्चों ने उधम मचा कर रखा हुआ था। रात के खाने के बाद जब सब सोने को चले गए तो बहन, पिताजी के कमरे में जाकर उनका हाल–चाल पूछने लगी। पहले तो बड़ा भाई भी था, लेकिन फिर वो चला गया।

जतिन भी वहाँ जाकर बैठ गया। पिताजी ने ही बहन से कहा कि वो कोई लड़की जतिन के लिए ढूँढे। बहन ने कहा कि लड़कियाँ तो दो, तीन उसकी नज़र में हैं, लेकिन जतिन हां तो बोले। एक तो उसकी नन्द की सहेली ही है, अगर कहो तो बात चलाऊँ । बहन ने मोबाईल से उसकी फ़ोटो भी दिखा दी, लेकिन जतिन को कहाँ दिलचस्पी थी। मगर उसने थोड़ी हिम्मत दिखाई। उसने भी पूर्वी की फ़ोटो मोबाईल से उसके आगे करते हुए कहा, "ये लड़की कैसी रहेगी, याद है आपको, आपकी शादी में भी आई हुई थी"। बहन मीता ने ध्यान से देखा और बोली, तब का तो याद नहीं, लेकिन मैंने इसे देखा हुआ है। जहाँ तक मुझे याद है, छोटे क़द की

गोरी सी लड़की है और थोड़ा लँगड़ाकर चल रही थी, शायद इसके पैर में चोट लगी हो। नहीं दीदी, इसके पैर में थोड़ा जन्मजात नुक्स है, लेकिन बहुत अच्छी है और मुझे पसंद है। पिछले सात सालों से मैं इसे जानता हूँ। इसके पहले की मीता और पापा कुछ बोलते जल्दी–जल्दी उसने उसके बारे में सब कुछ बता दिया। अब बाप–बेटी एक दूसरे का मुँह देख रहे थे।

जिस बात का जतिन को डर था वही हुआ। पिताजी की आँखों में जैसे ख़ून उतर आया। दिन का समय होता तो न जाने वो क्या करते। रात के बारह बज रहे थे। वो चुप रहे, ग़ुस्से को दबाते हुए सिर्फ़ इतना ही कहा, सुबह बात करेंगे। अगले दिन घर में हंगामा खड़ा हो गया। चाची ने तो कुछ नहीं कहा, मगर उनका बेटा और जतिन का सगा भाई तो आक्रोश से भरे बैठे थे। "ऐसी लड़की से शादी कर के समाज में हमारी नाक कटवानी है क्या? लोग हमारा मज़ाक़ बनाएंगे, तुझे क्या लड़कियों की कमी है"। भाभियाँ भी कहाँ पीछे थी। जिसके मुँह में जो भी आया कहे जा रहा था। एक तो जतिन सबसे छोटा, ऊपर से कम बोलने वाला, कुछ कह नहीं पा रहा था। वैसे भी उसको अपनी बात रखने का मौका ही कहाँ मिल रहा था। बामुश्किल इतना ही कह पाया कि मुझे वो पसंद है और घर से बाहर निकल गया। जतिन की अपने चाचा के बेटे से शुरू से ही कम बनती थी और अपने सगे बड़े भाई से भी कम ही बात होती थी। पिताजी तो वैसे ही भड़के हुए थे। घर के माहौल में उसका मन पहले ही कम लगता था और अब तो कोई उससे सीधे मुँह बात भी न करता। एक तरह से घर में मातम सा छाया हुआ था। दो दिन के बाद चाची ने सिर्फ़ इतना पूछा कि क्या लड़की वाले बहुत अमीर हैं? "नहीं, साधारण परिवार है", तो इसका मतलब कि वो तो हमारी बराबरी के भी नहीं है, आख़िर तूने क्या देखा उस लड़की में, जो उसके पीछे दीवाना हुआ फिरता है। जतिन को सिर्फ़ बहन से कुछ उम्मीद थी, लेकिन अगले दिन वो बिना उससे मिले ही चली गई थी। माँ के जाने के बाद यूँ तो जतिन पहले भी अकेला था और अब तो बिल्कुल ही तन्हा हो गया। पहले तो कभी–कभी पिताजी फिर भी उससे बात कर लेते थे, लेकिन अब वो भी बंद।

बिज़नेस में चारों के काम बँटे हुए थे। दो ऑफिस थे। एक में जतिन और चाचा का बेटा बैठता था और दूसरे को पिताजी और बड़ा भाई संभालते थे। बिज़नेस के इलावा जतिन की किसी से और कोई बात नहीं होती थी। महीना इसी तरह बीत गया। पूर्वी ने अपनी माँ को सब बता दिया था और माँ ने पापा को। उन्हें तो यक़ीन ही नहीं हो रहा था कि पूर्वी की किस्मत इतनी अच्छी भी हो सकती है। जतिन को वो

काफ़ी अच्छे से जानते थे। पर अंदर–अंदर वो भी डर रहे थे। वैसे भी दोनों बहुत ही सादा प्रवृति के और छल–कपट से कोसों दूर। जतिन की पूर्वी से लगभग रोज़ ही बात होती और वो मिलते भी रहते। पूर्वी भी अब काफ़ी अशवस्त हो गई थी। घर में भी जतिन का आना काफ़ी बढ़ गया था। पूर्वी के कुछ नज़दीकी रिश्तेदार भी आसपास ही रहते थे। कितना भी छुपाओ, ऐसी बातें कहाँ छुपती हैं। तीन महीने और निकल गए। पूर्वी के मम्मी–पापा, जतिन के पापा और उसके परिवार वालों से मिलकर बक़ायदा रिश्ते की बात करना चाहते थे, मगर जतिन टाल रहा था।

उधर जतिन अपने पापा को समझाने की पूरी कोशिश कर रहा था, लेकिन वो टस से मस नहीं हुए। घर में और किसी से बात करना ही बेकार था, लेकिन जतिन के मन में पूर्वी का प्यार कम नहीं हुआ, बल्कि दिन–प्रति–दिन बढ़ ही रहा था। चाहे जो भी हो, शादी तो उसे पूर्वी से ही करनी थी। उसी शहर में रहने वाली पूर्वी की बड़ी मासी को सारी बात का पता था। चूँकि पूर्वी की मम्मी की तबियत ठीक नहीं रहती थी, इसलिए अक्सर उसका छोटी बहन के घर काफ़ी आना–जाना लगा रहता था। लगभग पाँच महीने होने को आए, लेकिन बात आगे बढ़ी ही नहीं, अलबत्ता पूर्वी और जतिन का मिलना–जुलना बहुत बढ़ गया था। अब उनको मना करना भी मुश्किल था और कुछ कह कर वो इतना अच्छा रिश्ता गँवाना भी नहीं चाहते थे। पूर्वी की माँ ने कई बार पूर्वी और जतिन के सामने बहाने से कई बार बात छेड़ी, लेकिन कुछ नहीं हुआ। अब तो उसे चिंता भी होने लगी, जो कि स्वाभाविक ही था।

कुछ दिनों बाद की बात है कि पूर्वी की मासी आई हुई थी। पूर्वी की माँ जितनी शांत और मितभाषी थी, मासी उतनी ही तेज़तर्रार और चुस्त थी। उसी शाम को जतिन भी आ गया। मासी तो कई दिनों से जैसे इसी के इंतज़ार में थी। चाय पीते वक्त उसने जतिन से कह ही दिया कि बहुत मिल लिए, अब तो शहनाई बजनी चाहिए। हमेशा की तरह जतिन बहाना बनाने लगा, लेकिन मासी भी कहाँ कम थी। उसने भी जतिन को आड़े हाथों लिया। आख़िर जतिन ने इतना कहा कि इस साल में वो हर हालत में शादी कर लेगा। साल ख़त्म होने में अभी चार महीने थे, लेकिन इंतज़ार करने के सिवाय कोई चारा भी तो नहीं था। पूर्वी को तो जतिन ने अपने घर वालों के बारे में सब बता दिया था ताकि वो आने वाली परिस्थितियों के लिए तैयार रहे।

इसी बीच पूर्वी की मासी और पापा अपने दो और क़रीबी रिश्तेदारों के साथ जतिन के घर हो आए थे, लेकिन किसी ने उनसे ढंग से बात तक नहीं की। एक तो उसकी मम्मी बीमारी के कारण नहीं गई थी, दूसरा उसे वो ले जाना भी नहीं चाहते थे। माँ का दिल ऐसे घर में भला कैसे अपनी बेटी को भेजने के लिए तैयार होता, जहाँ कोई सीधे मुँह उससे बात करने वाला भी न हो। किसी को समझ नहीं आ रहा था कि आख़िर क्या किया जाए। जतिन ने पूर्वी से इतना भी कह दिया कि हो सकता है उसके घर वालों का व्यवहार उससे भी अच्छा न हो। वो चाहे तो रिश्ते के लिए इन्कार कर सकती है, लेकिन अब तो पूर्वी भी पीछे हटने को तैयार नहीं थी। उसने सोचा कि जब जतिन उसके साथ है तो चिंता किस बात की, धीरे–धीरे सब ठीक हो जाएगा। इसी तरह दो महीने और निकल गए, लेकिन पापा को मनाने की जतिन की हर कोशिश नाकाम रही।

पूर्वी और जतिन ने कोर्ट मैरिज करने का फैसला कर लिया। इसमें कुछ समय भी लगता है। जतिन ने अपने घर पर अभी तक किसी को कुछ नहीं बताया था। अर्ज़ी दाख़िल हो चुकी थी। दोनों की इच्छा थी कि शादी के बाद छोटी सी रिसेप्शन पार्टी कर देंगे। जतिन की ज़िद्द देखकर चाची और बहन थोड़ा मान गए थे, लेकिन उन्होंने बहनों (एक सगी बहन और दो चाचा की बेटियां) और परिवार के अन्य सदस्यों के नेग की इतनी लंबी लिस्ट और रीति–रिवाजों के बारे में इतना कुछ बताया कि जतिन को तो जैसे चक्कर ही आ गया। पूर्वी की आर्थिक स्थिति से वह भली–भाँति परिचित था। दूसरी और ऐसे फालतू के आडंबरों से उसे भी बहुत चिढ़ थी। उस दिन के बाद उसने घर में इस बारे में बात करनी ही बंद कर दी। पूर्वी के माता–पिता को कोर्ट मैरिज के बारे में जानकारी थी। वो दोनों तो ढंग से शादी करना चाहते थे, आख़िर पूर्वी उनकी इकलौती बेटी थी। माना कि वो बहुत ख़र्चा नहीं कर सकते थे, लेकिन फिर भी वो समाज के सामने पूर्ण रीति–रिवाज के साथ बेटी को विदा करना चाहते थे।

मासी के साथ जाकर पूर्वी ने शादी के लिए थोड़ी बहुत ख़रीददारी कर ली थी। एक सादा सा शादी का जोड़ा और चार पाँच और ड्रेसेज़ । माँ के कहने पर उसके पुराने गहने देकर हल्के–फुल्के दो चार गहने भी ले लिए। थोड़ा बहुत रोज़मर्रा की ज़रूरतों का सामान। किसी को बिना बताए एक दिन दोनों कोर्ट पहुँच गए और साथ में जतिन का एक दोस्त और एक दूर का कज़न और उसकी पत्नी। जानबूझकर कर जतिन ने पूर्वी के घर वालों को भी नहीं बताया ताकि कल को उसके घर वाले

पूर्वी के पैरेंट्स पर कोई इल्ज़ाम न लगाए। वैसे तो उनका कहना था कि उन्होंने अमीर घर के लड़के को फँसा लिया। अपनी विकलांग लड़की उसके गले बाँध रहे हैं और भी बहुत कुछ, लेकिन जतिन को किसी की परवाह नहीं थी। कोर्ट पहुँच कर पूर्वी ने मासी को फ़ोन किया और सारी बात बताई। जल्दी से मासी ने पूर्वी की माँ को फ़ोन किया और कुछ ज़रूरी सामान लेकर बहन के घर पहुँच गई। उसने पूर्वी की तीन चार सहेलियों को भी फ़ोन करके घर पहुँचने के लिए कह दिया। जब जतिन और पूर्वी शादी करके घर पहुँचे तो सबने उनका स्वागत किया।

पूर्वी तो टॉप जीन्स में ही शादी करके आ गई थी। घर में सब खुश थे। पूर्वी की मम्मी ने अपने दो तीन पड़ोसी भी बुला लिए थे। रिश्तेदार सब दूर थे। पूर्वी के रिश्ते के एक ताऊ पास में रहते थे। पापा ने उन्हें भी बुला लिया था। अच्छे से खाना–पीना हुआ। बाजे वाले भी बुलाए गए। जितनी हो सकी तैयारी करके पूर्वी की विदाई कर दी गई। आख़िर सोसायटी में सबको पता चलना ज़रूरी था। नहीं तो फालतू में लोगों को बातें बनाने का मौका मिल जाता। वैसे तो जतिन के अक्सर आने से बात छुपी हुई भी नहीं थी। इसी बीच जतिन ने अपने घर पर फ़ोन करके भाभी को सब बता दिया। ज़ाहिर है कि वहाँ तो तूफ़ान आ गया होगा, लेकिन एक दिन तो इस स्थिति का सामना करना ही था।

दोनों घर पहुँचे तो फीका सा स्वागत हुआ। मर्द तो कोई घर पर था नहीं। तीनों औरतें और एक नौकरानी। पूर्वी का सूटकेस जतिन के कमरे में रखवा दिया गया। चाय–पानी की औपचारिकता के बाद सब अपने अपने कामों मे व्यस्त हो गए। निश्चित रूप से अंदर ही अंदर मोबाईल से ख़बर तो दूर–दूर तक पहुँच ही गई होगी। कहने को तो घर में जतिन के पापा, चाची, चाचा का बेटा, बहू और उनके दो बच्चे, जतिन का सगा भाई, भाभी और उनकी एक छोटी सी बेटी रहते थे, लेकिन संयुक्त परिवार वाली कोई बात नहीं थी। सब जैसे रिश्तों को ढो रहे थे। घर काफ़ी बड़ा था। आर्थिक हालात भी बहुत अच्छे थे, लेकिन आपसी प्यार, सम्मान और भावनाएँ ग़ायब थी। घर की तीनों शादी–शुदा बेटियां अच्छे अमीर घरों में ब्याही थी और ख़ूब खुश थी। किसी ने ज़्यादा पढ़ाई–लिखाई नहीं की थी और किसी ने इस और ध्यान भी नहीं दिया। बस ख़ूब सारा दाज–दहेज देकर विदा कर दिया। उन सब की ज़िंदगी घूमने–फिरने, किट्टी पार्टियों और गहने बनवाने–तुड़वाने में ही मज़े से गुज़र रही थी। घर की दोनों बहुएँ भी लगभग ऐसी थी। जतिन की सगी भाभी अच्छी पढ़ी–लिखी थी और शादी से पहले नौकरी करती थी, लेकिन उसकी नौकरी भी

छुड़वा दी गई। पहले तो उसने विरोध किया, लेकिन फिर धीरे–धीरे उसने हालात से समझौता करने में ही अपनी भलाई समझी।

लेकिन पूर्वी तो बिल्कुल ही अलग थी। उसने तो अच्छे कॉलेज से इंजीनियरिंग की हुई थी। बहुत से सपने भी थे। कैरियर और ज़िंदगी में उसे बहुत आगे बढ़ना था। उसे उम्मीद थी कि जतिन उसका पूरा साथ देगा। पिछले छः महीनों में जतिन ने उसे अपने घर के हालातों से अच्छी तरह वाक़िफ़ करवा दिया था। पूर्वी ने भी कुछ नहीं छुपाया था। शादी तो हो गई, लेकिन असली इम्तिहान तो अभी शुरू होने थे। सबके अपने–अपने कमरे और घर के कामों के लिए एक परमानैंट नौकर था। दिन में दो मेड भी आती थी। चाची ने कुछ काम दोनों बहुओं को बाँटे हुए थे। ज़िंदगी जैसे यंत्रवद सी चल रही थी। टाईम पर सुबह–शाम खाना बन जाता और जिसका जब जी करता अपने कमरे में ले जाकर खा लेता। पुरूषों के टिफ़िन पैक करना बाज़ार से सब्ज़ी राशन, सब ज़िम्मेदारी नौकर की थी। अपने बच्चों का खाना, नाश्ता सब अपने आप तैयार करते। कोई फ्रूट खाता तो कोई डबलरोटी। बहुत बार खाना बाहर से भी आ जाता। आपस में कई–कई दिन तक बात ही नहीं होती थी। चाची बहुत वहमी स्वभाव की थी। अपना खाना ख़ुद ही पकाती। जतिन के पिताजी का थोड़ा बहुत ध्यान नौकर ही रखता था।

शादी वाले दिन जब सब घर आए तो किसी ने किसी से इस विषय में कोई बात नहीं की। अपने–अपने कमरों में जाकर ज़रूर की होगी। पूर्वी और जतिन ने खाना अपने कमरे में ही खा लिया। सुबह हुई तो पूर्वी नहा–धो कर कमरे से बाहर निकली। रसोई में झाँका तो कोई नहीं। शायद उस दिन बच्चों की छुट्टी थी। बस चाची अकेली बैठी चाय पी रही थी। पूर्वी ने सिर पर पल्लू लेकर उनके पैर छूने चाहे तो बस इतना कहा कि "ठीक है, ठीक है"। पूर्वी और जतिन ने मिलकर चाय बनाई, तो पापा जी भी दिखाई दिए। दोनों उनको चाय देने गए तो पैर भी छू लिए। वो कुछ नहीं बोले। दोनों अपने कमरे में आकर चाय पीने लगे। थोड़ी देर बाद घर में हलचल शुरू हो गई। घर के पुरूष अपने–अपने कामों पर चले गए। पूर्वी अपने कमरे में आ गई। जतिन ने कहा कि आज वो लंच पर घर आएगा। वैसे तो उनके टिफ़िन साथ ही जाते थे। तीन, चार दिन इसी तरह निकल गए। कोई मुँह दिखाई, चौका चढ़ाना, कोई शगुन कुछ नहीं हुआ। घर का वातावरण मातम समान था। तूफ़ान के संकेत थे।

पूर्वी ने धीरे–धीरे घर के कामों में दिलचस्पी लेनी शुरू कर दी। साथ ही साथ उसने अपना ऑनलाईन काम भी जारी रखा। शाम को वो दोनों घूमने भी चले जाते। बीच में दोनों पूर्वी के घर भी चक्कर लगा आए थे। माँ के पूछने पर पूर्वी ने बस इतना ही कहा कि सब ठीक है। पूर्वी के मम्मी–पापा ने रिश्तेदारों को भी उसकी शादी की सूचना दे दी थी और न बुलाने के लिए क्षमा भी माँग ली, लेकिन सब रिश्तेदार इस शादी से बहुत खुश थे। किसी ने कोई गिला नहीं किया, बल्कि आशीर्वाद दिया और अपने घर आने का निमंत्रण भी दिया। पूर्वी अपनी और से पापा और चाचीजी के काम करने की कोशिश करती। उनके लिए चाय बनाना, कपड़े समेटना तथा और भी छोटे–मोटे काम कर देती। इसी दौरान उसकी तीनों ननदें भी चक्कर लगा गई। बस सब औपचारिकताएँ पूरी हो रही थी। पूर्वी के पापा ने कई बार जतिन के पापा से बात करने की कोशिश की, लेकिन उन्होंने फ़ोन काट दिया। वो चाहते थे कि सारा परिवार उनके घर खाने पर आए, लेकिन बात नहीं बनी। उन्होंने जतिन के घर पर जाने का प्रोग्राम बनाया लेकिन जतिन ने उन्हें मना कर दिया।

जतिन के पिताजी रोज़ रात को शराब पीते थे, लेकिन फिर चुपचाप सो जाते थे। शादी को दस बारह दिन ही हुए थे कि एक रात खाने के बाद जतिन और पूर्वी को अपने कमरे में बुलाया और मन की सारी भड़ास निकाल दी। यहाँ तक कि ख़ूब गालियाँ भी बकी। दरअसल उनके एक दोस्त जो कि अपनी भांजी की शादी जतिन से करवाना चाहता था, ने यह कह कर उनका मज़ाक़ बनाया कि लगता है करोड़ों का दहेज मिला है, अकेली लड़की है, लड़का घर जवाई बन कर रहेगा। दोनों चुपचाप उठ कर आ गए। पूर्वी का मूड बहुत खराब हुआ। उसे इस प्रकार के बर्ताव की तो क़तई उम्मीद नहीं थी। सारी रात वो यही सोचती रही कि आख़िर उसका क़सूर क्या है। अगर शादी के बाद किसी के साथ कोई दुर्घटना घट जाए तो क्या तब भी इनका बर्ताव यही होता। यह सोचते–सोचते पूर्वी कब नींद के आग़ोश में चली गई, उसे पता ही नहीं चला।

कुछ दिन और गुज़र गए, लेकिन कुछ नहीं बदला। हर दो, तीन दिन के बाद जतिन के पापा शराब पीकर तमाशा करते। पूर्वी और जतिन दोनों को उल्टा–सीधा बोलते, पूर्वी के घर वालों को ख़ूब गालियाँ निकालते। एक रात बोले कि आज से अगर तुम्हें इस घर में रहना है तो पूर्वी अपने मायके नहीं जाएगी और न ही जतिन जाएगा। उन्होंने एक बार भी नहीं सोचा कि पूर्वी अपने माँ–बाप की इकलौती बेटी है और ऊपर से उसकी माँ भी बीमार रहती है। जतिन तो नहीं चाहता था, लेकिन पूर्वी

ने जतिन को समझाया कि चलो कोई बात नहीं। कुछ दिन नहीं जाएंगे। उसने अपनी माँ को भी फ़ोन पर बता दिया और समझा भी दिया। पूर्वी के मायके में तो आपस में बहुत मिलना–जुलना होता था, जबकि यहाँ हालात बिल्कुल उल्ट थे। बाहर से तो किसी ने क्या आना, घर में रहने वालों की भी आपस में बहुत कम बातचीत होती थी। पूर्वी के सब रिश्तेदार तो यही समझते थे कि पूर्वी बहुत खुश है। जब भी कोई उसके मायके आता तो पूर्वी को मिलने की इच्छा ज़ाहिर करता। वो उसे बहाने से टालकर उसे उसके ससुराल न जाने देते और पूर्वी और जतिन ही उनसे आ कर मिल जाते, लेकिन अब तो उनका आना भी बंद हो गया था। जतिन के पापा को शक था कि वो चोरी–छुपे जाते होंगे, लेकिन उन दोनों ने अपना वचन नहीं तोड़ा।

इसी घुटन भरे माहौल में तीन महीने गुज़र गए। बेचारी पूर्वी समझ नहीं पा रही थी कि आख़िर वो क्या करे। सिर्फ़ पापाजी ही नहीं, घर के बाकी सदस्य भी बेगानों सा व्यवहार करते। अब तो जतिन का ऑफिस में भी मन नहीं लगता था, क्योंकि वहाँ पर उसका पापा, चाचा का बेटा यहाँ तक उसका अपना सगा भाई भी उससे ढंग से बात नहीं करते थे। बामुश्किल काम की बात ही होती थी। ऐसा लगता था कि सब उसको वहाँ से निकालना चाहते हों।

एक दिन किसी शादी के सिलसिले में पूर्वी की मासी की बेटी लता अपने पति के साथ उस शहर में आई, जो कि पूर्वी की हमउमर थी। दोनों में बहुत प्यार था। उसने पूर्वी की मम्मी यानि अपनी मासी से पूर्वी के घर का पता माँगा। पहले तो उसने बहुत टालमटोल की, लेकिन मजबूरन उसे पता बताना पड़ा। संयोग से जिस शादी में वो आई थी वो पूर्वी के घर के पास ही था। उसने योजना बनाई कि वो रात को पूर्वी के घर पर ही रहेगी। दोनों ख़ूब बातें करेंगी और वो उसके ससुराल वालों से मिल भी लेगी। उसने पूर्वी को फ़ोन कर दिया और साली के हक़ से जतिन को भी फ़ोन पर शादी पर न बुलाने के लिए ख़ूब खिंचाई की। मज़ाक़–मज़ाक़ में ये भी कह दिया कि जो भी साली का नेग होता है, वो लेकर रहेगी।

कुछ बढ़िया तोहफ़े लेकर वो उनके घर पहुँच गई, लेकिन वहाँ का माहौल देखकर तो उसके होश उड़ गए। पूर्वी ने बहुत छिपाना चाहा, लेकिन आख़िर कितना। शाम का समय था। आदमी तो कोई घर पर था नहीं। सब औरतें थी। कोई उससे मिलने नहीं आई। कोई भूले से बैठक में आ भी गई तो नमस्ते तक करने की किसी ने ज़हमत नहीं उठाई। थोड़ी देर बातों में निकल गई। जतिन भी आ गया था। चाय वग़ैरह पीकर वो उठ खड़े हुए। लता काफ़ी कुछ समझ चुकी थी। उसे अपनी

बहन के लिए बहुत बुरा लग रहा था, लेकिन वो भी क्या कर सकती थी। ऐसी और भी बहुत सी घटनाएँ घटी। पूर्वी और जतिन की घर वालों को खुश करने की हर कोशिश बेकार हो रही थी। तीन महीने और निकल गए। पूर्वी लगभग सारा दिन अपने कमरे में ही रहती और अपने कम्प्यूटर पर काम करती रहती। रात को कभी–कभी दोनों थोड़ी देर आसपास ही घूम लेते। पूर्वी मायके भी नहीं गई थी। जतिन के पापा के मिज़ाज को देखते हुए पूर्वी के पापा की तो उन्हें फ़ोन करने की भी हिम्मत नहीं होती थी। बस यही तसल्ली थी कि जतिन का साथ है।

पिछले कुछ दिनों से पूर्वी की माँ की तबियत बहुत खराब चल रही थी। उन्होंने तो पूर्वी को नहीं बताया, लेकिन फिर फ़ोन पर माँ की आवाज़ से पूर्वी को शक हुआ। उसने जतिन से कहा, कि वो माँ से मिलना चाहती है। जतिन समझ चुका था कि पापा पर कोई असर नहीं होने वाला, फिर भी उसने उनसे बात की। आशा के अनुसार वो ग़लत ही बोले। जतिन के सहने की सीमा अब ख़त्म हो चुकी थी। वो जानता था कि माँ का प्यार क्या होता है। अगर आज उसकी माँ होती तो उसकी स्थिति कुछ और ही होती। शाम को ही वो दोनों माँ से मिलने चले गए। रात को जतिन के पापा ने ख़ूब बखेड़ा किया। अगले दिन ऑफिस में भी लड़ाई की। जतिन जल्दी घर वापिस आ गया। अब उसने ऑफिस जाना बंद कर दिया। जल्दी ही उसे किसी अच्छी कंपनी में नौकरी मिल गई। आख़िर इतना पढ़ा–लिखा था। घर के बाकी लोग बोलते नहीं थे, लेकिन पापा के कान भरते रहते थे। जतिन को अपने सगे भाई–भाभी से ऐसी उम्मीद क़तई नहीं थी। उसने तो हमेशा ही उन दोनों से प्यार किया था। अब तो ऐसा लग रहा था कि कोई उनको घर में देखकर ही खुश न हो।

शादी को एक साल होने को आया। जब जतिन ने नौकरी ज्वाईन की तो किसी ने एक बार भी नहीं पूछा कि घर का बिज़नेस छोड़कर वो नौकरी क्यूं कर रहा है। ऑफिस जाने के लिए उनके पास दो गाड़ियाँ थी और एक गाड़ी घर पर औरतों के लिए भी खड़ी रहती थी, लेकिन जतिन लोकल बस से ऑफिस जाता था। उसे सपने में भी घर वालों से ऐसे व्यवहार की उम्मीद नहीं थी। सबसे छोटा, घर भर का लाड़ला जैसे लावारिस हो गया। वो दोनों दो, तीन बार बीमार भी हुए, लेकिन कोई पूछने नहीं आया। फिर भी न जाने किस उम्मीद पर अब तक वो घर में रह रहा था। शायद पिताजी का दिल पिघल जाए। एक दिन अचानक ही रात को जतिन के पापा की तबियत बिगड़ गई। हस्पताल में दाख़िल करवाना पड़ा। रात को जतिन रहता और दिन में पूर्वी रहती। दो दिन तक बेहोश ही रहे। तीसरे दिन होश आया तो देखा

पूर्वी उनके पास बैठी है। कुछ नहीं बोले। लगभग हफ़्ता वहीं पर रहना पड़ा। घर के बाकी लोग थोड़ी देर के लिए आते, लेकिन पूर्वी और जतिन तो वहीं पर रहते। बस थोड़ी देर के लिए घर जाते। पूर्वी ने वहाँ पर जी–जान से उनकी सेवा की। घर पर आकर दो चार दिन वो चुप रहे। जतिन को लगा कि शायद कुछ बदलाव आ गया हो, लेकिन अगली रात ही गालियाँ बकने का सिलसिला चालू हो गया। सारा क्रोध पूर्वी और उसके मायके वालों पर निकला।

दो दिनों के लिए जतिन को कंपनी के काम से पूना जाना पड़ा। पहली बार पूर्वी को उसके बग़ैर रहना था। दो दिन के बाद जब वो वापिस आया तो पूर्वी अकेली कमरे में बीमार बुख़ार से तप रही, लगभग बेहोश सी लेटी पड़ी थी। अब तो हद ही हो चुकी थी। आख़िर ऐसा भी क्या गुनाह था बेचारी का। यही कि उसकी एक टाँग में नुक्स और क़द छोटा था। उसका सोने सा दिल किसी को नहीं दिखा। उसने नौकरानी से पूछा। वो बेचारी भी क्या करती। जितना हो सका उसने तो सेवा की थी, लेकिन किसी ने उसको दवाई तक ला कर नहीं दी, किसी ने उसका हाल तक नहीं पूछा। तीन, चार दिन में वो ठीक हो गई। जतिन के सब्र का बाँध टूट चुका था। वो समझ गया था कि उसके विरूद्ध साज़िश है और उसका अपना भाई और चाचा का बेटा पापा के कान भरकर उसका घर जायदाद में हिस्सा हड़पने के चक्कर में हैं। वो दुःखी तो बहुत हुआ, लेकिन फिर उसने मन को समझाया। देखा तो पास ही पूर्वी कुर्सी पर बैठे–बैठे ही सो गई थी। कितनी मासूमियत थी उसके चेहरे पर। लगभग डेढ़ साल होने को आया। कभी कोई शिकायत नहीं, कोई माँग नहीं, लेकिन जतिन ने मन में कुछ ठान लिया था। उसने पैकिंग शुरू कर दी। आवाज़ें सुनकर पूर्वी की नींद खुल गई। उसने पूर्वी को भी पैकिंग करने को कह दिया। उसने जतिन को समझाने की कोशिश की, लेकिन उसका इरादा पक्का था।

सिर्फ़ अपने कपड़े और अपना ज़रूरी सामान दो अटैचियों में भरा और ऑटो में बैठकर पूर्वी के मायके आ गए। चार लाईनें लिखकर जतिन डाईनिंग टेबल पर छोड़ आया था। उस समय सिर्फ़ नौकर ने ही उन्हें जाते देखा। रात को पूर्वी ने घर में सब कुछ बता दिया। रोहित और रोमा भी क्या कहते। मन तो सबका बहुत दुःखी था। हल्की सी उम्मीद थी कि शायद जतिन के घर से कोई आए, लेकिन किसी ने आना तो क्या एक फ़ोन तक नहीं आया। जल्दी ही जतिन ने पास में ही एक घर किराए पर ले लिया। पूर्वी के मम्मी–पापा ने तो बहुत कहा कि वो उनके साथ ही रहे, लेकिन जतिन नहीं माना। दोनों इतना तो कमा लेते थे कि गुज़ारा आराम से हो

जाए। एक महीने के अंदर ही वो अपने घर में शिफ़्ट कर गए। जतिन ने बहुत मना किया, लेकिन घर का कुछ ज़रूरी सामान रोहित ने भी लेकर दे दिया।

दोनों अब वैसे तो बहुत खुश थे। हफ़्ते में दो, तीन बार पूर्वी के घर भी हो आते थे। पूर्वी की माँ की हालत में भी काफ़ी सुधार हो रहा था। जतिन कुछ नहीं कहता, लेकिन मन में तो सोचता ही होगा। सब दोस्तों से मेल–जोल था। पूर्वी और जतिन घूम–फिर भी आए, लेकिन एक कसक ज़रूर पूर्वी के मन में बनी हुई थी कि आख़िर उसका क़सूर क्या है और वो क्या करे। क्या रिश्तों के धागे इतने कच्चे होते हैं?

■